अमर जैन साहित्य संस्थान का २०वां रत्न

पुस्तक ● विचार-दर्शन
लेखक ● गणेश मुनि शास्त्री 'साहित्यरत्न
सम्पादक ● डॉ० रामप्रसाद त्रिवेदी
प्राक्कथन ● श्रीचन्द सुराना 'सरस'
सम्प्रेरक ● जिनेन्द्र मुनि, काव्यतीर्थ
विषय ● उद्‌बोधक विचार-सूत्र
पृष्ठ ● ३२०
प्रकाशक ● अमर जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर [राज०]
अर्थ सहयोग ● श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, जोधपुर
मूल्य ● साधारण संस्करण दस रुपये
प्लास्टिक कवर युक्त बारह रुपये

प्रथम संस्करण ● १८ नवम्बर १९७५, कार्तिक पूर्णिमा
प्राप्तिस्थल ● हरिसिंह चौधरी
एम० एम० कोर्ट
गुलाबपुरा, जि० भीलवाड़ा [राज०]
●
श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ
कपड़ा बाजार, जोधपुर [राज०]
मुद्रक ● श्रीचन्द सुराना के लिए
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-४

श्रद्धालोक के देवता

आचार्य सम्राट

श्री आनन्द ऋषि जी को



प्राथमिकी

●

भारतीय सस्कृति एव जीवन-मूल्यो के निर्माण मे विभिन्न उदारचेता मनस्वियो, धार्मिक आचार्यों तथा महापुरुषो के विचारो का अभूतपूर्व सगम परिलक्षित होता है। भगीरथ प्रयत्न के द्वारा अवतरित विचार-गगा मे न जाने कितने महर्षियो, चिंतको तथा सत-पुरुषो की अमृत वाणी ने योगदान दिया होगा। भगवान महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण जैसी अलौकिक प्रतिमाये जिस राष्ट्र एव देश की सास्कृतिक विरासत को अपनी अमूल्य ज्ञानराशि से समृद्ध करती आयी है, उस देश की जीवनी शक्ति का क्या पूछना ? आज हम आत्मा के विघटन एव मानव-मूल्यो के ह्रास को लेकर जितने चिंतित हैं वह सब आरोपित बौद्धिकता तथा पश्चिमी शब्दावली का आयातित करिश्मा तो नही है ? यदि हमारी चिंता सार्थक एव सदर्मित है, तो हम इन महापुरुषो के विचारो एव अनुभवो से प्रेरणा ग्रहण करने मे सकोच क्यो करते हैं ?

ससार न जाने कितनी वैचारिक क्रान्तियो को जन्म दे चुका है ? उनमे से कई क्रान्तियाँ क्षणजीवी होकर अतीत के गर्भ मे समा गई और उनका अस्तित्व केवल इतिहास के पृष्ठो मे सुरक्षित रह गया हैं। लेकिन वे क्रान्तियाँ चिरजीवी तथा सतत प्रवहमान होती हैं, जो हाथी-दाँत की मीनारो पर आरूढ न होकर जन-सामान्य के व्यापक धरातल को स्पर्श करते हुए मानवीय सकल्प तथा गरिमा का आख्यान प्रस्तुत करती है। भगवान महावीर, गौतम बुद्ध तथा महात्मा गाधी जैसे अनेक चिंतक ऐसी ही क्रान्तियो के सवाहक होते है, जो कालजयी हैं, जिन पर समय की धूल नही पडा करती। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने नैतिक बल को सजोते हुए कर्म एव चिंतन की द्विधा से मुक्त होकर समाज एव राष्ट्र के पुनर्निर्माण मे सक्रिय योगदान दें।

'विचार-दर्शन' ग्रन्थ पाठको के हाथ मे सौपते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इससे पूर्व जीवन के अमृत-कण, प्रेरणा के बिन्दु, दो पुस्तकें इसी अभिधा मे निकल चुकी है। यह तीसरी पुस्तक है। जीवन-दर्शन, धर्म और विज्ञान, अहिंसा और सत्य, शिक्षा और शिक्षक, प्रेम की प्रभा, कर्म की विविध पगडडियाँ, महापुरुष और उनका समागम आदि विषयो पर चिन्तन प्रधान, चिंतन-कण प्रस्तुत किये है। मुझे विश्वास है कि मेरा यह उपक्रम पाठको को प्रियकर लगेगा।

इस सदर्भ मे परम श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव राजस्थान केशरी श्री पुष्कर मुनि जी महाराज साहव का मैं विस्मरण नही कर सकता जिन्होंने मेरे जीवन-उपवन को सदा अपने प्रेरणा सलिल से सीचा है। सहयोगी मुनिगण श्री जिनेन्द्र मुनि, श्री प्रवीण मुनि, श्री अरुण मुनि के प्रति प्रीतिपूर्ण सहयोग का जहाँ उल्लेख अस्थानीय नही होगा वहाँ स्नेह, सौजन्यमूर्ति श्रीयुत् डॉ० रामप्रसाद जी त्रिवेदी के सेवा-व्रत को शब्दो का परिधान देना भी अनुचित नही होगा। श्री त्रिवेदी जी ने 'विचार-दर्शन' का अपनी सम्पादकीय लेखनी से आवश्यक सशोधन व परिमार्जन किया है, साथ ही उन्होने मेरे विचारो तथा शैली की मौलिकता को अक्षुण्ण रखा है जिसकी मुझे महती प्रसन्नता है।

प्रस्तुत कृति के निर्माण मे जोधपुर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ० राजकृष्ण दूगड का समय-समय पर मुझे आवश्यक परामर्श मिलता रहा है अत मैं उन्हे अपनी स्मृति से विलग नही रख सकता।

स्नेहशील मानस श्रीयुत् श्रीचन्द जी सुराना ने अपनी मौलिक भूमिका के साथ पुस्तक को मुद्रण कला व आधुनिक साज-सज्जा से सुसज्जित वना दिया है, तदर्थ उनकी स्मृति सदा मेरे मानस मे चमकती रहेगी।

अत मे मैं उन सभी का आभार मानता हूँ जिनका मुझे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष मे सहकार व सहयोग मिला है।

प्रकाश पर्व
३-११-७५
जोधपुर (राज०)

—गणेश मुनि शास्त्री

प्रकाशकीय

विचार एव कार्यों की मव्यता ही उत्कृष्ट सन्त-जीवन की कसौटी है। अध्ययन-मनन से चिन्तन को परिपुष्ट करते हुए अपने कार्यों तथा आचरणो से मानव-आत्मा का मतत परिष्कार ही सन्तत्व है। विचारो से महान् तथा कार्यों से अधम होकर लौकिक सफलताएँ भले ही अर्जित की जा सकें किन्तु आध्यात्मिक जगत मे तो कार्य एव चिन्तन का मणि-काचन-सयोग ही प्रतिष्ठा विधायक होता है।

सन्त-साहित्य के उपवन मे विचारो के सुमन स्वानुभूति की खाद पर पल्लवित होते हैं। जिस सन्त का स्वय का आत्मानुभव जितना विशाल होता है उसके विचारो की भूमि उतनी ही उर्वर होती है। कबीर जैसे क्रान्तिकारी विचारक ने—

मसि कागद छूयो नहीं,
कलम गह्यो नहीं हाथ।

की स्पष्ट घोपणा के वावजूद काशी के दिग्गज पण्डितो को अपने जीवनानुभव के वल पर ही चुनौती दी थी, क्योकि उन्हे विश्वास था कि—'कागद की लेखी' की अपेक्षा 'आँखिन की देखी' वस्तुएँ कही अविक प्रामाणिक एव जीवत होती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक राजस्थान केशरी प्रखर वक्ता पण्डित प्रवर परम् श्रद्धेय श्री पुष्कर मुनि जी महाराज साहव के विद्वान शिष्य श्री गणेश मुनि जी शास्त्री है। आप एक चिन्तनशील सन्त हैं, साथ ही आचारनिष्ठ भी। वे प्रत्येक विषय पर गहराई से सोचते है, चिन्तन करते है और उसका प्रस्तुतीकरण भी अत्यन्त आकर्पक शैली से करते हैं जिससे पाठक आनन्द विभोर हो उठता है।

आपने अव तक साहित्य की अनेक विधाओ मे—कहानी, रूपक, निवन्ध, शोधप्रवन्ध, आगम सूक्त आदि पर जम कर लिखा है। 'जीवन के अमृत कण', 'प्रेरणा के विन्दु', मे उनका चिन्तन एक नई दिशा को लेकर उन्मुक्त हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक उसी दिशा का तीसरा चरण है। इसमे आपने देश-विदेश के मनीपियो, चिन्तको तथा साहित्यकारो के कथनो, उद्धरणो और सूक्तियो का खुल कर उपयोग किया है। प्रत्येक विपय अपने आप मे स्वतन्त्र तथा मौलिक है। पाठक देखेंगे कि इसमे मुनि श्री जी ने धर्म, दर्शन, साहित्य, समाज, कला, सस्कृति, विज्ञान, अध्यात्म और जीवन प्रभृति

विपयो पर अत्यन्त मधुर व रोचक शैली मे विचार सूत्र रखे हैं जो वर्तमान युग के भौतिकवाद से त्रस्त मानव-समाज को आत्म-शान्ति का दिशा-बोध दे रहे हैं।

मुनि श्री जी की चिन्तन प्रसूत सहज-सरल भाषा और अनुभूतिपूर्ण लेखनी से अनुसृत 'विचार-दर्शन' के विचार सर्वजनग्राह्य एव उपयोगी बन गये हैं।

स्नेह-शील मानस श्री डॉ० रामप्रसाद जी त्रिवेदी का यहाँ हम अनुस्मरण किये विना नही रहेगे जिन्होने प्रस्तुत ग्रन्थ का निष्ठापूर्वक सम्पादन किया है तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्रीमान् श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' ने मुनि श्री जी के प्रति अपनी आस्था अभिव्यक्त करते हुए पुस्तक पर मौलिक भूमिका लिखने का कष्ट किया है, तदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, जोधपुर के भी हम पूर्ण आभारी हैं, जिसने पूज्य गुरुदेव श्री के इस ऐतिहासिक वर्षावास की पावन-स्मृति के लिए 'विचार-दर्शन' ग्रन्थ मे अपना अर्थ सहयोग देकर प्रकाशन की व्यवस्था की है। सघ की यह सेवा सदा अविस्मरणीय रहेगी।

इसी प्रकार उदारमना श्री सघो तथा व्यक्तियो का अर्थ सहयोग समय-समय पर हमे मिलता रहा तो गुरुदेव श्री के अनेको ग्रन्थ जो अप्रकाशित हैं वे शीघ्र ही पाठको के हाथो मे पहुँचाने मे हम सक्षम हो सकेंगे।

मन्त्री

अमर जैन साहित्य संस्थान

उदयपुर (राज०)

जोधपुर चातुर्मास : एक मधुर स्मृति

●

जोधपुर चातुर्मास

जोधपुर श्री सघ का यह परम सौभाग्य है कि इस वर्ष यहाँ परम श्रद्धेय राजस्थान केशरी पण्डित प्रवर पूज्य गुरुदेव श्री पुष्कर मुनि जी महाराज साहव के विद्वान शिष्य—व्याख्यान वाचस्पति श्री गणेश मुनि जी शास्त्री, मधुरवक्ता काव्यतीर्थ श्री जिनेन्द्र मुनि जी, तपस्वी श्री प्रवीण मुनि जी, नवदीक्षित श्री अरुण मुनि जी ठा० ४ तथा महासती श्री प्रेम कुँवर जी, विदुषी महासती श्री विमलवती जी, श्री मदन कुँवर जी, श्री ज्ञानप्रभा जी ठा० ४ का चातुर्मास हुआ है।

आशीर्वाद

इस सन्दर्भ मे आचार्य सम्राट महामहिम परम श्रद्धेय श्री आनन्द ऋषि जी महाराज साहव, मरुधरकेसरी प्रवर्तक श्री मिश्रीमल जी महाराज साहव तथा राजस्थान केसरी प्रसिद्ध वक्ता श्री पुष्कर मुनि जी महाराज साहव के आशीर्वाद तो रहे ही हैं, जिनके कारण हम अपने अभियान मे शीघ्र ही सफल हो सके है। किन्तु श्री वाचस्पति महाराज साहव की भी कृपा-दृष्टि हमारे ऊपर कम नही रही है। यद्यपि इस वर्ष आप श्री के पास भीम, जयपुर, दिल्ली आदि ग्राम व नगरो की चातुर्मासार्थ विनतियाँ प्रबल रूप मे थी, तथापि आप श्री ने जोधपुर सघ को सम्मान देकर चातुर्मास का यह स्वर्णिम अवसर हमे प्रदान किया। एतदर्थ हम आप श्री के पूर्ण आभारी है।

प्रवचनो की मधुर लहर

जब से आप श्री जोधपुर नगर मे पधारे हैं तव से आप श्री के मधुर व ओजस्वी प्रवचनो की एक सुन्दर लहर चल पडी है। बाल-युवा-वृद्ध सभी स्त्री-पुरुष प्रवचनामृत का पान करने हेतु नियमित रूप से आते रहे हैं। आप श्री की अद्भुत प्रवचन शैली ने तथा मधुर व्यवहार ने जोधपुर सघ को मत्रमुग्ध वना दिया। हम अधिकार की भाषा मे कह सकते हैं कि आप श्री के पाडित्यपूर्ण प्रवचनो को जोधपुर की जनता कभी भुला न सकेगी।

मानव कल्याण केन्द्र की स्थापना

आप श्री के मानवतावादी प्रवचनो से प्रभावित होकर हमने मानव कल्याण केन्द्र के रूप मे एक "स्वधर्मी सहायक फड" की स्थापना की है, जिसके माध्यम से हम

प्रतिवर्ष हजारो रुपयो का जीवनोपयोगी सामान वितरित कर सकेंगे, ऐसा हमारा सुदृढ विश्वास है ।

धर्मध्यान की प्रभावना

यह उल्लेखनीय है कि इस वर्ष हमारे यहाँ धर्म-ध्यान, त्याग-तपस्या आदि की प्रभावना विशेप मात्रा मे हुई है । जोधपुर नगर मे अनेक माधु-साध्वियो के विभिन्न स्थलो पर चातुर्मास होते हुए भी सिंहपोल का विशाल-प्रागण प्रवचन के समय जव देखो तभी नर-नारियो से भरा मिलता । यह आप श्री के प्रभावोत्पादक जादुई-प्रवचनो का ही प्रभाव कहा जा सकता है ।

जैन साहित्यकार

जैन सत-साहित्यकारो मे आप श्री का महत्त्वपूर्ण स्थान है । लगभग दो दर्जन से अधिक पुस्तकें आप श्री की अव तक प्रकाश मे आ चुकी हैं । विद्वद् समाज मे सर्वत्र उनका सम्मान हुआ है । अनेक पत्र-पत्रिकाओ मे सुन्दर से सुन्दरतर समीक्षाएँ हुई हैं ।

आप श्री के इस ऐतिहासिक चातुर्मास की पावन-स्मृति मे आपके एक ग्रन्थ का प्रकाशन हो सका यह हमारे लिए अहोभाग्य की वात है । परिणाम 'विचार-दर्शन' आपके हाथो मे है ।

आभार प्रदर्शन

यद्यपि ग्रन्थ प्रकाशन मे विलम्व अवश्य हुआ है तथापि चातुर्मास के उत्तरार्ध तक पाठको के हाथ पहुँच ही गया । विद्वद्रत्न श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' का यहाँ हम अनुस्मरण किये विना नही रहेगे जिन्होने वड़ी तत्परता एव लगनशीलता के साथ अल्प समय मे इतना वडा ग्रन्थ सुन्दर रूप मे छाप दिया ।

मंगल कामना

अन्त मे हम समाज के प्रतिनिधियो से तथा अन्य भावुक सद्गृहस्थो से नम्र निवेदन करेंगे कि मुनि श्री जी के इस विचार-प्रधान सुन्दर ग्रन्थ का अधिक से अधिक स्वाध्याय कर आत्मिक लाभ उठावें, यही हमारी मगल कामना है ।

मत्री	सहायक मत्री	अध्यक्ष
सुमेरमल मेडतिया,	हरकराज मेहता,	थानचन्द मेहता

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, जोधपुर

संवत् २०३२ कार्तिक शुक्ला १३, रविवार

प्राक्कथन



विचार नृत्य नहीं, आरोहण है !

भारतीय चिन्तन मे 'आचार' को सबसे पहले स्थान मिला है। **'आचार प्रथमो धर्म.'**—मे मानव धर्मशास्त्र के प्रमुख व्याख्याता मनु का नाद आचार की श्रेष्ठता स्थापित कर रहा है। **'अंगाणं किं सारो। आयारो'**—अगो (तत्त्व ज्ञान के मूलभूत ग्रन्थो) का सार क्या है ? आचार। (आचार प्रज्ञप्ति)। आचार्य भद्रबाहु के इस उद्घोष मे जैनतत्त्वज्ञान की मूल कुजी छिपी है। मतलब यह है कि धर्म का मूल आधार—आचार है, और समस्त ज्ञान का सार भी आचार है।

प्रश्न होता है कि धर्म का मूल आधार—आचार है तो आचार का मूल आधार क्या है ? आचार का सुन्दर महल किस पृष्ठ-भूमि (नीव) पर खडा है ? यहाँ उत्तर खोजना होगा, कुछ गहराई मे उतरकर।

भगवान महावीर ने आचारशास्त्र का वर्णन करके कहा—यह सब आचार, नियम, विधान और मर्यादाएं ज्ञानी के लिए हैं। अज्ञानी, विचारशून्य को तो यह पता भी कैसे चलेगा कि आचार क्या है और अनाचार क्या है ? धर्म क्या है, अधर्म क्या है ?

अन्नाणी किं काही किं वा नाही सेय पावग ?

अज्ञानी, मूर्ख बिचारा धर्म का ज्ञान कैसे करेगा, कैसे वह जानेगा कि श्रेय (आचार) क्या है और पाप (अनाचार) क्या है ?[1] उसके पास आचार-अनाचार को परखने का यत्र कौनसा है ? धर्म-अधर्म को नापने का गज या पैमाना कहाँ है उसके पास ? आचार व धर्म की कसौटी तो ज्ञान करता है, विचार ही आचार का पैमाना है। यह स्पष्ट है कि धर्म से पूर्व दर्शन का उद्भव होता है। दर्शन ही धर्म की मर्यादाएँ स्थिर करता है, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक दर्शन देता है। मेरा विश्वास है कि अहिंसा का विकास पहले विचारो मे हुआ, फिर आचार मे। प्राणी मात्र के प्रति ममत्व भावना, प्रत्येक आत्मा की सत्ता मे विश्वास और उसके साथ आत्मतुल्यता की भावना पहले मस्तिष्क मे उद्भूत हुई, विचार मे जगी, तब फिर उसे जीवन व्यवहार मे साकार किया गया और उसकी विविध मर्यादाएँ बनाई गई। इसी प्रकार सत्य आदि भी

---

१ ऋग्वेद मे भी कहा है— कथा विधायत्य प्रचेता। —१।१२०।१
—अज्ञानी व्यक्ति साधना कैसे कर सकता है ?

पहले दर्शन बने, फिर धर्म रूप मे आये। निष्कर्ष यह है कि विचार दर्शन है, आचार धर्म है। विचारपूर्वक आचार यह आत्म-साधना का मार्ग है।

विचार की सार्वभौम महत्ता

विचार की महत्ता पर दूसरी दृष्टि से भी जब सोचता हूँ तो अनेक तथ्य मस्तिष्क मे उभर आते है। हम मनुष्य है। मनुष्य का अर्थ है—मननशील। '**मननात्-मनुष्य.**' जिसमे विचार करने की, मनन करने की क्षमता है, जिसमे ज्ञान-चेतना जाग्रत है—वह है मनुष्य। अभिप्राय यह है कि मननशून्य विचारहीन व्यक्ति को भाषा वैज्ञानिक मनुष्य भी नही मानता।

दूसरा शब्द है—मुनि। मुनि को हमने धर्म का साकार रूप माना है। साधु या मुनि को 'धर्ममूर्ति' कहा जाता है अर्थात् धर्म को देखना हो तो मुनि को देखलो। अब मुनि शब्द पर विचार करें। भगवान महावीर ने कहा है—

नाणेण य मुणी होइ —उत्तराध्ययन

ज्ञान के कारण ही उसे मुनि कहा जाता है।

आचारागसूत्र मे एक जगह मुनि की परिभाषा की गई है—

पन्नाणेहि परियाणह लोयं
मुणीति वुच्चति— —आचाराग–१।३।१

जो प्रज्ञा के द्वारा लोक को जानता है, बुद्धि के द्वारा लोकस्वरूप पर विचार करता है, उसे मुनि कहा जाता है। तथागत बुद्ध ने मौन धारण करने वाले को मुनि कहा है, और मौन का अर्थ भी है—ज्ञान

मोनं वुच्चति ञाणं[1]

वास्तव मे ज्ञान ही मौन है। जो ज्ञान के द्वारा दोनो लोको के स्वरूप का विचार करता है वही मुनि कहलाता है—

यो मुनाति उभे लोके मुनि तेन पवुच्चति[2]

उक्त चिन्तन के प्रकाश मे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'धर्ममूर्ति' मुनि को 'प्रज्ञामूर्ति' या 'ज्ञानमूर्ति' भी माना है। वास्तव मे जिस प्रकार 'मनुष्य' विचार चेतना का प्रतीक है उसी प्रकार मुनि भी 'ज्ञान चेतना' का प्रतीक है। मुनि शब्द के द्वारा एक विचारक, चिन्तक और विवेचक व्यक्तित्व की कल्पना साकार होती है। मुनि न सिर्फ धर्म का धारक है, किन्तु उससे पूर्व वह 'विचार' का सूत्रदाता भी है। इसीलिए उसे 'आगमचक्खू' कहा है। उसके पास दो नेत्र तो भौतिक हैं ही, किन्तु एक तीसरा अभौतिक नेत्र भी है, दिव्य चक्षु है जिसे हम 'आगम' व ज्ञान या विचार कह सकते हैं। और यह सिर्फ 'मुनि' के पास ही नही, कम-अधिक रूप मे

---

१. महानिद्देसपालि १।२।१४
२ वही १।२।१४

प्रत्येक मनुष्य के पास है। इसीलिए अथर्ववेद मे मनुष्य के मस्तिष्क को 'देवकोप' कहा है। वह तृतीय नेत्र है। यह मत मानिए कि तृतीय नेत्र कोई काल्पनिक तथ्य है, और सिर्फ शिवशकर ही उसे प्रकट कर पाते हैं। हमारे विचारको ने—**'ज्ञानं तृतीयं नेत्र'** कहा है, यह तृतीय नेत्र जिस मनुष्य के भीतर प्रकट होता है वही शिवशकर बन जाता है। ऋग्वेद ने तो ज्ञान को ही चतुर्मुख ब्रह्मा से उपमित कर दिया है। ज्ञानी चारो दिशाओ मे सव कुछ देखता है, सव कुछ सुनता है।

विश्वं शृणोति पश्यति —ऋग्वेद ८।७८।५

हमारा चिन्तन, हमारा मस्तिष्क अक्षय कोप है। समुद्र से भी अधिक गहरा और आकाश से विशाल है। छादोग्य उपनिषद् की भाषा मे कहूँ तो—

स्मरो वा व आकाशाद् भूय —७।१३।१

स्मृति कोप आकाश से भी विराट है।

उक्त सारे विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि ससार मे चिन्तन, विचार और ज्ञान सवसे श्रेष्ठ माना गया है। हम विचार करते है, इसीलिए जीवित है, विचार करते है इसीलिए प्रगति कर रहे हैं। यदि हमारी विचार-चेतना कुठित हो गई तो संपूर्ण सृष्टि जड अधकारमय और निराशामय है हमारे लिए। इसलिए ऋपियो ने कहा है—

वल बुद्धिश्च तेजश्च प्रतिपत्ति क्रियाफलम्।
फलन्त्येतानि सर्वाणि विचारेणैव धीमताम्॥

—योगवाशिष्ठ २,

वल, वुद्धि, तेज, समयानुकूल स्फूर्ति और शान्ति, क्रिया और उसके फल—ये सभी कार्य विचार से ही सफल होते हैं। **विचार मूलं हि जीवनम्**—जीवन का मूल विचार है। विचार हमे तेजस्वी, प्रगतिगील और विवेकी वनाता है। विचार समस्त आचार सृष्टि का नियता है।

'विचार' की यह महिमा समझ लेने के वाद आप अव श्री गणेश मुनि जी शास्त्री के 'विचार-दर्शन' को देखिए। इसमे खूवी यह है कि विचार को दर्शन के रूप मे भी प्रस्तुत किया है और धर्म के रूप मे भी। मुनिश्री जी ने विचार की प्रेरणा, एक उत्कठा कहना चाहिए एक 'पिपासा' हमारे मन मे जगा दी है, हम विचार करना सीखें, विचार अधी दौड नही है, विचार क्रमवद्ध गति है, विचार नृत्य नही है, आरोहण है। हमे जीवन के शिखर पर चढना है, उसकी असीम ऊँचाइयो को छूना है तो विचार करने की कला सीखनी होगी। हम जो कुछ भी कर रहे हैं, उसके पीछे अधानुकरण नही, भेडियाधसान नही, किंतु एक स्पष्ट दृष्टि होनी चाहिए, विचार होना चाहिए। क्या, क्यो, कव, कैसे? इसका समाधान मन को जव मिलता है तो मन एक अपूर्व उल्लास से पुलकित हो उठता है, उसकी अन्तस् चेतना

खिल उठती है, उसकी गति मे तीव्रता और लक्ष्य-वेध आ जाता है। श्री गणेश मुनि जी ने 'विचार-दर्शन' के माध्यम से विचारो की कुठा को तोडकर दृष्टि की स्पष्टता देने का प्रयत्न किया है कमजोर आँखो को चश्मा देने की चेष्टा की है।

'विचार-दर्शन' का क्षेत्र व्यापक है, वहु आयामी है, जीवन के गहरे अनुभवो और तीव्र सवेदनाओ का एक पिटारा है। लेखक की दृष्टि वडी पैनी है, अनुभूति वडी तीव्र है। सवेदनशील कवि मानस प्रत्येक किसलय के कम्पन मे और हवा के प्रत्येक हिलोर मे एक चेतना का अनुभव करता है, एक गति और एक लक्ष्य का मर्म सुनता है और अपनी कल्पना की आँखो मे उसे देखकर शब्दो की छुरी से तराश कर उघाड देता है—यही तो उनकी अभिव्यक्ति की कला है। मुझे कहना होगा—'विचार-दर्शन' मे श्री गणेश मुनि जी शास्त्री एक दार्शनिक कवि, एक चिन्तनशील द्रष्टा वनकर आये हैं—अनुभूतियो की तीव्रता और अभिव्यक्ति की सक्षमता ने उनका अभिनन्दन किया है।

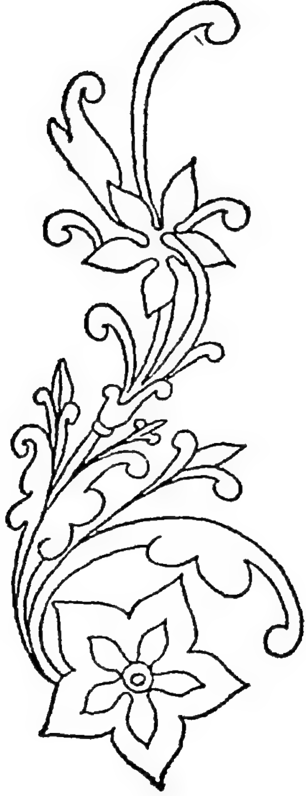
श्री गणेश मुनि जी की साहित्य सर्जना और व्यक्तित्व को शब्द से व्यक्त करना अव कठिन लगता है। वे एक साधक तो हैं ही, साथ ही साथ ही कवि, लेखक, वक्ता चिन्तक, मनीषी और न जाने क्या-क्या विशिष्ट उपलब्धियाँ अपने भीतर छिपाये हुए हैं। उनका वाह्य व्यक्तित्व वडा ही मोहक व प्रभावशाली है तो अन्तर व्यक्तित्व उससे भी अधिक मधुर और आकर्षक है। उनके भव्य ललाट पर उनके दिव्य नेत्रो मे साधुता रमती हुई दिखेगी तो उनकी वाणी और लेखनी मे मनीषा, वैदुष्य अठखेलियाँ करता अनुभव होगा। उनकी सर्जनशील साधुता और साधनाशील साहित्यसृष्टि परस्पर मणि-काचन रूप मे सुशोभित है।

पाठक इस विचार दर्शन से आचार का दर्शन करेंगे और विचार का मर्म समझेंगे, ज्ञान को कर्म से और कर्म को ज्ञान से सयुक्त कर नयी चेतना, नई स्फुरणा प्राप्त करेंगे यह विश्वास है।

महावीर निर्वाण दिवस
ज्योति पर्व
वि० स० २०३२ आगरा

अमर मुनि

अ नु क्र म



विचार-दर्शन

१

जीवन की ऊँचाइयाँ

जीवन की ऊँचाइयाँ



जीवन-ध्येय

अपने उद्‌गम-स्थल से सरिता महासागर से मिलने के लिए कितनी गति और चचलता से प्रवाहित होती है, लेकिन ग्रीष्म ऋतु के आगमन के साथ उसमे जल की मात्रा कम होने लगती है और क्रमश· उसका जल वाष्प बनकर उड जाता है। यही दशा मानव-जीवन की है। मनुष्य अपने दृढ-सकल्प तथा मनोवल के साथ जीवन के ध्येय अथवा लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रयत्न करता है, किन्तु ससार की वासनारूपी ऊष्मा उसकी जीवन-धारा को क्षीण कर देती है और कभी-कभी तो लक्ष्य तक पहुँचने के पूर्व ही उसे सुखा कर समाप्त कर देती है। ऐसी स्थिति मे जीवन-धारा को सतत प्रवह-मान रखने के लिए साधक को विपय-वासना रूपी ऊष्मा से मुक्त होने का प्रयास आवश्यक ही नही वल्कि अनिवार्य है और यही मानव-जीवन का परम ध्येय है।

जीवन का मूल : संयम

आपके पास वडी मूल्यवान मोटरगाडी हो, किन्तु उसमे ब्रेक न हो तो क्या आप उस पर चढना पसन्द करेगे ? शायद नही। इसी प्रकार आपका शरीर सुन्दर व वलिष्ट हो फिर भी उसमे यदि संयम का ब्रेक न हो तो क्या आप जीवन-यात्रा मे सफलता अर्जित कर सकते हैं ? जिस प्रकार मोटरगाडी की सुरक्षा के लिए ब्रेक अनिवार्य है, उसी प्रकार जीवन की सुरक्षा तथा प्रगति के लिए सयम का ब्रेक अनिवार्य है।

जैनदर्शन मे अहिसा, सयम एवं तप को जीवन की त्रिवेणी कहा गया है। जैसे गगा, यमुना और सरस्वती का संगम बडा पवित्र माना जाता है, उसी प्रकार जिस व्यक्ति मे अहिसा, सयम एव तप की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही हो उसे महापुरुष की सज्ञा दी जाती है।

मै सयम को जीवन का मूल अथवा उत्स इसीलिए मानता हूँ क्योकि यह कबीर के शब्दो मे मन रूपी मतवाले हाथी को वश मे रखता है। आधु-निक विज्ञान के अनुसार प्रकाश की गति एक सैकण्ड मे १ लाख ८६ हजार मील है, विद्युत की गति २ लाख ८८ हजार मील है, जबकि विचारो की गति २२ लाख ६५ हजार १२० मील प्रति सैकेंड है। अब आप जरा सोचिये कि ऐसे तीव्र गति वाले मन को यदि सयम का ब्रेक न लगे तो यह क्या नही कर सकता ?

जीवन का भूषण : क्षमा

सस्कृत मे कहा गया है कि नर का भूषण रूप है, रूप का भूषण गुण है, गुण का भूषण ज्ञान है और ज्ञान का भूषण क्षमा है। जो लोग इस क्षमा भूषण को धारण करते है, वे महान है। जीवन मे पग-पग पर क्षमा की आवश्यकता पडती है। हर क्षण क्रोध के वशीभूत होकर यदि हम आचरण करें तो हमारा जीना ही दुर्लभ हो जाये।

कहा जाता है कि महाराष्ट्र के अमर संत तुकाराम एक बार अपने खेत से गन्ने लेकर आ रहे थे। रास्ते मे लोग उनसे गन्ने माँगते गये और वे एक-एक गन्ना देते गये। जब वे घर पहुँचे तब तक उनके हाथ मे केवल एक गन्ना शेष बचा था। उनकी पत्नी कुछ कटु-स्वभाव की थी। अत उसके पूछने पर उन्होने असलियत बता दी। पत्नी ने क्रुद्ध होकर उनके हाथ से गन्ना छीन लिया और उन्ही के सिर पर दे मारा जिससे गन्ने के दो टुकडे हो गये। क्षमा-मूर्ति तुकाराम ने हँसते हुए पत्नी से कहा—"यह बहुत अच्छा हुआ। खाने के लिए तो इसके दो टुकड़े करने ही थे। चलो सहज ही मे हो गये।"

संतुलन

प्रत्येक क्रिया मे प्रमाण एव सतुलन की आवश्यकता होती है। कम खाने से जहाँ अतृप्ति रहती है, वही ज्यादा खाने से अजीर्ण की सभावना

है। इसी प्रकार वृक्ष की जड मे यदि आवश्यकता से कम जल डाला जाये तो उसके सूखने की सभावना रहती है और यदि अधिक डाला जाये तो सडने का भय रहता है। ज्यादा गर्मी दु:खदायी होती है लेकिन कम गर्मी से शिथिलता आती है। अत प्रत्येक कार्य मे सतुलन रखना आवश्यक है।

यह सिद्धान्त जीवन पर भी लागू होता है। यदि जीवन को कठोर अनुशासन और सिद्धान्तवादिता के कठघरे मे वन्दी वनाकर डाल दिया जाये तो उसका दम घुटने लगेगा अथवा उसके अवयवो के अन्दर रक्त-सचार मे बाधा उपस्थित होगी। दूसरी ओर यदि जीवन को स्वतन्त्रता की आँधी मे छोड दिया जाये तो पथभ्रष्ट होने अथवा नैतिक पतन की सभावना से इन्कार नही किया जा सकता। अत वहाँ भी अनुशासन तथा स्वतन्त्रता के वीच सतुलन की परम आवश्यकता होती है।

अपने स्वरूप में

जीवन मे जो व्यक्ति अपने स्वरूप को पहचान कर उसमे रमण करता है, वह वन मे रहे या वाजार मे, उसे सर्वत्र शान्ति का सागर हिलोरे लेता दिखाई देता है। लेकिन अपने स्वरूप को पहचानना ही तो कठिन है जव कि जीवन की यही सवसे वडी साधना है। भारतीय दर्शन की सवसे वडी उपलब्धि भी यही है कि 'अपने स्वरूप को पहचानो'। स्वरूप को जव पहचान लिया जाता है तो चैतन्य की साधना स्वत प्रारम्भ हो जाती है। फिर उसकी दृष्टि मे सुख-दु ख का कोई महत्त्व ही नही रहता।

इस प्रसग मे मुझे महाभारत की एक घटना का स्मरण हो आया है। एक वार युधिष्ठिर को वन मे तपस्या करते हुए देखकर द्रौपदी ने जिज्ञासा व्यक्त की—"महाराज ! आप प्रतिदिन वडे नियम-सयम के साथ ईश्वर की आराघना करते है। फिर आप उनसे यह क्यो नही कहते कि हमारे जीवन के सारे कष्टो को दूर करदे। हम दर-दर की ठोकरे खा रहे है तो क्या आप इतना निवेदन भी अपने भगवान से नही कर सकते ?" युधिष्ठिर ने द्रौपदी के मन की जिज्ञासा को शात करते हुए कहा—"पाचाली ! मैं भगवान का भजन इसलिए नही करता कि वे हमारे कष्टो को दूर करके हमे सुख का साम्राज्य सौप दे। यह तो भजन न होकर सौदेवाजी है। मैं तो अपने आनन्द के लिए आराधना करता हूँ। उसके चिन्तन से ही मेरे मन को प्रसन्नता प्राप्त होती है।"

मैं समझता हूँ कि जिसे अपने स्वरूप का अर्थात् चैतन्य आत्मा का ज्ञान हो गया उसके लिए युधिष्ठिर के कथन मे छिपे गूढार्थ को समझने मे कोई कठिनाई नही होगी।

जीवित क्रियायें

भगवान महावीर ने कहा है—"माणुस्स खु सुदुल्लहं'—इस अनन्त ससार मे उसके जीवन के अनन्त प्रकारों मे मानव-जीवन ही सबसे अधिक दुर्लभ है। आचार्य शकर भी अपने 'विवेक चूडामणि' ग्रन्थ मे मानव-जीवन को दुर्लभ बताते हैं। सत-कवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी यह स्वीकार किया है—'बडे भाग मानुष तनु पावा।' एक शायर ने तो इससे भी दो कदम आगे बढकर कह डाला है—

नर का शरीर पुण्य से पाया कभी-कभी।
कगाल के घर बादशाह आया कभी-कभी।

इतने दुर्लभ शरीर को पाकर निष्क्रिय होना तो महापाप है। हम बिना कुछ किये जीवित नही रह सकते। अच्छा या बुरा कुछ न कुछ तो करना ही होगा। इसीलिए मैं कहता हूँ कि मनुष्य की क्रियाये भी दो प्रकार की हैं—पहली जीवित और दूसरी मृत। जीवित क्रियाये सार्थक और महान् हैं, मृत क्रियाये निरर्थक और दुराचार को प्रेरणा देने वाली हैं। जिन क्रियाओ मे धर्म की आत्मा मुखरित नही होती, वे निष्प्राण हैं, उनमे धर्म की ज्योति सदा के लिए बुझ गई है। किन्तु वे क्रियाये जीवित हैं जिनमे अहिंसा, दया, प्रेम और मानव-कल्याण की महक है।

समय

जीवन की महत्ता समय के सदुपयोग अथवा दुरुपयोग से निर्धारित होती है। जैसे डाक्टर थर्मामीटर की सहायता से यह जान लेता है कि रोगी को कितने डिग्री बुखार है अथवा एक वैज्ञानिक यन्त्र की सहायता से यह समझ लेता है कि दूध में कितना पानी है, उसी प्रकार मनुष्य की महानता अथवा गम्भीरता को नापने का सबसे बडा साधन उसका व्यतीत होने वाला समय है। दैनिक चर्या अथवा समय का थर्मामीटर लगाकर यह निर्णय किया जा सकता है कि उस मनुष्य की जिन्दगी मे कितनी असलियत और कितनी कृत्रिमता है।

इस सन्दर्भ मे राष्ट्र-पिता महात्मा गाधी का उदाहरण हमारे सामने है। सन् १९२९ की बात है, जब गाधीजी अपने नाती श्री कातिलाल के साथ उत्तर प्रदेश का दौरा कर रहे थे। एक दिन गाधीजी की घडी उनके सामने के कागज-पत्रो मे कही खो गयी थी, अत मिल नही रही थी। बापू ने काति से पूछा—"काति, कितने बजे है ?"

कातिलाल ने अपनी कलाई की घडी की ओर देखकर कहा—"बापू पाँच बजे है।" गाधीजी की दृष्टि भी तब तक काति की घडी पर पड चुकी थी। अत उन्होने पुन पूछा—"ठीक पाँच बजे है ?"

कातिलाल इस प्रश्न से सकपका गया। उसने कहा—"नही बापूजी ! पाँच बजने मे एक मिनट शेप है।" गाधीजी ने बडे दृढ स्वर मे कहा—"अरे, अगर तुझे समय की कीमत नही मालूम, तो फिर घडी क्यो बाँधे फिरता है ? तुझे पता है काति, इस समय देश की जनसख्या ३३ करोड़ है और उसमे से अगर हर व्यक्ति ने गैर महत्त्वपूर्ण समझकर एक-एक मिनट छोड दिया तो ३३ करोड मिनट के कितने दिन होगे, महीने कितने होगे ? इस निर्धन देश को समय का यह अपव्यय कितनी हानि पहुँचायेगा ?"

यह थी गाधीजी की समय की पाबन्दी ! यह था उनके प्रामाणिक व्यक्तित्व का असली स्वरूप !

लक्ष्य निर्धारण

चित्रकार अपनी तूलिका से चित्र अकित करने के पूर्व मन मे रग और रेखाओ की एक आकृति निर्मित कर लेता है। इन्जीनियर भव्य अट्टालिका अथवा भवन बनाने से पहले कागज पर नक्शा खीच डालता है। एक डाक्टर रोगी का आपरेशन करने के पूर्व अपने कार्यक्रम को निर्धारित कर लेता है। तो फिर जीवन-निर्माण के पूर्व आप भी अपना एक लक्ष्य क्यो नही निर्धारित करते ?

स्टेशन पर जाकर आप हडबडी मे चलती गाडी पर चढकर तो नही बैठते। पहले आप उस गाडी के गतव्य-मार्ग की जानकारी लेते है तब उस पर यात्रा करते हैं। यही बात सुव्यवस्थित जीवन के निर्माण मे भी ध्यान देने योग्य है। जो आँख मूँदकर दौडते हैं, उन्हे आज नही तो कल किसी न किसी गड्ढे मे गिरना ही होगा। अत जीवन को सुचारु रूप से बढाने के लिए लक्ष्य निर्धारण आवश्यक है।

घड़ी और मानव-तन

एक वृद्ध ने बुढापे से बडा टेढा सवाल किया—"अरे भाई ! मैंने तो यह सुन रखा था कि बिना बुलाये कोई किसी के पास नही आता। मैंने तो तुझे निमन्त्रण भी नही दिया, फिर तू मेरे पास कैसे आ गया ?"

बुढापे ने वृद्ध की जिज्ञासा को शात करते हुए उत्तर दिया—"तूने वचपन खेल-कूद मे विताया, यौवन मे तू नारी के साथ भोग-विलास मे लिप्त रहा, किन्तु सत्य-धर्म का सेवन कभी नही किया, अत. तुझे समझाने के लिए मुझे विना बुलाये ही मजबूर होकर आना पडा।"

वृद्ध और वुढापे का यह सवाद आँखे खोल देने वाला है। यदि घडी चलते-चलते रुक जाती है या उसके पुर्जे घिस जाते है तो घडी-साज के पास जाकर नये पुर्जे डलवा देते है और घडी फिर से काम करने लगती है। लेकिन मानव-शरीर के पुर्जे यदि एक बार घिस गये तो वदलवाना कठिन है। मानव-शरीर इतना नाजुक है कि उसमें से यदि प्राण रूपी यन्त्र निकल जाये तो वह सदा के लिए वन्द हो जाता है, फिर उसे कोई चला नही सकता। अत उस प्राण-यन्त्र के विगडने या घिसने के पूर्व ही अपने शुभ कर्मो का लेखा-जोखा कर लेना चाहिए।

मानवता

जैनो के 'उत्तराध्ययनसूत्र' मे, वौद्धो के 'धम्मपद' मे, शकराचार्य के 'विवेक चूडामणि' मे, ईसाइयो के 'वाइविल' मे तथा मुसलमानो के 'कुरान' मे—इन सभी शास्त्रो मे मानवता की महत्ता गायी गई है। जैसे नमक के विना दाल, शक्कर के विना खीर और वर्फ के बिना शरबत अलोने या स्वादविहीन लगते है, उसी प्रकार 'मानवता' के विना मानव-जीवन अरुचिकर और फीका लगता है। मानव-शरीर धारण कर समाज मे पशुवत् आचरण करने वाले कितने ही मनुष्य विद्यमान हैं। अत शरीर का महत्त्व नही है, महत्त्व है शरीर के द्वारा सम्पन्न मानवीय कार्यो का।

यूनान के सुप्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने मानवता के चार अग वतलाये है—(१) विवेकशीलता, (२) न्यायप्रियता, (३) सहिष्णुता, तथा (४) वीरता। इन चारो अगो को धारण करने से मनुष्य को मनुष्य कहलाने का गौरव प्राप्त हो सकता है।

जीवन-वीणा

मानव-जीवन एक सुन्दर वीणा के समान है। वीणा के सुयोग्यवादक को यह सूत्र ज्ञात होता है कि वीणा के तार यदि ज्यादा कसे हुए होगे तो उनके टूट जाने का भय है और यदि ढीले होगे तो उनसे झकृति भी सभव नही है। जव तार समगति मे होगे तभी उसमे से सुमधुर सगीत की सृष्टि हो सकेगी।

जीवन-वीणा की स्थिति इससे कुछ भिन्न नही है। यदि जीवन को नियम, सयम और अनुशासन के जटिल वन्धनो से जकड दिया गया तो उसकी स्वाभाविक गति कुण्ठित हो जायेगी, जैसे शिशु के मस्तक पर शिला रख देने से उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। जीवन की स्वाभाविक मधुरता बनी रहे इसके लिए उसे कठोर अनुशासन से मुक्त रखना होगा। किन्तु जीवन को इतना बेलगाम भी नही कर देना है कि वह मनचाही दिशा मे भागता फिरे अर्थात् उसके ऊपर इतना बन्धन तो अवश्य होना चाहिए कि वह अनियन्त्रित होकर आत्मानुशासन न खो बैठे।

जीवनी-शक्ति

जिस बीज मे जीवनी-शक्ति अथवा विकास का सकल्प होता है उसे मिट्टी भी दबाकर नही रख पाती। अवसर पाते ही वह अकुरित होकर वाहर आ जाता है-और तव मिट्टी ही उसे प्रोत्साहित करते हुए कहने लगती है—'आगे वढो ! आगे वढो !' प्रकृति की सारी शक्तियाँ फिर उसे सहयोग देने लगती है। जल उसे सरसब्ज बनाता है, हवा उसके कन्धे थपथपाती है और सूर्य की किरणें उसे अपने स्नेह की ऊष्मा से विकास मे मदद देती है।

इसी प्रकार जिस जीवन मे चेतना-स्फुरित है उसके लिए विषम परिस्थितियाँ भी अनुकूल साधन एकत्र करने लगती है। इतिहास मे इसके कई ज्वलत उदाहरण प्राप्त होते है। इटली का अधिनायक मुसोलिनी एक गरीब लुहार का लडका था, हिटलर एक वीर सिपाही था जो जर्मनी का भाग्य विधाता वना। अमेरिका के धनकुवेर राकफेलर सडकों पर मामूली चीजे वेचते थे। अत· जीवनी-शक्ति और सकल्प की कमी न हो तो मनुष्य क्या नही वन सकता ?

जीवन-नैया

'महाभारत' के 'शान्तिपर्व' मे वेदव्यास जी ने लिखा है—

> गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रवीमि,
> न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित् ।

अर्थात्—तुम लोगो को मैं एक अत्यन्त गुप्त बात बता रहा हूँ। सुनो ! मनुष्य से बढकर और कुछ भी श्रेष्ठ नही है।

इतने श्रेष्ठ और महान जीवन को पाकर भी जो लोग लापरवाही या असावधानी का परिचय देते हैं, वे दया के पात्र है। ससार के अपार सागर मे उनकी जीवन-नैया दिग्भ्रमित होकर थपेड़े खाती रहती है क्योकि उन्होने लक्ष्य-निर्धारण का कष्ट ही नही उठाया। निर्धारित लक्ष्य के बिना नौका जिस प्रकार अनत जल-सागर मे भटक जाती है, उसी प्रकार जीवन-नैया भी बिना लक्ष्य के सासारिक आकर्षणो तथा प्रलोभनो के बीच भटक जाती है। अत साधना के राजपथ पर अग्रसर होने वाले पथिको को सबसे पहले अपनी साधना के लक्ष्य का निर्धारण कर लेना चाहिए।

व्यसन

जैनाचार्यो ने जुआ, मास, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी तथा पर-स्त्रीगमन—इन सातो को महाव्यसन की सज्ञा दी है और मानव को इनसे बचने की सलाह दी है। इन व्यसनो के कारण बडे से बड़े प्रतापी राजाओं को भी नष्ट होना पडा है, फिर साधारण जनो की तो बात ही क्या है ? मैं सोचता हूँ कि व्यसन वृद्धावस्था को प्राप्त करने का सबसे सुलभ 'शार्टकट' है। जिसके जीवन मे व्यसन का प्रवेश हो गया वह अपने मनोबल को तो नष्ट कर ही देता है, साथ ही यौवन की तेजस्विता से भी उसे हाथ धोना पडता है।

जीवन-शोध

भगवान महावीर ने कहा है—

> अनासए सरीरम्मि रइ नोवलभामहे।
> पच्छा पुरा व चइयव्वे फेणबुब्बुय सन्निभे।

अर्थात्—पानी के बुलबुले के समान अशाश्वत शरीर मे मुझे (मृगापुत्र) प्रीति नही है, क्योकि यह तो पहले या पीछे छोड़ना ही पडेगा।

भगवान महावीर के इन वचनो के सन्दर्भ मे जब मैं आज लोगो को शरीर-साधना—अर्थात् अच्छा खाना, अच्छा पहनना, सौन्दर्य-प्रसाधनो का अधिकाधिक प्रयोग करते देखता हूँ तो आश्चर्य होता है। पश्चिम मे एक जीवन-दर्शन ही फल-फूल रहा है—खाओ, पीओ और मौज उडाओ (Eat, drink and be merry)। भारतीय दार्शनिको मे नास्तिकवादी जीवन-दर्शन के प्रमुख स्तम्भ चार्वाक् ने भी ऐसी ही बात कही थी। लेकिन चार्वाक् की आधुनिक सताने उससे भी कई कदम आगे बढ गई है। मैं पूछता हूँ कि जीवन का एकमात्र उद्देश्य क्या केवल खाना, पीना और मौज उडाना ही है ? मै खाने-पीने का विरोध नही करता क्योकि शरीर को टिकाये रखने के लिए यह आवश्यक है। लेकिन जीवन तो इन सबके ऊपर की वस्तु है। मात्र आहार, निद्रा और मैथुन ही जीवन के सर्वस्व नही है। इस प्रश्न का उत्तर प्रत्येक प्रगतिशील चिन्तक को देना होगा कि जीवन का लक्ष्य क्या है और उस लक्ष्य की प्राप्ति के समुचित साधन क्या है ?

नदी का मूलस्रोत

आजकल आये दिन समाचार-पत्रो मे खबरे छपती रहती है कि आज अमुक देश के अमुक व्यक्ति ने अमुक पर्वत के सर्वोच्च शिखर पर मानव विजय का झण्डा गाड दिया। महान यातना और जोखिम होने पर भी मनुष्य इस अभियान मे लगा हुआ है। विजय-अभियान के पश्चात् लौटे हुए व्यक्ति से जब पत्रकार पूछते हैं—"आपको वहाँ पहुँचने पर कैसा लगा ?" तब वह व्यक्ति सहजता से यही उत्तर देता है कि "भाई ! मैं वहाँ किसी वस्तु की खोज मे नही गया था, और न वहाँ किसी अलभ्य वस्तु के लालच से प्रेरित होकर मैंने यह कार्य किया है। मेरे मन मे तो यह जिज्ञासा प्रारम्भ से बनी थी कि इस पर्वत की चोटी पर चढकर देखूँ कि वहाँ क्या है ? इस जिज्ञासा ने ही मुझे यह साहसपूर्ण कार्य करने की प्रेरणा दी।"

मैं समझता हूँ कि यह उत्तर सर्वथा उचित है। जो लोग साहसी और धैर्यवान होते हैं वे नदी के मूलस्रोत की खोज मे प्राणो की बाजी लगा देते है। उनके मन मे यह जिज्ञासा ही प्रेरणा का स्रोत बन जाती है। मै पूछता हूँ कि क्या कभी आपने भी जीवन के मूलस्रोत की खोज की है ? क्या आपके मन मे यह जिज्ञासा नही उमडती कि जीवन क्या है, क्यो है और

किसके लिए है ? आप भी अपने साहस का परिचय देते हुए जीवन सम्बन्धी इन मूलभूत प्रश्नो का समाधान खोजे ।

नोटिस

एक लोककथा के अनुसार, एक बार यमराज के दूत मरणोपरान्त एक वकील को अपने स्वामी के पास ले गये । धर्मराज ने अपना रजिस्टर खोलकर बताया कि इस वकील ने जीवनभर धर्माचरण से अपने को दूर रखा और दोनो हाथो से येन-केन-प्रकारेण धन बटोरता रहा, अत यह नरक मे ले जाने के योग्य है । वकील जिरहबाज होते ही है, अत उसने धर्मराज से ही जिरह आरम्भ कर दी—"आपने बिना नोटिस दिये मेरे नाम वारन्ट निकालकर मुझे अपने दूतो से गिरफ्तार करवा लिया है, यह कानून की अवहेलना है । कानून के अनुसार तो पहले नोटिस देना चाहिए तब वारण्ट निकल सकता है ।" धर्मराज बेचारे बड़े पेशोपेश मे पड़े । वकील के प्रश्न ने उनको भी चक्कर मे डाल दिया । थोडी देर तक चिंतन के पश्चात् धर्मराज ने वकील को जो उत्तर दिया वह हर व्यक्ति के लिए ध्यान देने योग्य है ।

धर्मराज ने कहा—"वकील साहब ! मैंने आपको कई बार नोटिस दिया है । सर्वप्रथम आपके बाल सफेद किये, फिर धीरे-धीरे नेत्रो की ज्योति मन्द कर दी, कानो द्वारा सुनने की शक्ति कम कर दी, दाँत गिराये और फिर शरीर के अग शिथिल कर दिये । लेकिन आपने हमारे नोटिस पर कभी ध्यान ही नही दिया । अत. मजबूर होकर आपके नाम मृत्यु का वारण्ट निकालना पड़ा ।" इस उत्तर ने वकील की जबान बन्द कर दी और उसने चुपचाप नरक की राह पकड ली ।

प्रेरणा

सरिता के मस्ती भरे जल को कौन कहने जाता है कि तू अविराम गति से बहता रह ? लेकिन ऐसा लगता है कि बहने मे ही उसने अपनी सार्थकता मान ली है । किनारे मानो उनकी पीठ थपथपाते हुए कहते हैं कि तू बहता रह । लहरे ऊँचे उठकर उसे प्रोत्साहन देती है कि तुझे मार्ग मे कही रुकना नही है ।

मैं समझता हूँ कि मनुष्य का जीवन भी एक महानदी की भाँति है जिसमे इच्छा रूपी अनेक प्रकार के भँवर उठा करते हैं । संयम इसके दोनो

तट के समान है जो इसे मर्यादा के भीतर वहने की प्रेरणा देता है। इसमे ऊँची-ऊँची लहरे ज्ञान और विवेक की है जो मनुष्य को उत्प्रेरित करती है कि वह भी ऊँचा उठे और निरन्तर विकास करे। प्रगतिशील जीवन-सरिता की यही सुन्दर व्याख्या है।

जीवन की कीमत

राष्ट्रकवि दिनकर ने कही लिखा है—

चूम कर मृत को जिलाती जिन्दगी।
फूल मरघट मे खिलाती जिन्दगी॥

रात्रि के विना जैसे दिन की कीमत नही, उसी प्रकार आघात, निराशा, निर्वेद और पराजय के विना जीवन की कोई कीमत नही है। जैसे घनघोर वीहड वनो मे रास्ता वनाने के लिए काँटे और झाडियाँ काटनी पडती है, वैसे ही जीवन की चरितार्थता के हेतु मुसीवतो का सामना करना पडता है। जो लोग निराशा और असफलता को देखकर इस जीवन-यात्रा से मुख मोड लेते हैं उनका पौरुप थक जाता है और साधना के उच्चतम सोपान उनकी पहुँच से वाहर हो जाते हैं। अत निराशा से वचने के लिए दृढ-सकल्प होना चाहिए। अग्रेजी मे एक कहावत है कि ईश्वर भी उन्ही की मदद करता है जो अपनी मदद स्वय करते है। साहसी नाविक सरिता की प्रखर धार एव उत्ताल तरगो से नही घवडाते। जो कायर है उन्ही को अच्छे समय की प्रतीक्षा रहती है, साहसी के लिए तो जीवन का हर क्षण नये सकल्प का द्योतक है।

जीवन-यात्रा

कहा जाता है कि विना लक्ष्य का जीवन जीने वाला निश्चय किये विना रेलगाड़ी मे बैठने वाले व्यक्ति के समान मूर्ख है। यही वात जीवन-यात्रा की भी है। हमे कहाँ जाना है ? हमारे पास पाथेय क्या है ? हमारा मार्ग-दर्शक कौन है ? आदि प्रश्नो का समाधान हमे यात्रा के पूर्व ही अपनी विवेक-वुद्धि से प्राप्त कर लेना चाहिए। जिनके पास यात्रा का उचित कार्यक्रम है, जो अगले पडाव की योजना पहले ही वना चुके है, उनके लिए यह यात्रा अत्यन्त सुखद और निर्विघ्न है। लेकिन जो विना स्पष्ट निर्णय लिए अथवा भावी जीवन की स्पष्ट रूप-रेखा का अङ्कन किये विना इस भव-

सागर मे अपनी जीवन-नौका उतार देते है वे निश्चित रूप से भटक जाते हैं।

बौद्ध साहित्य मे एक बडी सुन्दर कथा मिलती है जिसमे बताया गया है कि एक राजा के राज्य की सीमा पर बीहड जंगल थे जहाँ रात-दिन भयकर जीव-जन्तु उत्पात मचाया करते थे। उस राज्य की एक अनोखी प्रथा थी कि पाँच वर्ष तक राज्य का शासन-सूत्र सँभालने के बाद हर राजा को उस जगल मे भेज दिया जाता था जिसका नाम सुनकर ही प्राण गले मे आ जाते थे। इसी परम्परा मे एक बार एक राजा को जब सिहासन मिला तो बडे धूमधाम के साथ उसका समारोह मनाया गया। लेकिन राजा बेचारे को तो पाँच वर्ष के बाद जगल मे जाने वाली बात ने इतना आतंकित कर दिया कि उसके लिए दो क्षण की सुखद नीद भी हराम हो गयी।

सयोगवश उस राज्य मे एक बूढा दार्शनिक आया और राजा की परेशानी के समाचार सुनकर उसने राजा से मुलाकात करने का निश्चय किया। जब राजा ने दार्शनिक से अपनी पीडा और मानसिक चिन्ता का रहस्य खोला तो दार्शनिक ने कहा—"राजन्! तू पाँच वर्ष की अवधि मे जैसा चाहे वैसा कर सकता है या नही? तू तो इस अखण्ड साम्राज्य का मालिक है। अत तेरी इच्छा सर्वोपरि होगी।" राजा ने कहा—"जी हाँ। मैं पाँच वर्ष तक तो जो चाहे कर सकता हूँ। मेरे पास सत्ता, बल अधिकार आदि सब कुछ है।"

दार्शनिक ने बताया—"राजा! तू अपने अधिकारो का उपयोग क्यो नही करता। तू चाहे तो इस अवधि मे उस जगल को कटवा कर साफ करा दे और वहाँ एक नया साम्राज्य स्थापित करदे जिसमे तेरे सुख-साधन की सभी सामग्री एकत्र कर दी जाये।"

राजा ने दार्शनिक से जीवन का रहस्य पा लिया। दूसरे दिन से उसने योजनानुसार सारे जंगल साफ कराने शुरू कर दिये और कुछ ही दिनों मे वहाँ एक सुन्दर राजमहल निर्मित हो गया। अब उसके मन मे पाँच वर्ष की अवधि के बाद भोगे जाने वाले कष्टो का जरा भी भय नही था। समय आने पर वह उस राज्य को छोडकर अपने नये राज्य मे प्रस्थान कर गया।

सारांश यह है कि जिनके पास अपनी जीवन-यात्रा के अगले पडाव की सुन्दर योजना है, सुव्यवस्था है उनके लिए यह यात्रा आनन्द के सागर

मे गोते लगाने के समान है । अत गन्तव्य पर पहुँचने के पहले अपनी सारी तैयारी पूरी कर लेनी चाहिए, ताकि यात्रा का आनन्द वना रहे ।

सीमाओं को पहचानो

एक वार हम लोग जिस वगले मे ठहरे हुए थे, ठीक उसी के सामने नाना प्रकार के फल-फूलो से आपूरित एक अत्यन्त रमणीय उद्यान था । प्रात.काल उठकर जव मै अपनी साधना मे लीन था तो मेरी दृष्टि अचानक उस उद्यान के वृक्षों की टहनियाँ तथा डालियाँ काटते हुए माली पर पडी जो वड़े मनोयोग से अपने दायित्व का निर्वाह कर रहा था । जो डालियाँ अपनी सीमाओ से आगे वढ गयी थी उनको काटकर वह सम कर रहा था ताकि उद्यान का सौन्दर्य अक्षुण्ण वना रहे ।

इस दृश्य को देखकर मेरे मन मे एक जिज्ञासा उठी कि माली इतनी सुकोमल डालियो पर क्यो कैंची चला रहा है ? क्या उसे वृक्षो के स्वाभाविक विकास से कोई चिढ है ? इतनी सुन्दर वनस्पतियो से उसे वैर-भाव रखने से क्या मिलता है ?

मन मे उथल-पुथल चल ही रही थी कि मेरी मनीपा ने इस रहस्य का द्वार खोल दिया । मनीपा से उत्तर मिला—जो अपनी सीमाओ का उल्लघन कर देता है, उसे तो दण्ड भोगना ही पडता है । ये वृक्षो की टहनियाँ अपनी सीमाओ के घेरे को तोडकर वाहर निकल गई है जो उद्यान के सौन्दर्य की दृष्टि से अवाछनीय है । अत माली इन्हे काटकर वरावर वने रहने का दण्ड प्रदान कर रहा है ।

जीवन-उद्यान का सौन्दर्य विनष्ट न हो इसके लिए मनुष्य को अपनी इच्छाओ तथा क्रियाओ को सीमा के भीतर ही रखना चाहिए अन्यथा दण्ड भोगना ही पडता है । अत सामाजिक मर्यादाओ का पालन भी आवश्यक हो जाता है ।

नया सृजन

जैनधर्म की मूल प्रवृत्ति निवृत्तिमार्गी है, किन्तु इसका यह आशय नही है कि वह इस लोक को सुखी वनाने मे विश्वास नही करता अथवा वह परलोक के सम्वन्ध मे ही चिन्तन करता है वल्कि त्याग और मोक्ष के आदर्शों के साथ वह इस ससार को भी सुखी और सम्पन्न देखना चाहता है ।

जैनदर्शन हमे जीवन की कला सिखाता है, हमारे जीवन को सुख और शान्तिमय बनाने का मन्त्र देता है क्योकि यह एक क्रान्तिकारी जीवन-दर्शन है। पुरातनता और परम्परा के प्रति वह दुराग्रही नही है। जो मान्यताएँ समाज रूपी भवन की दीवालो तथा छतो को नुकसान पहुँचाती है अथवा जिन रूढियो के चलते सामाजिक विकास की धारा अवरुद्ध होती है, उन्हे विनष्ट कर नयी मान्यताओं तथा नये जीवन-मूल्यो के सृजन मे उसकी दृढ आस्था है। आज समाज मे परम्परा से प्राप्त ऊँच-नीच का भाव हमे समाप्त करना होगा, भले ही इसके लिए नूतन समाज का सृजन करना पडे। पुराने महल मे रहने वाले सदैव इस भय से ग्रस्त रहते है कि कही दीवाल न गिर पडे या छत ऊपर न आ जाये। अत. प्राचीनता के साथ-साथ नवीनता का पावन सगम समाज-सुधार को नई दिशा दे सकता है। दहेज, वाल-विवाह तथा भ्रष्टाचार रुपी दानव ने सामाजिक जीवन को दूषित कर दिया है। अत. ऐसी सड़ी-गली मान्यताओ से मुक्ति पाना आवश्यक है।

क्या डरेगा ?

'मरणमम नत्थि भय'—मरण के समान दूसरा कोई भय नही है, लेकिन भगवान की पवित्र वाणी तो यह कहती है—"न स तसति मरणते, शीलवन्ता वहुस्सुआ"—अर्थात् चरित्रवान बहुश्रुत महात्मा मरण के समय भयभीत नही होते। जिसने जीवन मे सिंह के साथ युद्ध कर विजय प्राप्त करली है वह भला गीदड़ से क्या डरेगा ?

जिस मनुष्य ने देश और समाज की सेवा के लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया है, उसे भला साधारण भय कभी विचलित कर सकते हैं ? गाधी, सुकरात, ईसामसीह, स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे महात्माओ और चरित्र-वान पुरुषो ने कभी भी मृत्यु की चिन्ता नही की। समाज-सुधार और राष्ट्र सुधार के महान् आदर्शो से प्रेरित होकर सत-जन मृत्यु की चुनौती को भी स्वीकार करते हैं।

मर्यादा

एक स्थान पर आचार्य विनोवा भावे ने लिखा है—"गगा अपने नियत मार्ग से बहती है, इस कारण उसका ज्यादा से ज्यादा उपयोग होता है। किन्तु अधिक उपयोगी होने के लोभ से यदि वह अपना नियत मार्ग छोड़कर लोगो के आँगन मे बहने लगे तो लोगो की क्या दशा होगी ?"

यही वात मनुष्य की भी है। मनुष्य जब तक अपनी मर्यादा अथवा सीमा के अन्तर्गत कार्य करता है, आचरण सम्बन्धी अतिरेक से वचता है, तव तक ससार मे उसकी उपयोगिता है, किन्तु जब वह अपनी मर्यादा को भूलकर शैतानियत के घर मे प्रवेश करता है तो विश्व मे प्रलय मचा देता है।

नेत्र बन्द होने पर

एकवार मध्यरात्रि मे राजा भोज की नीद उचट गयी। अत: राजमहल की खिडकी पर बैठकर अपने राज्य-वैभव का अहकार करते हुए उन्होने एक श्लोक की प्रथम तीन पक्तियाँ रच डाली। लेकिन चौथी पक्ति की रचना वे नही कर पा रहे थे। इसी वीच राजमहल मे चोरी करने के अभिप्राय से एक विद्वान चोर ने प्रवेश किया। राजा भोज अपने वनाये हुए श्लोक की तीन पक्तियाँ बार-बार इस प्रकार पढ रहे थे—

चेतोहरा युवतय स्वजनोऽनुकूलः,
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः।
गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गा.,

अर्थात्—मेरे मनोहर स्त्रियाँ है, अनुकूल स्वजन है, अच्छे भाई है, स्नेह-गर्भित वाणी बोलने वाले सेवक हैं, गर्जना करते हुए हाथी हैं और चचल घोडे हैं। यह सुनकर चोर ने श्लोक की अन्तिम पक्ति की रचना करते हुए कहा—

समीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति ॥

अर्थात्—आँखे वन्द हो जाने पर ये सब कुछ नही है।

चोर की मार्मिक पदपूर्ति से राजा भोज का अहकार चूर-चूर हो गया। उन्होने तत्काल ही अपने सिपाहियो को चोर को पकडकर लाने का आदेश दिया। प्रात:काल जब दरबार लगा तब उस चोर को मृत्युदड दिया गया। विद्वान चोर ने तत्काल ही दूसरा पद रचकर राजा भोज को सुनाया—

भल्लिर्नष्टो भार्गवश्चापि नष्टो,
भिक्षुर्नष्टो भीमसेनोऽपि नष्ट.।
भुकुण्डोहं भूपतिस्त्वं च राजन्,
पंक्तौ भस्य ह्यन्तकस्य प्रवेश ॥

अर्थात्—हे राजन् ! भल्लि का नाश हुआ, फिर भार्गव, भिक्षु और भीमसेन मारे गये। मेरा नाम भुक्चड है और आप भूपति है। अगर मुझे मार देगे तो फिर आपके भी मरने की वारी आ जायेगी। इसीलिए इस श्लोक मे 'भकार' की पक्ति मे इस समय यम (मृत्यु) का प्रवेश हो रहा है।

विद्वान चोर के इस श्लोक ने राजा भोज की आँखे खोल दी। उन्होने उसकी विद्वत्ता का सम्मान करते हुए उसे मुक्त कर दिया और पुरस्कार स्वरूप धन-धान्य भी दिया।

कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन मे किसी भी प्रकार का अहकार अशोभनीय होता है। अहकार करने वाला भूपति हो या रक लेकिन जीवन तो क्षणभगुर है, उसकी ममता का क्या महत्व ?

आदर्श

जीवन में कहना जितना सरल है, करना उतना ही कठिन है। मुँह से लम्वी-चौडी योजना का वखान करने मे कुछ नही लगता लेकिन उसको कार्यरूप मे परिणत करना पर्याप्त दुष्कर होता है। जिस दिन भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई थी उस दिन एक अग्रेज ने कहा था—"भारत को अब जीभ छोटी बना लेनी चाहिए, क्योकि भारत वोलता ज्यादा है और करता कम है।"

इसीलिए महापुरुपो ने वाचालता की निन्दा की है। वाचालता और कर्मठता मे सामजस्य न होने पर मनुष्य की कीमत स्वय घट जाती है। भगवान महावीर का इसीलिए आदेश था—"वहुय मा य आलवे"—अर्थात् वहुत नही वोलना चाहिए। वडी-वडी बाते वनाना छोडकर जो कर्मक्षेत्र मे उतरता है उसे ही सिद्धि प्राप्त होती है।

जीवन की पवित्रता

योगसार मे लिखा गया है—कि जिनेन्द्रेण रागाद्यैर्यदि स्व कलुष मन· ?—यदि हमारा मन रागादि दोषो से कलुषित है तो जिनेन्द्र भगवान भी क्या कर सकते है ? इसी वात को ध्यान मे रखकर उर्दू के सुप्रसिद्ध शायर इकवाल ने कहा है—

मस्जिद तो वना ली पल भर मे, ईमाँ की हरारत वालो ने।
यह मन तो पुराना पापी है, वर्षो मे नमाजी वन न सका ॥

शरीर तथा शरीर पर धारण किये गये वस्त्रो की पवित्रता से अधिक महत्त्वपूर्ण जीवन की पवित्रता है। जैसे शरीर का कोई भी भाग दूषित होने पर सम्पूर्ण शरीर की पवित्रता खडित होती है, घर के एक कोने मे पडे कचरे से सारे घर का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार जीवन का एक भी अशुद्ध तथा पतित कार्य सारे जीवन की महानता के आगे प्रश्न-चिह्न लगा देता है। अत जीवन की चादर पर दाग न लगे, इसकी चिन्ता अनिवार्य है।

मृत्यु का विश्वास

एक औघड फकीर अपने हाथो मे दो मुर्दा-खोपडियाँ लेकर विचार कर रहा था कि इनमे से कौन सी अमीर की है और कौन सी फकीर की ? इतने मे ही उस राज्य का राजा वहाँ से गुजरा और उसने फकीर को देख कर कहना शुरू किया—"क्या ही अच्छा होता ! सेहत रहती किन्तु बीमारी न होती, दौलत ही दौलत होती लेकिन गरीबी न होती, जिन्दगी रहती और मौत न होती !"

राजा की इस कल्पना पर फकीर ने हँसते हुए जवाब दिया—"अरे नादान ! अगर बीमारी न होती तो धर्म की भावना कैसे होती ? सभी दौलतमन्द होते तो तेरी सेवा कौन करता ? अगर मौत न होती तो तू इस राज्य का राजा कैसे बनता ?"

फकीर की बाते विचारोत्तेजक हैं। आज जहाँ देखिये प्रतिदिन मोटर, रेल तथा हवाई-जहाज की दुर्घटना के समाचार अखबारों तथा रेडियो से सुनाई पडते है, फिर भी मनुष्य को मृत्यु का विश्वास नही है। वह सोचता है कि उसे मृत्यु से क्या लेना-देना ? यही समझकर वह पाप-कर्मों मे सलग्न है। लेकिन वह यह नहीं जानता कि मृत्यु के रजिस्टर मे सब का नाम लिखा हुआ है और वहाँ से एक न एक दिन पुकार होने वाली है।

कही सुना था कि एक सेठ ने वडी उमग से अपने रहने के लिए आलीशान महल वनवाया। एक दिन भोजन के समय सामने रखी हुई परोसी थाली को छोडकर वह अपने महल की कारीगरी देखने लगा। कारी-गरी देखते-देखते जब वह महल के मुख्य भाग मे पहुँचा तो अचानक ऊपर

काम करते हुए कारीगर के हाथ से हथौडा छूट पडा और वह सीधे सेठ के सिर पर आ गिरा। सेठ की तत्काल मृत्यु हो गयी।

हाँ तो मृत्यु का आमन्त्रण सुनिश्चित है, अत: जीवन रहते धर्माचरण करते रहने चाहिए। इसीलिए भगवान महावीर का यह कथन अक्षरश: सत्य है—

"जहेह सीहोव मिय गहाय, मच्चू नरं नेइ हु अन्तकाले"

अर्थात्—जैसे सिंह मृग को पकड कर ले जाता है, वैसे ही अन्त समय मृत्यु भी प्राणी को ले जाती है।

जीवन की परीक्षा

किसी लेखक ने लिखा है कि शस्त्र की पहचान धार से होती है, वस्त्र की पहचान तार से होती है। इन्सान का धैर्य कैसा है? इसकी पहचान जीत से नही, हार से होती है।

बाजार मे जब मनुष्य सुबह-शाम के लिए साग-भाजी खरीदने जाता है, तब वह कितना चिंतन करता है? यह शाक ताजा है या बासी? कोमल है या रूक्ष! रसमय है या नीरस? पूरी तरह से आश्वस्त होने पर ही वह शाक खरीदता है। लेकिन क्या वह कभी अपने जीवन के सम्बन्ध मे गभीर चिन्तन करता है? यदि दुनिया के बाजार मे हम अपना मोल-तोल करे तो हमारी असली कीमत का पता चल सकता है। क्या हम कभी यह भी सोचते है कि हमने जीवन के कितने वर्ष पूरे कर लिये? हमारी यात्रा कितनी शेष रह गयी? इन वर्षो का हमने क्या सदुपयोग किया? हमारी भावी-योजना क्या है?

मै समझता हूँ कि प्रत्येक प्रज्ञावान व्यक्ति को जीवन के सम्बन्ध मे इन प्रश्नो पर गभीर चिन्तन करना चाहिए। जैसे परीक्षार्थी परीक्षा के लिए रात-दिन तैयारी करता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी जीवन की परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के लिए निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए अन्यथा अस-फलता ही उसके हाथ लगेगी।

दूसरों की चिन्ता क्यों?

आज हमारे जीवन और समाज मे एक नई बीमारी फैल रही है—

जिसे देखिये वह दूसरो की चिन्ता से परेशान है। दूसरो के व्यक्तिगत जीवन, आचरण और कार्यो की इतनी जानकारी हम हासिल कर लेते है, लेकिन अपने जीवन की पहचान हमे नही है। रात-दिन लोकापवाद तथा पर-निन्दा मे आकठ डूबकर हम अपना बहुमूल्य समय व्यतीत करते हैं। जबकि जरूरत हमे अपनी चिन्ता की है, हम दूसरो की चिन्ता से बेहद परेशान है। इसके लिए सस्कृत मे बडी सुन्दर उक्ति है—"गिरेर्दाहो दृश्यो न च पदतलस्येति विदितम्"—अर्थात् पहाड जलता दिखाई देता है किन्तु पैरो के नीचे लगी आग नही दिखलाई पड़ती।

जीवन की घुटन

अभी कुछ दिनो पूर्व मैं हिन्दी के एक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र मे एक लेख पढ रहा था जिसके लेखक श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' है। उस लेख मे आज जीवन मे चतुर्दिक फैली हुई घुटन की बडी तर्क-सगत विवेचना थी। लेखक महोदय की एक यही महत्त्वपूर्ण बात मुझे प्रभावित कर गयी।

गाधीजी ने 'स्टैन्डर्ड ऑफ लाइफ' यानी जीवन का स्तर ऊँचा करने की बात हमे पढाई थी, हमने अब पढ लिया "स्टैण्डर्ड आफ लिविंग' यानी रहन-सहन की ऊँचाई का पाठ। जीवन ऊँचे से ऊँचा हो तो आनन्द बढता है, पर रहन-सहन सीमा से बढे तो हाय-हाय मचती है। वही हाय-हाय जीवन की घुटन बनकर हम पर छा गई है और हमे परेशान कर रही है कि जैसे भी हो, पैसा बनाओ और आराम से रहो। बस पैसा जो जीवन का साधन था वह साध्य हो गया, जैसे जीवन मे वही सब कुछ है। पैसे की कोई सीमा नही उसमे एक से एक बढकर दूसरा है और अधी दौड मे फँसे लोग जीवन की घुटन मे पहुँच गये हैं।

इन्सान

आज चारो ओर इस बात की बडी चर्चा होती है कि मानव-जीवन मे इन्सानियत अर्थात् मानवता घटती जा रही है। यह एक कटु सत्य है, लेकिन इसे स्वीकार करने के अतिरिक्त दूसरा रास्ता भी नही है। ससार मे हमेशा से शैतान और इन्सान का सघर्ष चलता आया है। इन्सान बेचारा भला है, भीतर से सरल और निष्कपट है। इसीलिए वह शैतान की चालाकियो से, छल से पराजित हो जाता है और तब मानवता पर सकट की घडी

उपस्थित हो जाती है। लेकिन शैतान और इन्सान में मूलभूत अन्तर क्या है?

जो वस्तु जैसी है उसको वैसा ही समझे, उसी का नाम इन्सान है। जीवन मे भी जो सिर्फ देना जानते हैं, वे देवत्व की उपाधि से विभूपित होते है, जो केवल लेने मे ही जीवन की सार्थकता समझते है वे राक्षस कहलाने योग्य हैं। किन्तु जो देने और लेने के बीच सतुलन स्थापित करते है वे ही वास्तविक रूप से इन्सान कहलाने के अधिकारी है।

दान

आप जब कभी अपने रहने के लिए सुन्दर मकान वनवाने की इच्छा से प्रेरित होकर सुदक्ष इन्जीनियर के पास जाते है और उससे एक सुन्दर नक्शा वनाने को कहते है तो यह वताना नही भूलते कि मकान ऐसा वने कि धूप और खुली हवा का आगमन होता रहे।

इसी प्रकार जव आप अपने जीवन के निर्माण मे लगे हुए है। तो इस वात का ध्यान क्यो नही रखते कि उसमे भी खुले विचार हो। धन-सग्रह के साथ-साथ उसके उचित वितरण अथवा दान की सुव्यवस्था हो। मान लीजिये कि आप ऐसा मकान बनवाये जिसमे सब कुछ तो हो लेकिन खिडकी एक भी न हो। उस मकान मे आप रह नही सकते, वहाँ घुटन होगी और धूप तथा हवा के न आने से वहाँ दुर्गन्ध फैलेगी यही हाल जीवन का भी है। यदि आप केवल सग्रह को ही महत्त्व देते है तो आपके जीवन मे दान की खिडकी वन्द रहेगी और उससे जीवन मे सडाध पैदा होगी तथा घुटन की स्थिति मे आप ज्यादा दिनो तक रह नही पायेगे। अत जीवन-रूपी भवन की खिडकियो को खुला रखे ताकि विचार-रूपी सौरभ का आनन्द ले और अपने दान से मानव-समाज का यथासभव कल्याण करे।

काल और घड़ी

जव हम किसी लम्वी यात्रा पर निकलते है तो हमारा ध्यान पथ के दोनो ओर स्थित मील-स्तम्भो की ओर लगा रहता है। जैसे-जैसे मील स्तम्भ निकलते जाते है, वैसे-वैसे मन को आश्वासन मिलता जाता है कि गतव्य स्थल निकट आ रहा है अर्थात् हम धीरे-धीरे मजिल के निकट आते जा रहे है। जिस तरह मील-स्तम्भ दूरी के मापने मे सहायक है, वैसे ही

जीवन का माप काल की घडी करती जा रही है। एक-एक घडी अथवा पल का व्यतीत होना मृत्यु के और निकट पहुँचने का उपक्रम है। इसीलिए कवीरदास ने कहा है कि मृत्यु का नगाडा आठो प्रहर वज रहा है, जो चतुर और सुजान है वे इस चेतावनी को समझते हैं।

इससे मिलती-जुलती ही सस्कृत मे एक वार्ता है। रास्ते मे एक पुराने मित्र से मुलाकात होने पर साथी ने पूछा—"क्यो मित्र ! कुशल-क्षेम तो है न ?" मित्र ने वडी गम्भीर मूरत वनाकर उत्तर दिया—"कुत कुशल-मस्माक, गलत्यायुर्दिनेदिने।" अर्थात्—हमारा कुशल कहाँ है ? आयुष्य तो दिन-प्रतिदिन घटता जा रहा है। अत चैन की वसी वजाने वालो को इस वार्ता से प्रेरणा लेनी चाहिए।

जीवन-निर्झर

जीवन एक सतत वहने वाले निर्झर के समान है। गति और वेग से यह निर्झर सुन्दर और सक्रिय रहता है। इसका प्रवाह न रुकने पाये इसके लिए निरन्तर शुभ कर्मो का जल डालते रहे। यदि इसका वेग कम हो गया तो धारा मन्द पड़ जायेगी और इसके नीचे कीचड जमने लगेगा। यह कीचड इसके सौन्दर्य को तो विनष्ट कर ही देगा साथ ही जीवन की गति को क्षीण कर इसके प्रवाह को भी समाप्त कर देगा। इसीलिए विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि "मनुष्य का जीवन एक महानदी की भाँति है जो अपने वहाव द्वारा नवीन दिशाओ मे अपनी राह वना लेती है। यदि महानदी के समक्ष कोई पत्थर की शिला भी रख दी जाये तो वह उसे भी चूर-चूर कर देती है। लेकिन अपने प्रवाह मे किसी प्रकार की कमी नही आने देती।"

जीवन की सार्थकता इसकी गतिशीलता मे है। जिस जीवन मे गति या प्रवाह नही वह व्यर्थ है।

भोजन

ऐसा कहा जाता है कि स्वाद के लिए खाना अज्ञान, जीने के लिए खाना आवश्यकता और सयम की रक्षा के लिए खाना साधना है। इसीलिए गाधी जी कहा करते थे—"खुराक स्वाद के लिए नही परन्तु शरीर को दास की तरह पालन के लिए है।"

कुछ लोग समार मे जीने के लिए खाते है और कुछ खाने के लिए जीते हैं। मै समझता हूँ कि खाने के लिए जीने वाले सर्वथा निंदनीय है। भोजन जीवन का लक्ष्य कभी नही बन सकता। जीवन को धारण करने के लिए भोजन की आवश्यकता स्वयसिद्ध है, किन्तु जो भोजन के लिए रस-लोलुप होकर इन्द्रियो को बढावा दे रहे है, वे अपने अमूल्य जीवन को नष्ट करने पर तुले हुए हैं।

सर्वाङ्गीण जीवन

सर्वाङ्गीण जीवन से क्या तात्पर्य है ? उत्तर है—वह जीवन जो सभी अगो से परिपूर्ण हो। जिस जीवन मे सभी प्रकार की कलायें हो, गुण हो, विद्याये हो, वही जीवन पूर्ण है। यदि धन की तिजोरी भरी हुई है लेकिन मन की तिजोरी खाली है तो वह जीवन की पूर्णता नही है। इसीलिए मनसा, वाचा, कर्मणा तथा तन, मन और धन की पूर्णता के वगैर जीवन का सर्वाङ्गीण होना सभव नही है। सन्यासी होकर भी जो राग, द्वेष, माया, मोह से विरक्त नही है, उनका सन्यास चिन्ताजनक है।

जैसे किसान अपने खेत मे केवल एक बीज डालकर संतोष नही कर लेता, वल्कि उसे कई प्रकार के बीजो से सम्पन्न और समृद्ध करता है, उसी प्रकार अपने जीवन-रूपी खेत मे कला या गुण का सिर्फ एक बीज डालकर सतोष मत कीजिये। अन्यथा जीवन आधा और अधूरा ही रह जायेगा। जिस प्रकार खेती की समृद्धि कई प्रकार के बीजो पर निर्भर करती है, उसी प्रकार जीवन की सम्पूर्णता भी अनेक कलाओ से सम्पन्न होने पर आश्रित है।

अन्तर्दृष्टा

'आप्तमीमासा' मे एक वडा सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया है। तीन मनुष्य स्वर्णकार की दुकान पर गये। एक को स्वर्णकलश लेना था, दूसरा स्वर्णमुकुट खरीदना चाहता था और तीसरे को केवल स्वर्ण की आवश्यकता थी। जब वे तीनो स्वर्णकार की दुकान पर पहुँचे तो सुनार स्वर्णघट को तोड़कर स्वर्ण-मुकुट वना रहा था। उसे देखकर पहला शोकातुर हुआ, दूसरा खुश हुआ और तीसरा मध्यस्थ भाव मे रहा।

इनका कारण क्रमश स्वर्णघट का विनाश, मुकुट की उत्पत्ति एव स्वर्ण की ध्रुवता थी।

मेरी दृष्टि मे तो तीसरा व्यक्ति अवश्य ही अन्तर्दृष्टा था जिसने यह समझ लिया कि स्वर्ण तो ध्रुव है—कलश या मुकुट तो उसके विकारी रूप हैं। कलश से मुकुट बनाया जाये या मुकुट से कलश का निर्माण हो परन्तु स्वर्ण की ध्रुवता मे तो कोई अन्तर नही पडता। अत· सुखी या दु खी होकर हम व्यर्थ ही आत्मा को कष्ट देते हैं। जीवन मे भी जो इस रहस्य को जानते हैं वे सुख-दु.ख को स्थितप्रज्ञ होकर स्वीकार करते है। वे न तो राजभवन के सुखो से आसक्त होते हैं और न झोपडी के दु खो से परेशान। अत. वस्तु के रूप को न देखकर उसमे अन्तर्निहित ध्रुव सत्य को पहचानना ही जीवन की सफलता की कुजी है।



को जीवति ? गुणायस्य
यस्य धर्मः स जीवति ।
गुणधर्म विहीनस्य
निष्फल तस्य जीवनम् ।

ससार मे जीवित कौन है ?
जिसमे गुण और धर्म जीवित (विद्यमान) है
वही वास्तव मे जीवित है ।
गुण एव धर्म से रहित मनुष्य का जीवन तो
सर्वथा निष्फल है ।

२

कर्म की पगडंडियाँ

- अकृतकर्म
- किस काम के ?
- कामना की खूंटी
- काल की कर्त्तव्यनिष्ठा
- तल्लीनता
- विश्राम-स्थल
- कर्म मे हीन
- कामनाओ का अन्त
- पुरुषार्थ
- मन के हारे हार है
- उच्चता का शिखर
- अज्ञान की पतझड़
- कर्म की धूल
- आत्म-पुरुषार्थ
- आचरण
- कीमत किसकी ?

- ☐ मन की थकान
- ☐ मन के मोदक
- ☐ सघर्ष मे आनन्द
- ☐ तीन पुतलियाँ
- ☐ श्रीमत और योगी
- ☐ दोनो समान
- ☐ कैसी नाजुक स्थिति है ?
- ☐ राम-राज्य या अर्थ-राज्य ?
- ☐ निरन्तर साधना
- ☐ सच्चा उपदेशक कौन ?
- ☐ लकीर के फकीर
- ☐ नीव का पत्थर
- ☐ मुक्ति का उच्चार
- ☐ घडी और आदमी
- ☐ हाथी के दाँत



कर्म की पगडंडियां



++

अकृतकर्म

एक पारसी कहावत के अनुसार काम के महत्त्व पर इस तरह प्रकाश डाला गया है—'दर अमल कोश, हरचें खाही पोश' अर्थात् काम अच्छा करो, पोशाक चाहे जैसी हो। उन कामो को हम क्यो करे जो अकृत है, अथवा जिनके करने से यश के स्थान पर अपयश मिलने की सम्भावना हो। इसीलिए महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यो को उपदेश देते हुए कहा था कि काम वही ठीक है जिसे करके पछताना न पड़े और जिसके फल को प्रसन्नता से भोगा जा सके। आँख मे जब एक छोटा-सा ककड पड जाता है तो उसकी पीडा के कारण बड़े से बड़ा पर्वत भी दृष्टि से ओझल हो जाता है, इसी प्रकार एक भी अकृतकर्म करने पर हम मन की शान्ति से हाथ धो बैठते हैं।

किस काम के ?

फूल कितना ही आकर्षक एव सुन्दर क्यो न हो यदि उसमे सुगन्ध-सौरभ नही है तो वह किस काम का ? सौन्दर्य के साथ यदि सुगन्ध का मेल न हुआ तो सौन्दर्य भी फीका पड जाता है। जैसे आसमान पर बडी भीषण श्याम घन-घटायें उमड़ पडे किन्तु उनमे जल की एक भी बूंद न हो तो उन घटाओ का अतृप्त धरती के लिए क्या महत्त्व ? उसी तरह से दीपक भले ही स्वर्णालकारो से विभूषित हो किन्तु उसमे यदि तेल की एक बूंद भी नही हो तो वह प्रकाश देने मे असमर्थ है। जो मनुष्य कर्महीन हैं वे सुगन्धहीन फूल की तरह आकर्षक हो सकते हैं, किन्तु निरुपयोगी है, दीपक की तरह

सभावना से पूर्ण हो सकते है, किन्तु प्रकाशहीन हैं और मूंगे बादलो की तरह रिक्त-हस्त है।

कामना की खूँटी

कवच शरीर की रक्षा तो करता है किन्तु शरीर पर अपना भार भी डालने मे नही चूकता। मनुष्य कामनाओ से परिचालित होकर कर्म की ओर प्रवृत्त होता है, किन्तु कामनाये मन मे अशाति भी पैदा कर देती हैं। अत. उचित और अनुचित कामनाओ मे अन्तर करना आवश्यक है। सभव है हम व्यर्थ की कामनाओ की मृग-मरीचिका मे अपनी मानसिक शांति खो दे। कामनाओ की खूँटी पर मन को टाँग देने से शान्ति तो दूर तृष्णा की ज्वाला से भी अपनी रक्षा करना कठिन है।

काल की कर्त्तव्यनिष्ठा

कबीरदास ने कहा है—

> काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
> पल मे परलय होयगी, बहुरि करैगा कब॥

हमे अपने कर्त्तव्य मे आलस्य नही करना चाहिए। काल का डडा तो घूम ही रहा है, पता नही कब किसके सिर पर बैठ जाये ? हम आज-कल करते-करते काम से जी चुराते है, लेकिन समय अपने कार्य को बडी तल्लीनता और मुस्तैदी से कर रहा है। यदि हम आलस्य और प्रमादवश कुछ न करके सुख पाना चाहते है तो यह हमारी बहुत बडी भूल है। हमे तो काल की कर्त्तव्यनिष्ठा से ही सबक लेना चाहिए कि किस मुस्तैदी से सारा कार्य वह सम्पन्न कर रहा है। अँग्रेजी मे कहावत है कि 'समय और समुद्र की लहरे किसी की प्रतीक्षा नही करती।' यदि नाविक अच्छी लहरो का इन्तजार करता रहा तो वह आजीवन हाथ पर हाथ धरे बैठा ही रह जायेगा।

तल्लीनता

रवीन्द्रनाथ टैगोर का कथन है कि जो व्यक्ति सत्य के साथ कर्त्तव्य-परायणता मे लीन है, उसके मार्ग मे बाधक होना कोई सरल काम नही है। हम जो भी काम करते हैं, वह यदि पूरे मन के साथ किया जा रहा हो तो उसमे एक अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान

वाचस्पति मिश्र वेदान्त-दर्शन के शाकर भाष्य पर टीका लिख रहे थे। विवाह हो गया था पर अपने लेखन-कार्य मे इतने तल्लीन थे कि वे उसी धुन मे डूबे रहते थे। सध्या को पत्नी दीपक मे तेल भरकर उनके निकट जलाकर रख जाती और वे अपने लिखने मे दत्त-चित्त रहते। एक बार दीपक के बुझ जाने पर उनका ध्यान अपनी पत्नी की ओर गया तो देखा कि पत्नी का यौवन-काल समाप्त हो चुका है और वालो मे सफेदी आ गई है। वाचस्पति मिश्र के मुँह से यह उद्‌गार निकला—"अरे! मैं तो भूल ही गया कि मेरा विवाह हो चुका है, और तुम वृद्ध भी हो गई।" कार्य की तल्लीनता का इससे सुन्दर उदाहरण और क्या हो सकता है?

विश्राम-स्थल

जीवन मे कर्म और विश्राम का उचित सन्तुलन आवश्यक है। शरीर की क्षमता की भी सीमा होती है। यदि हम अपने को निरन्तर चलते-चलते थका दे तो अन्तिम लक्ष्य पर कैसे पहुँचेंगे? दीपक बुझने के वाद उसमे तेल डालना व्यर्थ है। अत शरीर को नि.शेष करके हम कोई सिद्धि नही प्राप्त कर सकते है। मानव-शरीर एक विश्राम-स्थल की तरह है जहाँ लम्वी यात्रा के पश्चात् विश्राम करके भावी यात्रा की योजना वनाई जाती है। किसी के देखा-देखी अपनी शक्ति का अपव्यय नही करना चाहिए क्योकि एक राजस्थानी कहावत है—'देखा देखी साधे जोग, छीजे काया वाढै रोग।'

कर्म से हीन

सूखे हुए वृक्ष की जड मे हम भले ही प्रतिदिन सौ घडे पानी डाले, अथवा मनपसन्द खाद-सामग्री का प्रयोग करे किन्तु उसमे नई कोपले नही निकल सकती। पेड का जीवन-तत्त्व समाप्त हो जाने पर माली के सारे प्रयास व्यर्थ सिद्ध होते है। मनुष्य की भी हालत लगभग ऐसी ही है। जिस व्यक्ति मे कर्म-भावना ही नही है अथवा जो काम-चोर है उसकी हम कितनी भी वडाई क्यो न करे, व्यर्थ है। जैसे कायर को ठोक-पीटकर शूर नही वनाया जा सकता, उसी प्रकार कर्मठता से दूर व्यक्ति का उद्धार संभव नही है। तुलसी ने सभवत ऐसे ही लोगो के विषय में कहा है—

सकल पदारथ है जगमाही। कर्महीन नर पावत नाही॥

कामनाओं का अन्त

मनुष्य जीवन का अन्त निश्चित है किन्तु कामनाओ की समाप्ति अनिश्चित है। एक कामना के पूर्ण होते ही दूसरी मन मे जागृत हो जाती है। अतृप्त कामनाये ही भव-सागर की उर्मियो मे मनुष्य को उछालती रहती है। धन, सम्पत्ति, वैभव की तृष्णा तो शात होना ही नही जानती। तभी तो भगवान महावीर को कहना पडा—'इच्छाहु आगाससमा अणतया' अर्थात् इच्छाएँ आकाश की तरह विस्तृत हैं, उनका कभी अन्त नही होता।

पुरुषार्थ

गुजराती मे यह उक्ति वडी प्रसिद्ध है–'फरे ते चरे, वाध्यु भूखे मरे।' जो मनुष्य हाथ मे मेहदी रचाये बैठा रहता है, उसका भाग्य भी बैठा रहता है, जो खडा होता है उसका भाग्य भी खडा होता है और जो सोता है उसका भाग्य भी सोता है। इसी प्रकार जो मनुष्य चलता है उसका भाग्यचक्र भी गतिशील रहता है। तकदीर और तदवीर का जोडा इसीलिए प्रसिद्ध है। भाग्य को पुरुषार्थ से विच्छिन्न करना गलत है। गुरु वशिष्ठ ने लिखा है कि उद्योग प्रत्यक्ष है और भाग्य अनुमान है। अनुमान की अपेक्षा प्रत्यक्ष का महत्त्व अधिक है।

मन के हारे हार है

विश्व-प्रसिद्ध अणु-वैज्ञानिक आईन्स्टीन से एक विद्यार्थी ने उनकी जीवन की सफलता का मूल-मन्त्र पूछा। वैज्ञानिक ने उत्तर दिया— हिम्मत न हारना। विद्यार्थी ने पूछा—कैसे ? आईन्स्टीन ने वताया कि अपने स्कूली जीवन मे वह अति साधारण विद्यार्थी थे और अध्यापको का कहना था कि गणित तो इसे सात जन्मो मे भी नही आयेगी। किन्तु उन्होने हिम्मत नही हारी और विद्यार्थी-मित्रो तथा अध्यापको के व्यग्यवाणो को सहन करते हुए गणित का वड़े मनोयोग से अभ्यास करते रहे। अन्त मे उन्हे सफलता मिली और वे विश्व-प्रसिद्ध गणितज्ञ तथा वैज्ञानिक वने। 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत' इस सूक्ति मे सत्य का वहुत वडा अश छिपा हुआ है। मन के हारने पर जीवन-सग्राम मे सफलता की आशा करना व्यर्थ है।

उच्चता का शिखर

छोटे से ककड को उठाकर मनचाही दूरी तक फेंका जा सकता है,

किन्तु क्या वडे पत्थर को उठाकर लम्वी दूरी तक फेकना सभव है ? एक वहुमजिली इमारत मे सीढियो से उतरना तो सरल है किन्तु उसी गति से ऊपर चढना कष्टसाध्य होता है। अत· यदि हम उच्चता के शिखर पर आरूढ होना चाहते हैं तो दीर्घ तथा अनवरत प्रयत्न की आवश्यकता है। ऊर्ध्वगमन के लिए तो उच्चस्तरीय प्रयत्न अनिवार्य है। अध पतन तो सरल है, उसके लिए प्रयत्न की क्या आवश्यकता ? किन्तु जीवन मे उच्चतम सोपानो का स्पर्श तो कर्मयोग से ही सभव है।

अज्ञान की पतझड़

पतझड के मौसम मे वनस्पतियाँ सौन्दर्यहीन हो जाती हैं। उनके पत्ते झड जाते हैं और कोमलता का स्थान कठोरता ग्रहण कर लेती है। लेकिन वसन्त ऋतु के आते ही प्रकृति-नटी अपना शृगार सजना प्रारम्भ कर देती है, नई कोपले फूटने लगती हैं, सुशीतल सुगन्धित हवा वहने लगती है। सर्वत्र एक नया जोश परिलक्षित होने लगता है।

यहाँ यह प्रश्न खडा होता है कि यह परिवर्तन आता कहाँ से है ? यदि गहराई से सोचते हैं तो दिन के उजाले की भाँति स्पष्ट ज्ञात हुए बिना नही रहेगा कि वृक्ष के मूल मे ही जीवन तत्त्व समाया हुआ है फिर भले ही उसका तना कठोर हो गया हो या पत्ते झड गये हो किन्तु समय पर वही जीवन-तत्त्व वसन्त के रूप मे फूट पडता है।

यही दशा जीवात्मा की है। अज्ञान के पतझड मे जीव भटक जाता है, लेकिन जिसने जीवन-तत्त्व नही खोया है अर्थात जिसने सम्यक्त्व का स्पर्श कर लिया है वह एक दिन अवश्य ही मोक्ष-मार्ग को ग्रहण लेता है।

कर्म की धूल

निरभ्र आकाश मे मुक्त उड़ान भरता हुआ पक्षी भी तव उडने मे असमर्थ हो जाता है, जव उसके पखो मे धूल लिपटी रहती है। धूल के कारण उसके पख प्रसारित नही हो पाते, अत उडने मे परेशानी होती है। लेकिन जव वह अपने पखो की धूल साफ कर लेता है तो फिर आकाश की ऊँचाई का स्पर्श करने मे उसे कठिनाई नही होती। इसी प्रकार यदि स्वर्ग अथवा मोक्ष के अनन्ताकाश मे उडना है तो आत्मार्थी मानव को जीवन-रूपी पखो मे कर्म की रज नही लगने देना चाहिए। धूल जमा हो जायेगी तो उडान मे असुविधा होगी और अपने लक्ष्य तक पहुँचना कठिन होगा।

आत्म-पुरुषार्थ

धनोपार्जन के लिए सासारिक जीव रात-दिन उद्यम मे लगे रहते है। येन-केन-प्रकारेण धन का सग्रह हो, इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मन की शान्ति को भी ठुकरा देते है। लगता है आत्मा की शान्ति से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण धन हो गया है। लेकिन इस पुरुषार्थ एव उद्यम को नयी दिशा की ओर मोडना चाहिए। जितना प्रयत्न हम बाहर करते है उसका लक्षाश भी यदि हम आत्म-साधना मे लगादे तो मोक्ष के निकट पहुँचने मे कितनी देर लगेगी ?

आचरण

लोग कहते हैं कि आँख का काम भौहो से नही होता। काँच की आलमारी के भीतर बन्द स्वादिष्ट व्यजनो तथा मिष्टान्नों से कही क्षुधा तृप्त होती है ? इससे तो हाथ मे आई बाजारी की रूखी-सूखी रोटी और नमक की डली ही भली है। उसके खाने से भूखे पेट मे तृप्ति का तो अनुभव प्राप्त होता है। इसी प्रकार मन के भीतर कितने ही सुन्दर विचार क्यो न भरे पड़े हो, जब तक हम उन्हे आचरण मे नही उतारते तब तक वे व्यर्थ है। विचार के साथ-साथ आचार भी महत्त्वपूर्ण है।

कीमत किसकी ?

इत्र बेचने वाले गधी की कीमत मनुष्य नही पूछता क्योंकि वास्तविक मूल्य तो इत्र का होता है, इत्र बेचने वाले का नही। इसीतरह माली की कीमत नही होती, कीमत होती है उसके बगीचे मे उत्पन्न होने वाले सुन्दर पुष्पो की। फिर पुष्पो की पखुडियो का क्या मूल्य ? महत्त्व पखुडियो का नही बल्कि उसके भीतर समाहित सुवास का है। फूल कितना भी आकर्षक हो, यदि उसमे सुवास नही है तो उसका चाहने वाला भी कौन होता है ? इसी तरह यदि मानव के भीतर सोई हुई कर्त्तव्यनिष्ठा की सुवास निकल जाये तो फिर मानव की कीमत क्या रहेगी ?

मन की थकान

मन की थकान की अपेक्षा तन की थकान उत्तम है। तन की थकान तो विश्राम करने के बाद दूर हो सकती है, किन्तु मन की थकान तो अनन्त है। उसके लिए विश्राम कोई उपचार नही है। अत मन की थकान का

अनुभव वहुत बुरा है। एक राजा की सेना जव युद्ध के मैदान मे हार गई तो वह अपनी रानी के पास अपने दुर्भाग्य की वात कहने के लिए दौडा आया और उसने कहा कि मैं वहुत बुरा समाचार वतलाने आया हूँ। रानी ने प्रत्युत्तर मे कहा कि मेरे पास उससे भी बुरा समाचार है। राजा ने पूछा—'क्या ?' रानी ने कहा—'आप मन से हार गये है।' सेना के हारने की अपेक्षा मन से हारना अथवा थकावट का अनुभव करना ज्यादा बुरा समाचार है।

मन के मोदक

प्रसिद्ध चिन्तक खलील जिब्रान ने एक स्थान पर लिखा है—"मेढक भले ही बैल की अपेक्षा अधिक बुलन्द आवाज मे वोले, किन्तु वह न तो खेत मे हल खीच सकता है, न कोल्हू का चक्कर घुमा सकता है और न तो उसके चमड़े के जूते ही वन सकते हैं।"

सासारिक जीवन मे खलील जिब्रान की यह उक्ति विल्कुल सटीक उतरती है। दुनिया मे ऐसे वहुत से लोग है जिनकी वाचाशक्ति वडी प्रवल है और वे रात-दिन शेखी बघारते रहते हैं अथवा डीग मारते रहते है। उनमे कर्मशक्ति विल्कुल नही होती। वे सिर्फ वडी-वडी योजनाये वनाकर मन के मोदक खाते रहते हैं। लेकिन दूसरी ओर ऐसे भी लोग है जो रात-दिन कर्म मे लीन हैं और वाणी का प्रयोग बहुत कम करते है। इन दोनो मे अधिक महत्त्वपूर्ण कौन है, इसका निर्णय पाठक स्वय कर सकते है।

संघर्ष में आनन्द

चन्दन को पत्थर पर जितना अधिक घिसा जाता है उसकी सुगध उतनी ही फैलती है। गन्ने को जितना अधिक कोल्हू मे पेरा जाता है उतना ही उससे रस अधिक प्राप्त होने की सम्भावना रहती है। इसी प्रकार स्वर्ण को अग्नि मे जितना ही तपाया जायेगा उसमे उतनी ही अधिक निर्मलता तथा प्रखरता आयेगी। महापुरुपो का चरित्र भी इसका सुन्दर उदाहरण है। वे जीवन मे जितना ही परिस्थितियो से सघर्ष करते है और कर्म की आँच मे तपते है उतना ही उनका चरित्र महान और अनुकरणीय वनता है। अत सघर्षों से विमुख होना मनुष्य का धर्म नही है।

तीन पुतलियाँ

तीन पुतलियाँ थी—एक लकडी की, दूसरी कपड़े की और तीसरी

मिश्री की। तीनों को मिश्री के घोल मे डाला गया। जब तीनो उस घोल से निकाली गईं तो सबकी स्थिति मे बडा अन्तर आ गया था। लकडी की पुतली पर मिठास का थोडा सा ही अंश चढ पाया था क्योंकि उसमे ग्रहण-शीलता का नितान्त अभाव था। वह कुछ भी ग्रहण करने मे असमर्थ थी। दूसरी पुतली जो कपड़े की थी, उसमे लकडी की अपेक्षा अधिक मिठास चढी थी और तीसरी बेचारी तो उसी घोल मे घुल गई थी अर्थात् उसका स्वरूप ही तिरोहित हो गया था।

तीन पुतलियो की तरह ही ज्ञानियो ने श्रोताओ के भी तीन प्रकार बतलाये है। पहले प्रकार के श्रोता तो वे होते है जो साधु-सज्जनो तथा वीतराग देव की वाणी को मात्र श्रवण करते है किन्तु अन्तर मे धारण नही करते। दूसरे श्रोता कपड़े की पुतली की तरह है जो पूरी तरह से तो नही किन्तु थोडा-बहुत उपदेश हृदय मे धारण करके तदनुसार कर्म मे लीन होते हैं। लेकिन सर्वोत्तम श्रोता तो वे हैं जो मिश्री की तरह स्वय को वीतराग देव की वाणी मे घुला-मिला देते है और अपने व्यक्तित्व को कर्म-पथ पर अग्रसर कर देते है।

श्रीमंत और योगी

मेरी दृष्टि मे तो श्रीमत और योगी दोनो एक जैसे हैं। जिस तरह श्रीमत चाहे जहाँ जाये अथवा चाहे जो करे किन्तु उसका ध्यान बराबर अपनी तिजोरी पर लगा रहता है, जहाँ उसका खजाना पडा है। चौबीसो घंटे उसे अपने खजाने की ही चिंता लगी रहती है। उसी तरह योगी का चित्त हमेशा अपने आराध्यदेव और उनके सुकर्मो की ओर लगा रहता है। वह दैनिक जीवन के क्रिया-कलापो को सम्पन्न करता हुआ भी हमेशा अपनी साधना मे निरत रहता है।

दोनों समान

घडी का काँटा चौबीस घटे अपनी धुरी पर केन्द्रित होकर चक्कर काटता रहता है, लेकिन घडी के गोल चक्र की सीमा का उल्लघन नही कर सकता। वैसे ही जो मनुष्य नित्य व्याख्यान श्रवण करता है लेकिन उनको अपने जीवन मे चरितार्थ नही करता वह भी घडी के काँटे के समान भव-सागर मे चक्कर काटता रहता है। अच्छी बातो को सुनकर उन पर अमल

करना मनुष्य के लिए आवश्यक है। वरना घडी की सुई और मनुष्य मे क्या अन्तर है ?

कैसी नाजुक स्थिति है ?

रोम के एक वादशाह के सम्वन्ध मे यह प्रसिद्ध है कि उसे भाँति-भाँति के स्वादिष्ट व्यजनो के खाने का वडा शौक था। वह नित्य नवीन पदार्थ खाता और औषधि के सहारे खाये हुए पदार्थ को थोडी देर वाद वमन कर देता ताकि दूसरे पदार्थ खाने के लिए पेट मे खाली स्थान रहे। यह उसका नित्य-कर्म था। लेकिन जव इसका अतिचार हो गया तो एक दिन पेट की भीषण पीडा से ही उसका दु खद निधन हो गया।

गभीरता से चिन्तन करने पर ज्ञात होता है कि आज अधिकाश मनुष्य इसी प्रकार का अतिचारी जीवन विता रहे हैं। रोम का वादशाह तो सभवत. प्रतिदिन सौ-पचास रुपये का ही पदार्थ नष्ट करता रहा होगा। किन्तु आज का मनुष्य उससे कही अधिक नुकसान कर रहा है। धर्म-स्थान मे जाकर जो व्यक्ति साधु-सज्जनो के मुख से धर्म-शास्त्र की वाते सुनकर घर आते ही भूल जाता है और उनके प्रतिकूल आचरण करता है, वह क्या ज्ञानामृत भोजन का वमन नही कर रहा है ? यदि ज्ञानामृत को पचाकर वह तदनुकूल कार्य करे तो उसका मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम वन जाये।

रामराज्य या अर्थराज्य ?

एक दिन सुवह-सुवह एक वैष्णव वन्धु मेरे पास दौडते हुए आये और कहने लगे—"महाराजश्री! मुझे ऐसा आशीष दें जिससे मेरी विजय हो जाये।" मैंने पूछा—"किस वात की विजय ?" वे बोले—"मैंने छोटे भाई के ऊपर मुकदमा दायर किया है। उसका आज न्यायालय मे निर्णय होने वाला है। मै चाहता हूँ कि आपका आशीर्वाद मुझे प्राप्त हो।"

उस भाई की वात सुनकर मुझे वडा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा—"आप तो रामायण आदि का नियमित पाठ करते है, सत-समाज मे जाकर प्रवचनामृत ग्रहण करते है, फिर भी भरत जैसा वन्धुत्व आपके जीवन मे नही उतरा ? यह कैसी विडम्बना हैं ?" वे थोडी देर तक मेरे मुँह की ओर देखते रहे, फिर लज्जा का अनुभव करते हुए वहाँ से खिसक गये।

उसके वाद मैं काफी देर तक इस विपय पर विचार करता रहा कि हमारे यहाँ राम-राज्य कैसे आ सकता है ? जव तक वडा भाई राम जैसा न वने और छोटा भाई भरत जैसा न हो तव तक राम-राज्य की कल्पना कोरी वकवास है। हम चर्चा तो राम की करते हैं किन्तु कर्म रावण से भी वदतर करते हैं। आज तो राम-राज्य नही वल्कि सर्वत्र अर्थ-राज्य व्याप्त है। अपने स्वार्थो मे लीन होकर हम एक से एक वडा दुष्कर्म करते है और दुहाई राम की देते है।

निरन्तर साधना

राष्ट्र-सत विनोबा भावे ने लिखा है कि कर्म छोडना अशक्य है। इसीलिए साधना और सत्कर्म की समाप्ति नही होनी चाहिए। जीवन के अन्तिम क्षण तक मनुष्य को साधना-निरत रहना चाहिए। सिद्धि की प्राप्ति का अर्थ साधना की समाप्ति नही है। वडे-वड़े महापुरुपो ने आजीवन साधना का रास्ता पकडा है। जिस प्रकार हम रोज भोजन करते है अर्थात भोजन का कोई पूर्ण विराम नही है। जीवन-धारण के लिए भोजन अनिवार्य है, उसी प्रकार मन की सद्गति के लिए शुभ कर्म तथा साधना अनिवार्य है।

सच्चा उपदेशक कौन ?

तुलसीदासजी ने एक चौपाई लिखी है—'पर उपदेश कुशल वहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥' अर्थात् दूसरो को उपदेश देने मे वहुत से लोग कुशल होते हैं किन्तु जो स्वय अपने आचरण मे उन उपदेशो को उतारते हैं, उनकी संख्या नगण्य है। इस सन्दर्भ मे मुझे महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध सत श्री एकनाथ महाराज का एक प्रसग स्मरण आ रहा है—

एक वार एकनाथ महाराज के पास एक वहन अपने वालक को लेकर आई और वोली—"महाराज! मेरे वच्चे को पूरण पोली (महाराष्ट्र मे वनने वाली एक विशेप प्रकार की पूडी) खाने की वहुत आदत है, अत आप इसे उपदेश देकर इस वुरी आदत से मुक्ति दिलाये।" महाराज ने सोचा कि मैं तो नित्य मिष्टान्न खाने का आग्रह रखता हूँ तव वालक को उपदेश देने का मुझे क्या अधिकार है ? अत. एकनाथ महाराज ने उस वहन को तीन दिन के वाद आने के लिए कहा। इस वीच उन्होंने जीवन भर मिष्टान्न न खाने का व्रत लिया तीन दिन वाद जव वहन पुन. अपने वच्चे को लेकर आई

तो एकनाथ महाराज ने उसे पूरण पोली न खाने का उपदेश दिया और उस बच्चे पर इसका जादू सा असर पडा। उसने भी पूरण पोली भविष्य में न खाने का निश्चय कर लिया।

कुछ दिन बाद वही बहन महाराजजी के पास अपनी ओर से कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए आई और उसने पूछा—"महाराज इतनी साधारण सी बात के लिए आपने मुझ से तीन दिन बाद आने के लिए क्यो कहा ?"

एकनाथ महाराज ने उत्तर दिया—"बहन, उस दिन तक तो मैं स्वय ही मिष्टान्न का रस-गृद्ध था, अत. बालक पर मेरी बात का क्या असर पडता ? मेरा उपदेश व्यर्थ जाता। जब मैं मिष्टान्न छोडने मे समर्थ हुआ, तब मैं उपदेश देने का सच्चा अधिकारी बना।" बहन की आँखो में आँसू छलक आये और वह उन्हे साधुवाद देती हुई पुन घर लौट गई।

लकीर के फकीर

लकीर पर चलने वाले फकीरो की ससार मे कोई कमी नही है, कमी जो कुछ है वह उस लकीर को पार करने वालो की है। लोग प्रतिदिन पूजा-पाठ, ध्यान-वन्दन तथा दर्शन-पूजन तो करते हैं किन्तु उसमे सत् जीवन के निर्माण की प्रेरणा नही लेते। किसी को सतोष नही, किसी को शान्ति नही। आत्मा-परमात्मा की चर्चा करने वाले तो बहुत है लेकिन उनको अपने आचरणो तथा कर्मो मे उतारने वाले बहुत थोडे है।

नींव का पत्थर

जिस प्रकार मकान की दीर्घायु नीव के पत्थरो पर आधारित होती है, उसी प्रकार मानव-जीवन की भित्ति भी कर्म की शिला पर आधारित है। यदि नीव कमजोर है तो महल कभी सुरक्षित नही हो सकता। उसी प्रकार यदि मनुष्य अच्छे कर्मो से विमुख है तो उसकी सुरक्षा का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

मुक्ति का उच्चार

पिंजडे मे बन्द तोता रात-दिन 'मुक्ति-मुक्ति' का पाठ करता रहता है लेकिन वह मुक्ति का वास्तविक अर्थ नही समझता। उसका समस्त ध्यान शब्द पर केन्द्रित है, उसके अर्थ पर नही। किसी के सिखलाये शब्दो का अहर्निश पाठमात्र उसे करना है। वह मुक्ति के लिए कोई प्रयत्न भी तो

नही करता। इसी प्रकार बहुत से व्यक्ति आत्मा और परमात्मा की चर्चा निरन्तर करते रहते हैं किन्तु आचरण रूप मे एक कदम भी आगे नही बढ़ते इन लोगो की स्थिति उसी तोते की तरह है जो मात्र वाणी के उच्चारण से अपने को धन्य समझता है।

घड़ी और आदमी

घडी को एक बार चावी दे दीजिए और वह विना विश्राम किये अपना कार्य चौवीस घण्टे तक करती रहती है। लेकिन प्रमादी व्यक्ति सत-जनो का प्रतिदिन उपदेश सुनकर भी एक घन्टे के लिए तदनुसार आचरण नही करते। इसका अर्थ तो यही है कि उनका व्यक्तित्व घडी से भी हीनतर है।

हाथी के दॉत

हाथी के दॉत ऊपर से देखने मे कितने लुभावने और आकर्षक होते है, किन्तु इन दाँतो से हाथी बेचारा झाड की एक पत्ती भी नही खा सकता। इसीलिए कहावत वनी कि हाथी के दाँत खाने के और तथा दिखाने के और होते है। इसी तरह कुछ व्यक्तियो का स्वभाव होता है, वे वोलते कुछ हैं और करते उसके प्रतिकूल हैं। उनकी कथनी और करनी मे बडा अन्तर होता है। कवीरदास ने इसीलिए लिखा है—

कथनी मीठी खॉड़ सी, करनी विप की लोय।
कथनी तजि करनी करे तो विप से अमृत होय॥

☆

३

महापुरुष तथा उनका समागम

- सदाचार
- श्रद्धा
- वाणी-विलास
- सदाचार की ज्योति
- ककर और शकर
- सत्सग
- जैसा सग वैसा रग
- मानव और पशु
- पचाना कठिन है
- भक्त और नदियाँ
- मनुष्य और वातावरण
- मुफ्त मे भी नही
- महापुरुष की सीख
- पारस और महापुरुष
- मृत्यु का स्वागत
- परलोक-गमन

- ☐ गुलाव और सज्जन पुरुष
- ☐ मन की गतिविधि
- ☐ सज्जन और दुर्जन
- ☐ सगति का प्रभाव
- ☐ वैराग्य का सौरभ
- ☐ सत-गुण की प्राप्ति
- ☐ भक्ति का पानी
- ☐ महापुरुष का सान्निध्य
- ☐ फूल और महापुरुष
- ☐ भक्त के अन्तर मे
- ☐ महापुरुष की मर्यादा
- ☐ सच्चा साथ
- ☐ छद्मस्थ और केवली
- ☐ समय का मूल्य
- ☐ नेता कैसा हो ?
- ☐ आपने क्या पाया ?
- ☐ सत्पुरुष का समागम
- ☐ तपस्या और सत्सग
- ☐ बडे बनो !

महापुरुष तथा उनका समागम

सदाचार

'मनुस्मृति' मे कहा गया है—"आचार प्रथमो धर्मो, नृणा श्रेयस्करो महान्"—अर्थात उत्तम आचार ही सबसे पहला धर्म है और मनुष्यो के लिए कल्याणकारी है। सदाचार उस इत्र की तरह है जो न केवल अपने जीवन को अपितु समीपस्थ वस्तुओ तथा व्यक्तियो के जीवन को भी सुरक्षित एव सुगन्धित बना देता है।

सदाचार के बिना जीवन को विटामिन शून्य भोजन की तरह माना गया है। भोजन केवल पेट भरने के लिए नही बल्कि शारीरिक पोषण के लिए भी अनिवार्य है। यदि हम ऐसा भोजन करे जो मात्रा मे अधिक होकर भी नि.सत्व हो तो वह भोजन क्या शारीरिक रक्षा करेगा ? ऐसा ही प्रश्न आचरण के साथ भी लगा हुआ है। उल्टे-सीधे, मनमौजी कार्यो से क्षणिक सतोष भले ही मिल जाये लेकिन उन कार्यो मे यदि आचरण की महानता नही है तो उनका भला क्या महत्त्व ?

महाभारत मे युधिष्ठिर को 'धर्मराज' की सज्ञा से सम्मानित किया गया है। उन्ही के बचपन का एक प्रसग है कि जब वे अपने भाइयो के साथ अपने गुरु द्रोणाचार्य के आश्रम मे विद्याध्ययन कर रहे थे तब गुरु ने एक दिन 'क्षमा कुरु' (क्षमा करो) का पाठ पढाया। दूसरे दिन सभी भाइयो ने इस पाठ को कठस्थ करके गुरु को सुना दिया किन्तु युधिष्ठिर ने अपनी असमर्थता प्रकट की। गुरु ने उस दिन उन्हे डाट-डपट कर छोड दिया। दूसरे दिन पूछने पर युधिष्ठिर ने पुन अपनी मजबूरी बतलायी। गुरु को बडा क्रोध आया और उन्होने युधिष्ठिर को पीटना प्रारम्भ कर दिया। इसी

तरह कई दिन मार खाते-खाते युधिष्ठिर को यह पाठ याद हुआ। गुरु ने आश्चर्य के साथ इसका रहस्य जानना चाहा। धर्मराज ने कहा—"जब तक क्रोध आता रहा तब तक कैसे कहूँ कि 'क्षमा कुरु' का पाठ याद हो गया ?"

यह है महापुरुष के सदाचरण की ज्योति ! आज हमे ऐसे एक भी धर्मराज के दर्शन हो जाये तो एक नई क्राति का प्रारम्भ हो सकता है। लेकिन ?

श्रद्धा

श्रद्धा जीवन का प्रकाश है, अश्रद्धा जीवन का अन्धकार है। भगवान महावीर ने श्रद्धा को परम दुर्लभ कहा है। मनुस्मृति मे मनु महाराज ने श्रद्धा को 'माँ' की सज्ञा से अभिहित किया है जो अपनी सतान का उचित पालन-पोषण करती है।

आज ससार मे सर्वत्र शका और अविश्वास का बोलवाला है। छोटे से लेकर बडे तक सभी शका की आँधी मे तिनके से उड़े जा रहे हैं। इसीलिए चारो ओर हाहाकार मचा हुआ है। न पिता को अपने पुत्र पर विश्वास रह गया है और न सास को अपनी बहू पर। जनता देश के नेताओ पर अविश्वास की मुहर लगा चुकी है और गुरुओ ने छात्रो को अविश्वसनीय घोषित कर दिया है। भला ऐसी हालत मे समाज सुख की नीद कैसे सो सकता है। एक कवि ने श्रद्धा-विहीन मनुष्य को तुलना बिना सुई की घडी से की है—

ज्ञान और श्रद्धा बिना, अन्ध तुल्य इन्सान।
घडी निकम्मी, हो न यदि सूई और निशान ॥

एक सन्त ने अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए लिखा है—"श्रद्धा परमात्मा मे होनी चाहिए, अपने नेता मे होनी चाहिए, अपने लक्ष्य के प्रति होनी चाहिए, अपने कार्य के प्रति होनी चाहिए और फिर अपने प्रति होनी चाहिए।"

वाणी-विलास

सेमुएल जॉनसन ने कही लिखा है कि शब्द पृथ्वी की पुत्रियाँ है और कार्य स्वर्ग के पुत्र के समान है। जहाँ केवल वाणी का विलास है, वहाँ विकास की कोई सम्भावना नही होती—वचना-छलना मात्र है। जहाँ वाणी

संयमित एव सुव्यवस्थित है वहाँ मन की शान्ति है और जहाँ वाणी के अनुसार कार्य है वहाँ तो स्वर्ग ही है। केवल वाणी से महानता नही प्रकट होती अपितु उसका आचरण एव कर्मो से सयोग ही महानता का आधार वन सकता है। एक राजस्थानी कहावत भी है—

'मिसरी-मिसरी कह्या स्यूँ मुँह मीठो को हुवै नी।'

सदाचार की ज्योति

मिट्टी का दीपक तेल-वाती से सजा दिया किन्तु उसमे यदि लौ न जगी तो वह किस काम का ? मानव का शरीर पाकर भी यदि सदाचार की ज्योति प्रज्वलित न हुई तो वह भी किस काम का ? शरीर धारण करने का तो सर्वोत्तम निचोड सदाचार ही है। सन्त विनोबा ने कहा है—"जिसने ज्ञान को आचरण मे उतार लिया, उसने ईश्वर को मूर्तिमान कर लिया।" ज्ञान और आचरण का सम्यक् मिलन ही तो सदाचार है। जो केवल ज्ञान के सम्बन्ध मे वडी-वड़ी वाते वघारते है किन्तु आचरण मे कुलीनता नही ला पाते, वे तो सर्वथा उपहास के पात्र हैं। जीवन मे सदाचार का प्रकाश प्रसारित होने दो, मानवता का मार्ग स्वत प्रशस्त हो जायेगा। महानपुरुषो ने जीवन मे सदाचार की ज्योति को निरन्तर प्रज्वलित रखा जिससे मानव समाज का उत्थान हो। आज हम देखते है कि आचरण की पवित्रता सिर्फ दिखावे की वस्तु रह गयी है। हम मानसिक रूप से न तो अपने आचरणो पर गम्भीरता से विचार करने को प्रस्तुत हैं और न अपनी आलोचना को वर्दास्त करने का हम मे साहस ही रह गया है। इस सन्दर्भ मे मुझे राष्ट्र-पिता गांधीजी का यह कथन वार-वार स्मरण आ रहा है—"यह कितनी गलत वात है कि हम मैले रहे और दूसरो को साफ रहने की सलाह दें।"

कंकर और शंकर

एक वडी पुरानी लोकोक्ति है—"नर्मदा के ककर सव शकर समान है।" नर्मदा मध्य भारत की महानदी है जिसके तल मे संगमरमर की चट्टानें पाई जाती हैं। वहाँ जो ककर मिलते हैं उन्हे नर्मदेश्वर के नाम से पूजा जाता है।

मैं समझता हूँ कि इस लोकोक्ति के पीछे एक गूढार्थ छिपा हुआ है। वस्तुत ककर तो हर जगह समान ही हैं, विशेपता तो नर्मदा के जल की है,

जिसका पावन स्पर्श पाकर साधारण पत्थर भी शिव का आकार ग्रहण कर लेता है। यह सद्संगति का सबसे प्रभावशाली उदाहरण है।

जैन-आगमो तथा ग्रन्थो मे ऐसे अनेक मार्मिक प्रसंग भरे पडे हैं जहाँ सत्संगति का चमत्कारिक वर्णन हमे प्राप्त होता है। भगवान महावीर के सत्संग से अर्जुनमाली तथा चंडकौशिक जैसे अधम प्राणी भी तर गये। जम्बू-कुमार के सम्पर्क मे आकर कुख्यात तस्कर प्रभव महान तपस्वी बन गया। इसी प्रकार सप्तऋषियो के प्रभाव से डाकू अग्निशर्मा आगे चलकर महर्षि वाल्मीकि कहलाये। महात्मा गौतम बुद्ध के उपदेशो से अगुलिमाल जैसा खूँखार एव भयानक डाकू, जो राजा प्रसेनजित् से भी पकडा नही जा सका था, प्रतिबुद्ध होकर साधु बन गया। इसी प्रकार यूरोप मे चर्च के अधिष्ठाता सेंट पाल जो डाकू-लुटेरे थे सत्संगति से ईसाई धर्म के महान प्रचारक बने।

सत्संग

हितोपदेश के अन्तर्गत एक श्लोक है—

दुर्जनेन समं वैरं, प्रीतिं चापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गारः, शीतः कृष्णायते करम्॥

अर्थात्—दुर्जन के साथ वैर और प्रीति दोनो ही नही करनी चाहिए। वह अगार के समान है। अगार गर्म हो तो हाथ को जलाता है और ठण्डा हो तो हाथ को काला करता है।

मैं इस कथन से आंशिक रूप से ही सहमत हो पाता हूँ। इसमे दुष्ट-जन की प्रकृति पर तो ठीक-ठीक बात कही गयी है किन्तु सत्संग की शक्ति की उचित पहचान नही है। समाज मे लोग चलते-फिरते यह कह देते हैं कि कोयला काला है और वह काला ही रहेगा। सौ मन साबुन से भी यदि वह धोया जाये तो भी उसके रंग मे कोई अन्तर नही आयेगा। पर यह बात आंशिक रूप से ही सत्य है। कोयले को जब जलती हुई भट्टी मे डाला जाता है तो उसका रंग भी बदलकर गहरा लाल हो जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि सत्पुरुषो के सत्संग मे बडी शक्ति छिपी है। एक से एक दुष्टात्मा सत्संग का प्रसाद पाकर परमात्मा पद के अधि-कारी बने है। हमारी संस्कृति मे ऐसे अनेक दिव्य प्रसंग उपस्थित है जो इस तथ्य का पूर्णतया समर्थन करते हैं।

जैसा संग वैसा रंग

एक राजस्थानी कहावत है—'सगत जिसी रगत,' अर्थात् जैसा सग वैसा रग होता है और सगति के अनुसार ही प्रभाव पडता है। स्फटिक के पास जिस रग की वस्तु आप रख देंगे, उसकी छाया स्फटिक मे उसी रूप मे दिखाई देगी। आत्मा जिन निमित्तो मे रहती है, उन्ही निमित्तो के तद्रूप वन जाती है। इसीलिए कहते है कि जैसा सग वैसा रग। कुम्हार के हाथ मे यदि गीली मिट्टी है तो वह चाहे राम की मूर्ति वनाये या रावण की। यह तो कुम्हार की आकाक्षा और चेतना पर निर्भर है।

भर्तृहरि ने 'नीतिशतक' मे इस तथ्य का वडा सुन्दर प्रतिपादन किया है। वे कहते हैं कि तप्त लोहे पर पडा हुआ जल का विन्दु नष्ट हो जाता है, कमल-पत्र पर पडा हुआ पानी का बूँद मोती की भाँति सुशोभित होता है तथा स्वाती नक्षत्र मे समुद्र स्थित सीप के मुँह मे पडा हुआ वही जल विन्दु मोती का आकार ग्रहण कर लेता है। इन उदाहरणो से यह स्पष्ट है कि अधम, मध्यम एव उत्तम गुण मनुष्यो को सगति से ही प्राप्त होते है।

मानव और पशु

एक ग्राम्यशूकर ने सिह को चुनौती देते हुए कहा—"मेरे साथ युद्ध कर! अन्यथा मैं सव जगह प्रचारित कर दूँगा कि मैंने सिह को युद्ध मे जीत लिया है।"

सिंह ने उत्तर दिया—

गच्छ शूकर ! भद्र ते, वद सिंहो जितो मया।
पण्डिता एव जानन्ति, सिंह-शूकरयोर्वलम् ॥

शूकर! तेरा कल्याण हो। जा भले ही कहदे कि मैंने सिह को जीत लिया। विद्वान लोग सिह और सुअर के वल को जानते है।

यदि शूकर की चुनौती पर उत्तेजित होकर सिंह सुअर से लड जाता तो अपमान सिंह का ही होता क्योकि सिंह और शूकर की शक्ति मे जमीन आसमान का अन्तर है। कोई भी विद्वान भला शूकर के इस झूठे प्रचार पर विश्वास करेगा कि उसने सिंह को जीत लिया। जिस प्रकार विद्वान पुरुप सिंह और शूकर के वल को जानते हैं उसी प्रकार वे मानव और पशु के स्वभाव से भली-भाँति परिचित होते हैं। पशु-पक्षियो को तो सिर्फ वर्तमान

का ही ज्ञान होता है, अत वे तात्कालिक आवश्यकताओ की पूर्ति मे ही जीवन की सार्थकता समझते है जबकि मानव को वर्तमान साथ-साथ अतीत और भविष्य का भी परोक्ष ज्ञान होता है। अत. वह धर्माराधना की ओर स्वत आकृष्ट होकर सद्प्रेरणा प्राप्त करता है। जो मनुष्य केवल वर्तमान की सुख-सुविधाओ के पीछे हाथ धोकर पडा है उसे भला पशु से अलग कैसे माना जाये ?

पचाना कठिन है

जैसे घिसे-पिटे पुराने सिक्को को एकत्र करना आसान है, किन्तु उनको वाजार मे चलाना कठिन है, जैसे मक्खन को खाना आसान है, पर उसे पचाना कठिन है, उसी प्रकार पाप को कमाना तो वहुत सरल है लेकिन उनको भोगना अत्यन्त कठिन है।

आज ससार मे चारो ओर सुख-वैभव के सग्रह की तीव्र प्रतिस्पर्द्धा मची हुई है। रोज-रोज वाजार मे भोग-विलास के नये-नये साधन एकत्र होते जा रहे है। मनुष्य उन्ही साधनो के पीछे पागल होकर अविराम गति से दौड रहा है और इस दौड का अन्त जीवन की अन्तिम साँस के साथ ही होता है। घी वडा शक्तिवर्धक होता है लेकिन यदि भोजन के साथ उसकी मात्रा को ध्यान मे न रखकर अधिक खा ले तो हालत चिन्ताजनक हो जायेगी, आजकल की इस अधी दौड को देखकर मेरे मन मे कभी-कभी शका उठने लगती है कि मानवता का भविष्य क्या है ? कही वह अधकूप मे पडकर निरन्तर एक ही परिधि के अन्तर्गत चक्कर तो नही काट रही है समाज को यदि सादगी और पवित्रता से रहने की दिशा दी जा सके तो मानवता का कल्याण सम्भव है, अन्यथा वारूद के ढेर पर बैठे हुए प्राणी की तरह निरन्तर चिन्तित रहना पडेगा।

भक्त और नदियाँ

भगवान और भक्त का वही सम्वन्ध है जो नदी और समुद्र का है। जैसे नदी समुद्र की ओर जन्म से ही आकृष्ट होती है वैसे ही भक्त के मन मे भगवान के प्रति स्वाभाविक आकर्षण रहता है। जैसे नदी देश-देशान्तर प्रवाहित होती हुई, शिलाओ को चूर-चूर करती हुई अन्तत अपने स्वामी समुद्र के प्रति समर्पित हो जाती है, उसी प्रकार भक्त मानस भी दीर्घ

सासारिक-यात्रा करते हुए, माया-मोह रूपी शिलाओ को काटता हुआ अन्तत प्रभु के चरणो मे स्वय को विसर्जित कर देता है। जैसे बरसाती नदियो मे जल का उफान आ जाता है वैसे ही अनुकूल परिस्थितियो मे भक्त के मन मे भी भक्ति का उफान आता है। जिस प्रकार नदी का जल सभी जीव-जन्तुओ को शरण देता हुआ अत तक अपनी धारा को अजस्र बनाये रहता है, वैसे ही भक्त का हृदय भी समस्त मानव-समाज के लिए सेवा और त्याग का प्रवेश-द्वार खोल देता है।

मनुष्य और वातावरण

काँच की शीशी का रग जैसा होता है, उसमे भरे हुए जल का रग भी वही बन जाता है। अर्थात् पानी का अपना कोई रग नही है बल्कि उसको जैसे बर्तन मे डाल दिया जाता है वह तद्रूप बन जाता है। इसी प्रकार मनुष्य भी जिस वातावरण मे रहता है, उसका स्वभाव भी उसी के अनुकूल बन जाता है। अत मनुष्य के स्वभाव-निर्माण मे वातावरण का महत्त्व सर्वोपरि है। यदि सुन्दर और सुखद वातावरण है तो मानव-स्वभाव की प्रतिक्रिया भी सुखद होगी।

रहीम ने वातावरण के प्रभाव का बडा सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। लका के अधिपति रावण के पडौस मे रहने के कारण बेचारे समुद्र को क्या-क्या कष्ट नही उठाने पड़े। तीन दिनो तक मार्ग न देने के कारण श्रीराम ने उसे फटकार सुनाई और उस पर पुल बाँध लिया अर्थात् असीम सागर को भी सीमित कर दिया। यह उसके व्यक्तित्व का घोर अपमान था। लेकिन वातावरण के प्रभाव से भला कोई अछूता कैसे रह सकता है ? अत अच्छे वातावरण के बीच रहकर ही शान्तिपूर्ण जीवन की कल्पना की जा सकती है।

मुफ्त में भी नहीं !

कृपण व्यक्ति जहर के लिए भी पैसा खर्च करना उपयुक्त नही मानता। इसी प्रकार जो व्यक्ति सासारिक मोह तथा ममता से ग्रस्त है उसे यदि स्वर्ग-लोक के विमान मे मुफ्त यात्रा करने का आमन्त्रण मिले तो भी वह इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देगा। इसका कारण क्या है ? मेरी दृष्टि मे इसका एकमात्र कारण अज्ञान है। कृपण भी अज्ञानता अथवा धनासक्ति के

कारण शुभकर्मो मे पैसा खर्च करना नही चाहता। उसी प्रकार जिनको सासारिक व्यवहारो मे ही आसक्ति या ममता आ गई है वे तो स्वर्ग-लोक से ज्यादा यहाँ के जीवन से ही चिपटे रहते है।

महापुरुषों की सीख

एक दिन गुरु नानक अकेले बैठे थे कि इतने मे एक डकैत उनके पास आकर चरणो पर गिर पडा और कहने लगा—"मै अपने जीवन से तग आ गया हूँ। कृपया कोई ऐसा उपाय बताये जिससे मुझे इन पापो से मुक्ति मिल जाये।"

गुरु नानक थोडी देर तक उसके चेहरे की ओर देखते रहे फिर बोले—"तुम आज से ही बुरे कर्म करना छोड दो, सब ठीक हो जायेगा।" डाकू बडी श्रद्धा से गुरु नानक को प्रणाम कर वापस लौट गया।

अभी ज्यादा समय नही बीता था कि वही डाकू पुन लौट आया और कहने लगा—"महाराज! आपकी शिक्षा पर अमल करने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु मैं अपनी आदत से लाचार हूँ। इसीलिए मुझे सफलता नही मिल सकी। कृपया कोई दूसरा रास्ता बताइये।"

इस बार गुरुजी सोच मे पड गये। थोडी देर तक चिन्तन के बाद वे बोले—"अच्छा, जो तुम्हारे मन मे इच्छा जागृत हो करो, लेकिन सब कुछ करने के बाद प्रतिदिन लोगो के सामने अपने किये हुए कुकर्मो का वर्णन कर दो।"

डाकू को यह रास्ता सरल प्रतीत हुआ। अत. वह बडी प्रसन्नता से प्रणाम करके अपने घर वापस लौट गया। अब तो डकैती के लिए गुरु से आज्ञा मिल ही चुकी थी।

एक दिन गुरु जी ध्यानमग्न थे कि डाकू उनके सामने फिर आकर खडा हो गया। गुरु ने पूछा—"अब कौन सी परेशानी सिर पर आ गई है, इस बार तो बहुत दिनो के बाद वापस लौटे हो?"

डाकू ने कहा—"मैं तो आपके बताये हुए रास्ते पर चलना बहुत आसान समझता था। लेकिन यह तो बडा कठिन रास्ता है। लोगों के सामने प्रतिदिन अपनी बुराइयो को कहने मे बडा कष्ट होता है, अत मैंने बुरे काम करना छोड दिया है।"

इस वार गुरुजी की प्रसन्नता का पारावार न था। उन्होने उस डाकू को आशीष देकर विदा कर दिया।

पारस और महापुरुष

सुप्रसिद्ध दार्शनिक एव विचारक कनफ्यूशियस ने लिखा है—"श्रेष्ठ मनुष्य इस वात से दु खी नही होता कि लोग उसकी योग्यता को मान्यता नही देते, उसे दु.ख तव होता है जव उसकी योग्यता को सीमाओ मे बाँध दिया जाता है।"

इस तथ्य से तो प्राय सभी सुपरिचित है कि पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा स्वर्ण मे परिणत हो जाता है किन्तु वह स्वय पारस नही बन पाता। लेकिन महापुरुष का सत्सग इतना प्रभावशाली होता है कि उसके सम्पर्क मे आकर मनुष्य स्वय ही महापुरुष वन जाता है। अत· पारस की अपेक्षा महापुरुष का सम्पर्क अधिक शक्तिशाली है। जो लोग पारस के साथ महापुरुषो की तुलना करते है, वे मेरी दृष्टि मे महापुरुषो की योग्यता को सीमाओ मे वाँधने का गलत प्रयास करते है।

मृत्यु का स्वागत

ईसा मसीह ने फाँसी के तख्त पर चढकर भी अपने मारने वालो की अज्ञानता के हेतु प्रभु से क्षमा माँगी और उन्हे माफ कर दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उस रसोइये को बिना दण्ड दिये भागने का अवसर दिया जिसने उनके भोजन मे प्रचण्ड विष मिला दिया था। वापू ने अपने हत्यारे को क्षमा-दान दिया जिसने उन पर गोली चलाई थी। भगवान महावीर ने अपने शिष्य गोशालक को माफ किया जिसने उन पर तेजोलेश्या का मारक प्रयोग किया। इससे प्रतीत होता है कि महापुरुष मृत्यु से कभी भयभीत नही होते। वे तो मृत्यु का स्वागत करने के लिए स्वय आगे वढ आते है। मृत्यु का भय तो सासारिक व्यक्तियो को परेशान करता है, लेकिन जो मृत्यु के रहस्य को जान चुके है वे भला मृत्यु से क्यो डरेंगे ?

परलोकगमन

विदेश से लाखो रुपये कमाकर जव पुत्र अपने पिता तथा माता से मिलने के लिए स्वदेश लौटता है तो उसकी उत्सुकता और प्रसन्नता का कोई ठिकाना नही रहता। क्योकि वह समझता है कि धनोपार्जन करने मे उसने

अपनी प्रतिभा तथा कार्यकुशलता का सर्वाधिक उपयोग किया है। इसी प्रकार महापुरुष या उत्तम पुरुष धर्म की आराधना करते हुए जीवन की अन्तिम साँस बड़े सन्तोष तथा आनन्द के साथ लेता है। उसे यह विश्वास रहता है कि इस जीवन का उसने सर्वोत्तम उपयोग कर लिया है तब फिर परलोक गमन के क्षणो मे मन मे असन्तोष की क्या आवश्यकता ?

जो लोग इस लोक मे सारा समय व्यर्थ के निन्दा-पुराण अथवा पर-अपवाद मे व्यतीत करते हैं उनका जीवन परलोकगमन के समय कैसे सुख का अनुभव कर सकता है ? जैसे विदेश जाने के पूर्व व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण तैयारी कर लेता है, उसी प्रकार परलोकगमन के पूर्व हमे भी तैयारी कर लेनी चाहिए। कबीर ने बड़े सुन्दर रूपक के द्वारा इस लोक को 'बाबुल का घर' अर्थात् माता-पिता का घर और उस लोक को 'ससुराल' की सज्ञा दी है। जैसे ससुराल जाते समय नव-विवाहिता वधू को सन्तोष तथा आनन्द की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार आत्मा को परलोक जाते समय अपने प्रियतम (परमात्मा) से मिलने की उत्सुकता बनी रहती है।

गुलाब और सज्जन पुरुष

एक हिन्दी कविता मे कहा गया है—

सज्जनो के शीश पर, सकट रहेगे कितने दिन ?
चॉद को घेरे हुए, बादल रहेगे कितने दिन ?

अपनी डाल पर मुस्कराते हुए गुलाब को जरा ध्यान से देखिये। चारों ओर काँटो से घिरे रहने के बावजूद उसकी मुस्कराहट मे कोई अन्तर नही आता। वह तो प्रकृति के रमणीय वातावरण मे अपने मधुर सौरभ को बिखेरता रहता है। उसे इस बात की चिन्ता ही नही होती कि उसकी डाले कॉटो से भरी हैं और उसके मुख पर काले रग का भ्रमर बैठा हुआ है।

यही स्थिति सज्जन तथा समर्थ पुरुष की होती है। वह मुसीबतो मे भी प्रसन्नता का अनुभव करता है और अपने विरोधियो को भरसक मदद करने का प्रयत्न करता है। चाँद के मुख पर श्याम घटाये अधिक समय तक आवरण नही डाल सकती। महापुरुष अथवा तेजस्वी आत्माओ का जीवन भी कटको मे मुस्कराता रहता है। अज्ञानता का आवरण उनकी मुक्त आत्मा को आवृत्त करने मे असमर्थ रहता है।

मन की गतिविधि

आज चारो ओर वैज्ञानिक प्रगति की चर्चा है। ऐसा प्रतीत होता है कि आज प्रकृति का कोई भी रहस्य मनुष्य के लिए अज्ञेय नही है। मनुष्य का अन्तरिक्ष-यान चन्द्रलोक पर उतर चुका है, निकट-भविष्य मे ही मगल-ग्रह की यात्रा की सभावनाएँ ढूँढी जा रही है, सागर के अन्तस्थल का मथन कर देने वाली पनडुब्बियाँ उसके वक्षस्थल पर दौड लगा रही हैं। फिर भी एक प्रश्न का उत्तर शेप है—मनुष्य क्या अपने मन की गतिविधि पर नियन्त्रण पा चुका है ? मै समझता हूँ कि ससार के सर्वश्रेष्ठ विज्ञान-विशारद को भी इस प्रश्न का दो टूक उत्तर देने मे कठिनाई का अनुभव होगा।

आज से २५०० वर्ष पूर्व भगवान महावीर तथा गौतम बुद्ध ने इसी प्रश्न का समाधान प्रस्तुत किया था। उन महापुरुषो को मालूम था कि आत्म-नियन्त्रण के अभाव मे समस्त भौतिक उपलब्धियाँ नगण्य है। तथागत ने तो अपने अनुयायियो को स्पष्ट निर्देश दिया था—"चित्तस्स दमथो साधु, चित्त दत सुखावह"—साधुओ ! चित्त का दमन करो, दमन किया हुआ चित्त सुख देने वाला होता है। वैज्ञानिक एव भौतिक प्रगति के पीछे पड़े हुए ससार को यह कथन कभी नही भूलना चाहिए।

महापुरुषो ने इसीलिए सारी शक्तियो का केन्द्र मन को माना है। जैसे मुख्य जेनरेटिग मशीन के फेल हो जाने पर सर्वत्र विजली वन्द हो जाती है, वैसे ही मन सारे शरीर का जेनरेटर है। इसको चालू रखना और साथ ही नियन्त्रित भी रखना तेजस्वी पुरुषो का ही काम है। सुख और सुविधाओ के वीच मन की लगाम ढीली पड जाती है। कवीर जैसे क्रान्तिदर्शी सन्त ने इसी वात का अनुभव करते हुए लिखा था—

मन के मते न मानिये, मन के मते हजार।
जो यह गुड मॉगे कवौ, दीजै नमक उधार॥

सज्जन और दुर्जन

एक वार गुरु नानक अपने शिष्यो के साथ एक गाँव मे रुके। गुरु को आया जानकर वहाँ के लोगो ने उनकी वडी सेवा शुश्रूपा की। सुवह जव गुरु के प्रस्थान का समय आया तो गॉव के सभी लोग उनका आशीर्वाद लेने पहुँचे। गुरु ने वडा विचित्र आशीर्वाद दिया। उन्होने गॉव वालो की ओर

मुखातिव होकर कहा—"उजड जाओ !" गाँव वाले वेचारे बड़े आश्चर्य मे पड़े।

दूसरे दिन गुरु नानक ने अपना रात्रि-पडाव दूसरे गाँव मे किया। जैसे ही गाँव के लोगो को मालूम हुआ कि एक महात्मा अपने शिष्यो के साथ गाँव मे आया है, वे सव दौड पड़े और उनके ऊपर पत्थर फेकने लगे। गुरु ने वडी गम्भीर मुस्कान के साथ उस गाँव के लोगो को आशीर्वाद देते हुए कहा—"वसते रहो।"

शिष्यो ने गुरु से इस आशीर्वाद का रहस्य पूछा। गुरु ने उन्हे समझाते हुए कहा—"पहले गाँव के लोग सज्जन है, अत. वे अपने गाँव को छोड कर जहाँ भी जायेगे अपनी सज्जनता से दुनिया को सुधारेगे। लेकिन दूसरे गाँव वाले दुष्ट और दुर्जन हैं, उनका अपने गाँव से वाहर जाना उचित नही। अत· मैंने उन्हे यही आवाद रहने का आशीर्वाद दिया है।"

संगति का प्रभाव

एक दोहे मे कहा गया है—

दुर्जन जाता है जहाँ, फैलाता है पाप।
काला करता कोयला, पानी को चुपचाप॥

गन्दे नाले का पानी जव पवित्र गगा से मिलता है तो वह भी पवित्रता के गुण को धारण कर लेता है, किन्तु गगा का पानी यदि नाले मे डाला जावे तो वह भी दूषित और अपवित्र हो जाता है। इसी प्रकार दुर्जन जव सज्जन से साक्षात्कार करता है तो उसमे भी सज्जनता का पावन-स्पर्श हो जाता है। लेकिन सज्जन व्यक्ति यदि दुर्जन के सम्पर्क मे आता है तो उसमे भी मलिनता आने की सम्भावना वडी प्रवल होती है। यह सव सगति का प्रभाव है। जैसे वदवू फैलाने वाली मक्खी कही भी वैठे उस स्थान को अपवित्र कर देती है—भले ही वह कचरे के ढेर पर वैठे या किसी देव की प्रतिमा पर! सारांश यह है कि दुष्ट या दुर्जन व्यक्ति का सम्पर्क सदैव विघातक ही होता है।

वैराग्य का सौरभ

महापुरुष का सम्पर्क वड़ा ही पवित्र और आकर्षक होता है। इसीलिए राजस्थानी कहावत है—'कालियो गोरिये कनै वैठे, तो रग नही पण

अक्कल तो आवे ही'—अर्थात् यदि काली स्त्री गोरी स्त्री के निकट बैठे तो भले ही गोरा रग उस पर न चढे किन्तु अक्ल तो आवेगी ही। महापुरुष की सगति से भले ही आप महापुरुष न बनें किन्तु उसके निकट जाने पर वैराग्य के सौरभ से आप सुवासित तो अवश्य ही होगे।

जैसे आग का सयोग प्राप्त करके अगरबत्ती अपना सौरभ चतुर्दिक फैला देती है, उसी प्रकार महापुरुष का सयोग प्राप्त कर भव्यात्मा मे भी वैराग्य की अभिवृद्धि हो जाती है। सम्भव है आपके भीतर महान गुण सोये पड़े हो, लेकिन उन्हे कोई जगाने वाला न हो। ताला यदि वन्द है तो उसे खोलने के लिए चावी तो चाहिए ही। अत महान गुणो को जागृत करने वाले महान पुरुषो की सगति सदैव मन मे वैराग्य एव ज्ञान के सुविचारो को फैलाने मे मदद देती है।

सन्त-गुणों की प्राप्ति

शकराचार्य ने कही लिखा है कि क्षणभर की सत्सगति ससार-सागर से पार जाने के लिए एक सुदृढ नौका के समान है। इत्र बेचने वाले की दुकान पर आप भले ही इत्र न खरीदे किन्तु यदि दो क्षण वहाँ आप रुक जाते हैं तो आपके शरीर एव कपडो से भी इत्र की सुवास फैलने लगती है।

इसी तरह साधु के पास जाकर आप भले ही साधु न वने, किन्तु सत-गुणो की उपलब्धि तो अवश्य कर सकते है। उनके सम्पर्क मे आने पर आप मे भी ज्ञान-धारा प्रवाहित होगी, जीवन के यथार्थ की पहचान होगी, व्यर्थ के दुर्गुणो से मुक्ति मिलेगी। आज समाज को इन्ही वस्तुओ की आवश्यकता है। मै यह नही कहता कि सारा ससार घर-परिवार की चौहद्दी को लाँघकर सिर मुडाकर वैरागी वन जाये और हाथ मे कमण्डल ले ले। गृहस्थ-जीवन मे रही हुई मर्यादा एव उच्चता का मैं प्रशसक हूँ। लेकिन गृहस्थ-जीवन मे जो दुर्वलताएँ हैं, उनको दूर करने के लिए सत-गुणो का प्रसार आवश्यक है।

भक्ति का पानी

ग्रीष्म की तपन तथा जलती हुई लू से हरे-भरे वृक्ष भी अपनी स्फूर्ति और ताजगी को गँवाकर कुम्हलाने लगते है। उनकी कोमल पत्तियाँ तथा

शाखाएँ उष्णता की ज्वाला से श्रीहीन हो जाती हैं। ऐसी स्थिति मे सुदक्ष माली उन पौधो की जडो को शीतल जल-धारा से सिंचित कर क्या जीवन-दान देता है। जब कोमल किसलय के ऊपर पानी की सुखद फुहार पड़ती है तो उनके कुम्हलाये जीवन मे नूतन-रक्त-सचार होने लगता है।

मैं सोचता हूँ कि हम भी अपनी आत्मा के उद्यान के सुदक्ष माली क्यो नही बने ? हम ज्ञान और तपस्या के वृक्षो पर सांसारिक मोह और वासना की गर्म हवा न लगने दे और यदि कभी ये वृक्ष कुम्हलाने लगे तो हम भक्ति और वैराग्य के सुशीतल जल से इनकी जडो को सिंचित करदे।

महापुरुष का सान्निध्य

ऐसा कहा गया है कि—'मलयाचल गन्धेनत्विन्धन चन्दनायते'—मलयाचल पर स्थित चन्दन की सुगन्ध से साधारण वृक्ष भी चन्दन वन जाते हैं। आयुर्वेद के ज्ञाता वैद्य के हाथो से अनेक विषैली वस्तुएँ सशोधित होकर अमृत तुल्य गुणकारी वन जाती है और असाध्य रोगो की चिकित्सा मे उनका सदुपयोग होता है।

इसी प्रकार महापुरुषो के सम्पर्क या सान्निध्य मे आकर वड़े-वड़े क्रूर तथा पापात्माओ को जीवन-निर्माण के महान यज्ञ मे सम्मिलित होते हुए देखा गया है। महान् पुरुषों का चरित्र इतना निष्कलक और पवित्र होता है कि उनके निकट जाने पर दुर्गुणो के समावेश की सम्भावना ही नही होती। वहाँ पहुँच कर तो आत्मज्ञान का महान मत्र उद्घोषित होता है, जीवनउद्यान मे वैराग्य की पावन वायु सचरित होती है और सत्कर्मो का अरुणोदय होता है। पाप तथा कल्मप का निविड अन्धकार क्षीण हो जाता है और शुभ्र प्रभात का तेज विखरने लगता है।

फूल और महापुरुष

महान् सगीतकारो के कण्ठ से नि सृत रागिनी वन्द हो जाती है, किन्तु उनके कर्णप्रिय स्वर वर्षो तक गूँजते रहते हैं, स्वप्न प्रभात वेला मे तिरोहित हो जाते हैं, किन्तु उनकी स्मृति वर्षो तक मानस को वेचैन किये रहती है, हाथ मे लगी हुई मेहदी थोडे समय के वाद सूख जाती है लेकिन उसके निशान कई दिनो तक सुन्दरता वढ़ाये रहते हैं, गुलाव का फूल थोड़े

ही दिनो के पश्चात् मुरझाने लगता है, लेकिन उसकी सुवास तथा मृदुता उसकी पखुडियो मे स्थायी वनी रहती है।

महापुरुष भी अपनी जीवन-लीला को समाप्त कर अनन्त काल के गर्भ मे समा जाते है किन्तु उनकी अमर कृतियाँ दिव्य जीवन-सन्देश, प्रेरणा-दायक रचनाये और तपश्चर्या तथा वैराग्य के पुनीत उदाहरण समय को चुनौती देते हुए भावी पीढियो का मार्ग-दर्शन करते रहते है। राम, कृष्ण, भगवान महावीर तथा गौतम बुद्ध जैसे महान् साधको का जीवन आज भी ज्वलन्त प्रकाश-पुज की तरह हमे आत्म-जागरण का सन्देश सुना रहा है।

भक्त के अंतर में

सरोवर के शान्त जल मे सोया हुआ कमल सूर्योदय के अरुण प्रकाश मे स्वत जागृत होकर अपनी पखुडियो के दरवाजे खोल देता है। उसे कौन वतलाता है कि सूर्योदय हो गया और तुम प्रस्फुटित हो जाओ ? मधुर चाँदनी की स्निग्ध किरणो का स्पर्श पाते ही कुमुदिनी का हृदय कौन उद्वेलित कर देता है ? उसके अधरो पर मुस्कान क्यो आ जाती है ? पूर्णिमा की रात्रि को सागर का हृदय कौन मथने लगता है ? वह क्यो चन्द्र-विम्व का स्पर्श करने के लिए पागल हो उठता है ? कमल-क्रोड मे वन्दी भ्रमर को व्रह्म वेला मे मधुर गुजार के हेतु कौन आमन्त्रित करता है ?

मेरी दृष्टि मे तो इन सारे प्रश्नो का उत्तर एक ही है। वाह्य सूचना की अपेक्षा हार्दिक सवध-सूत्र अधिक प्रगाढ और प्रभावशाली होते है। भक्त और भगवान के बीच हार्दिक सबधो का वेतार का तार होता है जिसके माध्यम से भक्त के हृदय मे भक्ति का स्वर झकृत होता रहता है। भक्त के अतर मे भगवान तो सदैव वसता है, इसलिए उसको सूचना देने की जरूरत ही नही होती। उसके क्रिया-कलापो मे भगवान के गुणो की छाया स्वत प्रतिविम्वित होती है।

महापुरुष की मर्यादा

समुद्र अपनी मर्यादा मे रहकर समस्त चराचर जगत को जीवन प्रदान करता है। सूर्य अपनी मर्यादा का पालन करता हुआ प्रतिदिन प्रात काल प्राची के क्षितिज को अरुणाभ कर देता है। चन्द्रमा का प्रकाश तिथियो की मर्यादा मे रहकर घटता-वढता रहता है।

इसी प्रकार महापुरुष भी आजीवन अपनी मर्यादा का पालन करते हुए अपनी साधना को अधिकाधिक तेजस्वी बनाते रहते है। उनके लिए क्षणिक सुख-दु ख का कोई महत्त्व नही। मराठी मे सज्जनों के विषय मे एक कहावत है—'कान द्यावा पण कानू न द्यावा' अर्थात् सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी सज्जन अपना मार्ग नही छोडते। राजपथ पर विचरण करने वाला भला मोह और ममता की सकीर्ण वीथियो मे कैसे भटक सकता है ? सपत्ति अथवा विपत्ति के क्षणो मे उनका धैर्य एव आदर्श स्थिर रहता है। इसीलिए कहा गया है—

सिंहनी मर जाती है, पर घास को खाती नही।
आग मे जल जाय सोना, पर चमक जाती नही ॥

सच्चा साथ

एक शायर ने कहा है—

आजकल की दोस्ती, कागज का फूल है।
देखने मे खूबसूरत, सूँघने मे धूल है ॥

दोस्ती के सबध मे यह कथन बड़ा विचारोत्तेजक है। ऐसे तो दुनिया मे दोस्तो की कमी नही दिखलायी पडती किन्तु वास्तविक साथी की प्राप्ति होना बहुत कठिन है। अमेरिका के धनकुबेर हेनरीफोर्ड ने एक बार पत्रकारो के समक्ष अपनी हार्दिक पीडा व्यक्त करते हुए कहा था—"अपार धन-सम्पत्ति होने पर भी मेरे जीवन मे सबसे बडी कमी यह रह गई कि धन के नशे मे मैं सच्चे मित्र को न पा सका।"

यह पीडा केवल हेनरी फोर्ड की रही हो, ऐसी बात नही है। आज सबसे कठिन समस्या सच्चे मित्र के पाने की है। चाटुकार, खुशामदी, चापलूस और झूठे प्रशसक ससार मे बहुत मिलते हैं, किन्तु वास्तविक मित्र तो दीपक लेकर खोजने पर भी नही मिलता।

छद्मस्थ साधु और केवली

छद्मस्थ साधु और केवली मे उतना ही अतर है जितना कि तारा और दिवाकर मे। तारा भी चमकता और सूर्य भी, किन्तु सूर्य के प्रकाश के आगे तारे का प्रकाश नगण्य हो जाता है। यदि तारा अपने प्रकाश को सूर्य से अधिक बतलाने का प्रयत्न करे तो यह उसकी अज्ञानता है।

इसी प्रकार छद्मस्थ चाहे कितना ही आगे क्यो न बढ जाये फिर भी वह केवली से प्रतिस्पर्द्धा नही कर सकता। सूर्य के प्रकाश के आगे कोई दीपक के प्रकाश का बखान करे तो वह हास्यास्पद होगा। छद्मस्थ का प्रकाश एकदेशीय होता है, जबकि केवली का सर्वदेशीय। उसके प्रकाश से समस्त विश्व प्रकाशित होता है।

समय का मूल्य

भोग-विलास मे तथा वाद-विवाद मे मनुष्य समय का बुरी तरह अपव्यय करते है। न जाने कितना मूल्यवान समय पर-निन्दा मे गुजारते हैं। यूरोप मे एक "पेडलोक सोसायटी" अर्थात् निन्दा-निषेध कमेटी है। उसका सदस्य न तो निन्दा करता है और न सुनता है। उस कमेटी का सदस्य बनते समय सदस्य को तीन बार ताला खोलकर बन्द करना होता है जिसका मतलब है कि आज से वह व्यक्ति मन-वचन्-कर्म से किसी की निन्दा नही करेगा। ये लोग समय के मूल्य को भली-भाँति पहचानते है।

जब व्यक्ति की आत्मा धिक्कारती है कि उसने अपने बहुमूल्य समय का दुरुपयोग किया है, तभी उसको अपनी गलती का आभास होता है। लेकिन तब तक काफी समय गुजर जाता है और व्यक्ति के हाथ मे पश्चाताप के सिवाय कुछ नही रहता। उदाहरणार्थ—एक श्रीमत व्यक्ति धन के नशे मे चूर होकर जब बाजार मे व्यर्थ की वस्तुएँ खरीदता है, किन्तु जब उसकी थैली खाली हो जाती है तो वह चितित हो उठता है। उस समय उसकी आमदनी के सारे स्रोत यदि बन्द हो जाये तो वह समाज मे मुँह दिखाने लायक भी नही रहता।

प्रत्येक समाज के चिन्तको, आचार्यो तथा महापुरुषो ने इसीलिए समय को बहुमूल्य मानकर उसे गँवाने से रोका है। यदि हम व्यर्थ या खाली समय को सत्सग मे लगाये तो हमे वास्तविक मानसिक शान्ति एव ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। पश्चाताप से बचने तथा समय को सार्थक बनाने हेतु भगवान महावीर की स्वर लहरी अभिगुजित हो रही है— "समय गोयम मा पमायए" अर्थात् समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

नेता कैसा हो ?

समाज का नेतृत्व करने की सामर्थ्य विरले महापुरुषो मे ही होती है।

वास्तविक नेता वही बन सकता है जिसने निःस्वार्थ-भाव एव लगन से समाज सेवा का व्रत ग्रहण किया हो। पक्षियो की टोली मे एक मुखिया (नेता) होता है जो सारे पक्षी-समाज की देखभाल करता है। यदि टोली का कोई सदस्य उस समूह से बिछुड जाता है तो वह उसकी खोज-खबर करके उसे शीघ्र ही ढूँढ लाता है।

इसी प्रकार समाज का नेता समाज को सुसगठित कर उसे प्रगति के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। उसकी दृष्टि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के सुख-दुःख पर लगी रहती है। यदि उसे कही अपनी गलती का पता चलता है तो वह शीघ्र ही उसके सशोधन के लिए प्रस्तुत रहता है। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी मे नेतृत्व के ये सारे गुण विद्यमान थे। इसीलिए उन्होने सारे राष्ट्र को सगठित कर स्वाधीनता-आन्दोलन का बिगुल बजाया।

महर्षि अरविन्द ने अपने विचारो की अभिव्यक्ति करते हुए एक स्थल पर लिखा है—"जिस समाज मे फूट और पक्ष-भेद है, वह किस काम का ? आत्म-प्रतिष्ठा और आत्म-एकता की मूर्ति का समाज चाहिए। अलग-अलग रहकर जितना काम होता है—उससे सौ गुना सघशक्ति से होता है।"

आपने क्या पाया ?

सुप्रसिद्ध दार्शनिक खलील जिब्रान मृत्यु-शैया पर लेटे हुए जीवन की अन्तिम घडियाँ गिन रहे थे कि इतने मे उनका एक मित्र उनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए बोला—"आपने अपने जीवन मे क्या पाया ?"

खलील जिब्रान ने गम्भीर मुद्रा बनाकर उत्तर दिया—"मैंने दुनिया के लिए महल बनाया, दुनिया ने मेरे लिए कब्र खोदी। मैंने जनता के मार्ग मे फूल बिछाये, जनता ने मेरे मार्ग मे काँटे बिछाये। यही मैंने इस दुनिया मे पाया है।"

खलील जिब्रान के उत्तर को सुनकर मित्र गद्गद हो उठा। वस्तुतः महापुरुष कठिनाइयो तथा विपत्तियो मे ही अपने जीवन का सत्य प्राप्त कर लेते है। वे विरोध को विनोद मानकर चलते है। दुनिया उनके प्रति भले ही दुर्व्यवहार करे लेकिन वे तो सज्जनता के मार्ग पर ही चलने की शपथ लेते है।

सत्पुरुष का समागम

दीपक मे आप भले ही ऊपर तक लबालब तेल भरदे, फिर उसमें रुई की सुन्दर बत्ती लगादे लेकिन जब तक उसका सम्पर्क ज्योतिर्मय प्रदीप से नही होगा तब तक उसमे प्रकाश उद्भासित नही हो सकता।

इसी प्रकार मनुष्य चाहे जितने सद्ग्रन्थो का पारायण कर डाले या नवीनतम ज्ञान की धारा मे अवगाहन करले लेकिन जब तक उसका सत्पुरुष से समागम या सम्पर्क नही होता है तब तक उसका ज्ञान सम्यक्ज्ञान मे नही परिणत हो सकता। आज दुनिया मे विद्यालयो अथवा पुस्तकालयो की कमी नही है, यदि कमी है तो प्रेरणा देने वाले सत्पुरुषो अथवा महापुरुषो की। इसीलिए ज्ञान-विज्ञान का भडार भरा हुआ है किन्तु मनुष्य की आत्मा सोयी हुई है।

तपस्या और सत्संग

एक बार महर्षि विश्वामित्र और वशिष्ठ मे इस बात को लेकर विवाद छिड़ गया कि तपस्या बडी है या सत्सग ? विश्वामित्र तपस्या का पक्ष ले रहे थे जबकि वशिष्ठ सत्सग को महत्त्व दे रहे थे। जब निर्णय की सभावना प्रतीत न हुई तो दोनो ने शेषनाग के समक्ष यह समस्या विचारार्थ रख दी। शेषनाग दो टूक उत्तर देकर किसी को दु खी नही करना चाहते थे। अत उन्होने दोनो मुनियो से निवेदन किया—"मैं पृथ्वी का भार उठाये-उठाये बहुत थक गया हूँ। यदि आप दोनो मे से कोई इसको थोडी देर के लिए उठाले तो मैं निर्णय कर सकता हूँ।"

महर्षि विश्वामित्र ने यह चुनौती स्वीकार करली। उन्होने कहा—"मैं दस हजार वर्ष की तपस्या का फल देता हूँ, मेरे सिर पर पृथ्वी ठहर जाये।" ऐसा कहकर ज्यो ही उन्होने पृथ्वी को अपने सिर पर धारण करना चाहा कि पृथ्वी बेचारी डगमगाने लगी। सारे विश्व मे हाहाकार मच गया।"

यह दृश्य देखकर महर्षि वशिष्ठ ने कहा—"मैं आधे क्षण के सत्सग के पुण्य का फल देता हूँ। पृथ्वी मेरे सिर पर ठहर जाय।" ऐसा कहते ही पृथ्वी उनके सिर पर टिक गई। जब शेषनाग वशिष्ठ के सिर से पृथ्वी को लेने के लिए आगे बढे तो वशिष्ठ ने कहा कि पहले हम दोनो के विवाद का निर्णय कर दीजिये। शेषनाग ने हँस कर उत्तर दिया—"मुनिराज ! आपने

यह वात अव भी नही समझी कि आधे क्षण के सत्सग के फल के आगे दस हजार वर्प की तपम्या का फल नगण्य हो गया ।"

बड़े बनो !

स्वामी रामतीर्थ सन्यास ग्रहण करने के पूर्व एक कॉलेज मे प्राध्यापक थे । एक दिन जव वे अपने वर्ग मे विद्यार्थियो के समक्ष व्याख्यान दे रहे थे तो उन्होने श्यामपट्ट पर एक रेखा खीचते हुए विद्यार्थियो से कहा कि इसे छोटा वनाओ । कक्षा मे वैठे हुए एक विद्यार्थी ने विना कुछ सोचे-समझे श्यामपट्ट पर जाकर उसे मिटाना चाहा ताकि वह स्वत छोटी हो जाये । स्वामी रामतीर्थ ने उस विद्यार्थी को ऐसा करने से मना कर दिया ।

इतने में एक दूसरा बुद्धिमान छात्र उठा और उसने उस रेखा के समानान्तर एक दूसरी वडी रेखा खीच दी ताकि पहले वाली स्वत· छोटी लगने लगे । स्वामी रामतीर्थ ने उसकी बुद्धिमत्ता की सराहना की और उसकी पीठ थपथपाई । इसका तात्पर्य यह है कि दूसरो को मिटाने का अधिकार प्रकृति ने हमे नही दिया है । अपने गुणो का विकास कर हम स्वत वड़े वने और कीर्ति अर्जित करे, दूसरो को मिटाये नही । इसी तथ्य को उस बुद्धिमान विद्यार्थी ने स्पष्ट किया था ।



४

शिक्षक का कर्त्तव्य और शिक्षा

- ज्ञान
- तैयारी
- वस्त्र बदले
- जिज्ञासु
- उत्तर
- चिकना
- श्रवण-मनन
- लोहा और श्रोता
- धार्मिक शिक्षा
- शिक्षा क्या है ?
- किसने सीखी ?
- कलाकार की सार्थकता
- अपनी ओर
- दूर की नहीं नजदीक की
- सिनेमा और प्रवचन
- जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि

- ☐ विद्यार्थी और चरित्रबल
- ☐ विद्यार्थी कैसा हो ?
- ☐ गुरु एक दीपक
- ☐ आज के शिक्षक
- ☐ सूखा वृक्ष
- ☐ सीपी और मोती
- ☐ वसी हरी क्यो नही होती ?
- ☐ उपदेश एक दवा
- ☐ गहरा चिन्तन
- ☐ शिक्षा
- ☐ किससे क्या सीखे ?
- ☐ आशीर्वाद
- ☐ भौतिकता की सीपियाँ
- ☐ जीवन एक ताला है
- ☐ मन का आराम निर्विचार
- ☐ भवरोगो का उपचार
- ☐ दोषो को बाहर निकालो
- ☐ लेने की कला
- ☐ ऊँचे संस्कार देना कठिन
- ☐ आज की शिक्षा
- ☐ ये कैसे विद्यालय ?
- ☐ उपदेशक और दीपक

शिक्षक का कर्त्तव्य और शिक्षा

ज्ञान

'हृदय प्रदीप' मे लिखा है कि "तत्त्वावबोधादपयाति मोह" अर्थात् तत्त्व के ज्ञान से मोह-अज्ञान दूर होता है। ज्ञान वह ज्योति है जो कभी मलिन नही पडती। मिट्टी के दीपक मे तेल की कमी से प्रकाश मन्द पड जाता है किन्तु ज्ञान का प्रकाश शाश्वत होता है। वह मिथ्यात्व के अन्धकार को उसी प्रकार भगा देता है जैसे सूर्य रात्रि के अन्धकार को। ज्ञान की साधना सबसे श्रेष्ठ साधना है। जो अज्ञानान्धकार मे भटक रहे हैं उनकी मुक्ति तो ज्ञान के प्रकाश से ही होगी।

तैयारी

किसी भी बडे कार्य की सिद्धि के पूर्व पूर्ण तैयारी की आवश्यकता होती है। रात्रि मे दीपक को प्रज्वलित करने से पहले उसकी तैयारी करनी पडती है। पहले उसमे बत्ती लगानी होती है फिर उसे तेल से भरना होता है। कभी-कभी उस पात्र की स्वच्छता पर भी ध्यान देना होता है। यदि इतनी तैयारी न हो तो वह दीपक भली-भाँति जल नही सकता। इसी प्रकार साधक की वास्तविक तैयारी इस बात मे ही है कि उसे गुरु का सच्चा उपदेश पाते ही आत्मबोध हो जाये। यदि उसने अपने हृदय रूपी पात्र को पहले से ही स्वच्छ नही कर लिया है तो उसमे उपदेश का अमृत ठहरेगा कैसे ? हमारे मे उपदेश-ग्रहण की पूर्ण तैयारी होनी ही चाहिए, अन्यथा हम सच्चे से सच्चे गुरु के उपदेश की भी अवहेलना कर डालेंगे।

वस्त्र बदलें

तैयारी के भी कई प्रकार और रूप होते हैं। विवाह-शादी मे

सम्मिलित होने के लिए वस्त्र और आभूषण विशिष्ट कोटि के होते हैं, पूजा, अनुष्ठान मे भाग लेने के लिए वस्त्रो की कोटि दूसरी होती है, धर्म-स्थानक या उपाश्रय मे जाने के लिए रोज के इस्तेमाल किये गये वस्त्र काम मे नही आते। धर्म-स्थान मे जाने के पूर्व शरीर-शुद्धि तथा वस्त्रो की पवित्रता का ध्यान रखा जाता है। इसी प्रकार उपदेश सभा मे जाने के लिए जब हम प्रस्तुत हो तो पहले अहकार तथा मोहरूपी वस्त्रो को मन से बदल डालना चाहिए। इन वस्त्रो की जगह हम विनम्रता तथा त्याग के वस्त्र पहन ले। गुरु तथा उपदेशक के समक्ष मलिन वस्त्र पहनकर जाने से मन लज्जा से गढ जाता है, अत इन परिधानो को छोडकर हमे मन की स्वच्छता और उसकी शुद्धि पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

जिज्ञासु

तपस्या अथवा ज्ञान की प्राप्ति सच्चे जिज्ञासु को ही हो सकती है। यदि मन मे वास्तविक जिज्ञासा नही है, कर्म-बन्धन से मुक्त होने की अभिलाषा नही है तो उपदेश और गुरु की शिक्षा भी मन मे नही टिक सकती। अत मन के अन्तर्गत जिज्ञासा उतनी ही तीव्र होनी चाहिए जितनी तीव्रता पेट्रोल मे आग को पकडने मे होती है। साधक अथवा तपस्वी के मन मे जब लगन पैदा होती है तब वह गुरु के अगुली निर्देश मात्र से आत्मोन्नति के द्वार खोल लेता है, अन्यथा समस्त जीवन की साधना निष्फल सिद्ध होती है।

जिसके नेत्रो मे प्रकाश न हो, उसको आप कितना ही शक्तिशाली व बढिया चश्मा पहनाये फिर भी वह देखने मे असमर्थ ही होता है। गुरु कितना भी महान् ज्ञानी क्यो न हो, यदि शिष्य के मन मे आत्म-स्वरूप के जानने की जिज्ञासा नही है तो वह गुरु बेचारा भी क्या कर सकता है ? इसीलिए तो कहा गया है—

कहो करे क्या सद्गुरु चेला नही तैयार।
आँखो मे ज्योती नही चश्मा है बेकार॥

उत्तर

बडे से बडे प्रश्नो के उत्तर अपने मन मे ही छिपे रहते है। अगर हममें धैर्य और प्रतिभा हो तो उन उत्तरो के लिए बहुत दूर जाने की जरूरत नही है। इस प्रकार मन की बडी से बडी शका का समाधान बडी सरलता

से पाया जा सकता है, बशर्ते हम मे उन समाधानो को ग्रहण करने की शक्ति हो ।

लेकिन आज के मनुष्य का स्वभाव कुछ ऐसा बन गया है कि वह अपने निकट की वस्तु का मूल्य न समझकर इधर-उधर भटकता फिरता है। जैसे कस्तूरी हिरण की नाभि मे होती है और वह उसे जगल मे ढूँढता रहता है। अगर हम मे जीने की कला है तो हम साधारण साधनो के रहते हुए भी असाधारण सुख प्राप्त कर सकते है। सुखी जीवन के लिए बहुत बड़े बैंक बैलेस की जरूरत नही है, बल्कि जरूरत है त्याग और सयम की। अत मन के निकट साधनो को पहचानना जरूरी है, दूर की मृग-तृष्णा मे तो अशान्ति और कष्ट ही है।

चिकना घड़ा

जैसे चिकने घड़े पर पानी नही टिकता, वैसे ही दूषित मन मे विशिष्ट शिक्षाये भी नही टिकती। मन मे यदि दोष है, वासना का विकार है तो सारा ज्ञान उसके लिए तुच्छ है। अत मन की शुद्धि ही ज्ञान तथा साधना की कुजी है ।

लोग जब किसी वस्तु को बडे प्रयत्न से भी नही प्राप्त कर पाते तब वे अपने भाग्य को दोष देने लगते है। वे समझते हैं कि उनके भाग्य मे वह वस्तु है ही नही। लेकिन यह तो ऐसा ही हुआ जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति चलनी मे दूध दुहे और कर्म को गाली दे। चलनी मे तो इतने छिद्र है कि उसमे दूध टिक ही नही सकता। अत दूध का दोष नही है, दोष है चलनी मे दूध दुहने वाले का। अगर मनुष्य के मन की अभिलाषायें अतृप्त है, उसमे नित्य ही असन्तोष बना हुआ है तो उसको अपने मन की ओर खूब विचारपूर्वक देखना चाहिए। कही ऐसा तो नही है कि मन ही अशुद्ध एव अयोग्य है जिसके कारण सारी साधना शून्य मे परिणत हो गई है।

श्रवण-मनन

कहा जाता है कि 'कालेण य अहिज्जित्ता, तओ झाइज्ज एगगो" अर्थात् यथासमय अध्ययन करके फिर उसके तत्त्व का ध्यान-चिन्तन-मनन करना चाहिए। इसीलिए तथागत ने कहा था कि धर्मशास्त्रो का मात्र पाठ करना दूसरो की गाये गिनने के समान है। जैसे दूसरो की गायें गिनने से

हमारा कोई लाभ नही होता। उसी प्रकार धर्मशास्त्रो का केवल पठन एव श्रवण हमे कुछ नही दे सकता। उन शास्त्रो को पढने के पश्चात् हमें गम्भीरतापूर्वक उनमे छिपे हुए तत्त्वो की खोज करनी चाहिए और तदनुसार आचरण करना चाहिए।

जैसे मकान वनाने के पूर्व इजीनियर कागज पर नक्शा वनाता है ताकि उसकी पूर्व पीठिका निश्चित हो जाये। किन्तु वह उस कागज के नक्शे तक ही सीमित रह नही सकता। उसे तो सीमेंट, लोहा, पत्थर आदि वस्तुओ को लेकर मकान का वास्तविक निर्माण करना ही होगा। इसी प्रकार मात्र धर्म-ग्रन्थो के श्रवण से कुछ वनने वाला नही है। यह श्रवण तो कागज पर वनाये गये नक्शे की भाँति है। उसे कार्यरूप मे परिणत करने के लिए अध्ययन, मनन और चिन्तन आवश्यक है।

लोहा और श्रोता

लोहा जव तक जलती हुई अग्नि के वीच पडा रहता है, तव तक वह लाल रहता है। उस समय उसे लुहार मनोनुकूल आकृति भी दे सकता है। किन्तु जैसे ही उसे आग से निकाल लिया जाता है, वह थोडी ही देर में ठण्डा होकर पुन: काला वन जाता है। फिर उसे किसी भी नये रूप मे ढालना कठिन हो जाता है।

आज के अधिकाश श्रोताओ की मन:स्थिति की भी यही प्रक्रिया है। वे जव तक धर्मस्थानक मे तेजस्वी गुरुओ के सम्पर्क मे रहते हैं अथवा उनके मुखारविन्द से धर्मोपदेश सुनते हैं तव तक उनका लगाव धर्म-कर्म के प्रति वना रहता है और वे सोचते है कि कल से जीवन मे सदाचार का पालन करेंगे। किन्तु जैसे ही वे गुरु के सम्पर्क से दूर हुए अथवा घर-परिवार की समस्याओ के प्रति उन्मुख हुए वैसे ही धर्म-कर्म का प्रभाव उनके मन से जाता रहता है। वे पुन माया-मोह तथा वासना जैसी विकृतियो से काले वन जाते हैं।

धार्मिक शिक्षा

छात्र देश के प्रज्वलित दीपक के समान हैं। उनके प्रकाश से देश को रोशनी मिलेगी, यह विश्वास हमें करना चाहिए। ये जाति, समाज और राष्ट्र के कर्णधार है, विश्व का भविष्य छात्र-समुदाय के हाथो मे है। इस

पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने का कार्य उन्ही की वलिष्ठ भुजाओ को करना है। विद्यार्थी-जीवन सम्पूर्ण जीवन की तैयारी का स्वर्ण युग है। छात्रो को आज अपने विराट् स्वरूप को पहचानना है।

लेकिन यह पहचान तव तक पूरी नही हो सकती, जव तक कि उन्हे भौतिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक या आध्यात्मिक शिक्षा न दी जाये। धार्मिक शिक्षा से हमारा मतलव जीवन की पवित्रता, सयम, त्याग एव राष्ट्र-सेवा से है। यदि विद्यार्थी इस शिक्षा से वचित रह गया तो फिर न वह अपना कल्याण कर सकता है और न राष्ट्र का। केवल पुस्तकीय ज्ञान उसे उपाधियो से अलकृत कर सकता है किन्तु जीवन के अलकरण से तो वह दूर ही रहेगा। इस सन्दर्भ मे कवि सम्राट श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर की एक कहानी मुझे स्मरण आ रही है—

एक धनपति ने वडा सुदक्ष इजीनियर रखकर अत्यन्त भव्य महल का निर्माण कराया। लोगो ने सेठ के महल की कारीगरी देखकर वडी प्रशसा की। आस-पास के लोग उस महल को देखने दौड पड़े। पहली मजिल वडी आकर्षक और कलात्मक थी। उसे देखकर लोग चमत्कृत हो उठे। जव वे आगे वढे तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा क्योकि दूसरी मजिल पर जाने के लिए कही सीढियाँ ही नही वनी थी। इधर-उधर खोजने के वाद भी जव सीढ़ियो का पता न चला तो सव लोग सेठ के पास दौड़े आये और सेठ से कहने लगे—"वाह सेठ! अच्छा मकान वनवाया! ऊपर की मजिल पर जाने के लिए सीढियाँ कहाँ है? ऊपर की मजिल किस काम आयेगी? क्या वह सिर्फ देखने के लिए है?" अव सेठ को काटो तो खून नही। उन्हे अपनी गलती तथा सुदक्ष इजीनियर की भूल पर पश्चाताप होने लगा।

विद्यार्थी-समाज भी नई-नई उपाधियाँ लेकर नीचे की मजिल तो ठीक कर रहा है किन्तु ऊपर की—अर्थात् मानवोपरि मजिल पर जाने की सीढियाँ नही वना पा रहा है। यह सीढियाँ तो धार्मिक शिक्षा ही वना सकती है।

शिक्षा क्या है?

शिक्षा का चरित्र-निर्माण से वडा घनिष्ठ सम्वन्ध है। यदि शिक्षित

व्यक्ति का चरित्र उच्च नही है तो उसका सारा अध्ययन व्यर्थ और नीरस है। वैज्ञानिको की मान्यता है कि हीरा हमेशा कोयले की खान के निकट ही प्राप्त होता है। जब उसे जमीन से खोदकर निकाला जाता है तब वह उतना आकर्षक नही होता जितना कि उसे कारीगर मशीनो पर तराश कर वना देते हैं। जव वह तराश दिया जाता है तभी आभूपणो मे जडने लायक वनता है।

शिक्षा का कार्य भी मनुष्य के जीवन तथा चरित्र को तराशना ही है। शिक्षा भी अनगढ एव अनिर्मित व्यक्ति को तराश कर सुन्दर एवं महान बनाती है। मनुष्य के मन पर अविद्या का जो मैल चढा है उसे हटा कर निर्मल एव पवित्र वनाना शिक्षा का वास्तविक धर्म है। यदि वह उसे सद्-गुणी एव सज्जन नही बनाती तो वह अपने महान उद्देश्य से पतित हो जाती है।

किससे सीखी ?

किसी व्यक्ति ने लुकमान हकीम से बडा विचित्र प्रश्न किया—'आपने सभ्यता किससे सीखी ?' लुकमान ने वडी सजीदगी से उत्तर दिया—"असभ्य लोगो से।" इस कथन मे यही तथ्य छिपा है कि जो बाते अपने को बुरी लगती हैं, उनको हम दूसरो के लिए कदापि व्यवहृत न करें। असभ्य लोगो ने लुकमान हकीम को अपनी असभ्यता से अवश्य पीडित किया होगा। हकीम ने उन वातो को दूसरे के लिए कभी नही दुहराया क्योकि वे जानते थे कि इन वातो से कितनी पीड़ा होती है। यही तो सभ्यता सीखने का सवसे अच्छा पाठ है।

कलाकार की सार्थकता

राष्ट्रपिता गाधी ने लिखा है कि जीवनकला सव कलाओ मे श्रेष्ठ है। जो अच्छी तरह जीना जानता है, वही सच्चा कलाकार है। अक्सर हम कलाकार उस व्यक्ति को कहने की भूल करते है जो जीवन के गम्भीर उत्तर-दायित्वो मे बचकर एक कल्पना-लोक मे रहता है। लेकिन यह गलत परिभाषा है। ससार के वड़े और सच्चे कलाकार जीवन को गम्भीरता से स्वीकार करते है और भूत तथा भविष्य के जीवन का आयोजन करते है। वर्तमान को उसके सम्पूर्ण सन्दर्भ मे स्वीकार करना और अपनी परिस्थितियो

से सघर्ष करते हुए आगे वढना सच्चे कलाकार का धर्म है। जीवन से पलायन करके कला की साधना असभव है। जीवन की सूक्ष्मताओ पर चिन्तन-मनन कर उच्चतर मानव-मूल्यो की सृष्टि करने मे ही कला तथा कलाकार की सार्थकता है।

अपनी ओर

जव हम दूसरे की ओर एक उँगली उठाते है तो तीन उँगलियाँ अपनी ओर हो जाती हैं। अत हमे दूसरो के दोप-दर्शन तथा उनकी ओर सकेत करने की अपेक्षा पहले स्वय को देखना आवश्यक है। यदि हममे कोई दुर्गुण या वुरी आदत है तो हमे दूसरो की आलोचना करने का कोई हक नही है। जो लोग अपने दोपो की ओर न देखकर केवल दूसरो के दोप ढूँढते हैं उन्ही के वारे मे कवीर ने वडा सार्थक दोहा कहा है—

वुरा जो देखन मैं चला, वुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे वुरा न कोय॥

कवीर के कथन की सत्यता के प्रति कितने लोग ध्यान देते है ? इसीलिए कहा जाता है कि यदि तुम्हारे दरवाजे पर कचरे का ढेर लगा हो तो दूसरे की छत पर पडी गन्दी वस्तु की ओर सकेत मत करो। पहले अपनी स्वच्छता पर ध्यान दे तभी हम दूसरो की गन्दगी की आलोचना का नैतिक अधिकार प्राप्त कर सकते है।

दूर की नहीं नजदीक की

आज शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य ही वदल गया है। मनुष्य चन्द्रलोक अथवा मगललोक की यात्रा की जितनी तत्परता से तैयारी कर रहा है, उतनी अपनी दैनिक जीवन-यात्रा की नही। हम दूर की वस्तुओ के प्रति आकर्पित होकर दौड पडते है, भले ही नजदीक मे कितनी ही मूल्यवान वस्तु क्यो न पडी हो ? अँग्रेजी मे एक कहावत है जिसके अनुसार, 'हर एक चमकने वाली वस्तु स्वर्ण नही होती'। हम चमक देखकर समझ लेते है कि यह सोना है और उसके लिए परेशान होने लगते है, जवकि वह नकली धातु सावित होती है और हम निराश होकर अपने को कोसने लगते है।

आज के विद्यार्थियो से यदि यह पूछा जाये कि सिकन्दर कौन था, वह किस देश मे और कव पैदा हुआ था, उसके घोडे का क्या नाम था, तो

वह कितावी कीडे की तरह इतिहास के पन्ने चाटकर इन प्रश्नो का उत्तर दे देगा। किन्तु यदि विद्यार्थी से यह पूछा जाये कि उसके दादाजी कव जन्मे और जीवन मे उनकी सफलता का क्या रहस्य था ? तो वह आसमान के तारे देखने लगेगा। यह एक गलत प्रणाली है और आधुनिक शिक्षा की वहुत वडी दुर्बलता है।

सिनेमा और प्रवचन

मैं कभी-कभी कुछ बाते सुनकर अथवा जानकर परेशान हो जाता हूँ। जब मैं देखता हूँ कि सिनेमाघरो के आगे नवयुवक-नवयुवतियो की लम्वी कतारे लगी है, टिकट के लिए छीना-झपटी चल रही है, टिकटो का काला वाजार गर्म है तो दो मिनट के लिए सोचने को विवश हो जाता हूँ कि क्या आज यही शिक्षा स्कूलों, कालेजो तथा विश्वविद्यालयो मे दी जा रही है ? क्या गुरुकुलो मे चरित्र-निर्माण का यही पाठ पढाया जा रहा है ? सर्वत्र अन्धानुकरण और पाश्चात्य फैशन का प्रवाह वह रहा है। उसी में देश का नवयुवक समाज आकठ निमग्न है।

दूसरी ओर दृष्टिपात करता हूँ तो वडा विचित्र दृश्य दिखलाई पडता है। धर्मस्थानको, मन्दिरो, मस्जिदो अथवा चर्चो मे प्रवचन चल रहा है किन्तु वहाँ श्रोताजनो की उपस्थिति नगण्य है। वड़े-बड़े विद्वान, धर्मानुरागी और उपदेशक जन-समाज को अपनी ओर आकृष्ट करने मे असमर्थ प्रतीत हो रहे है जवकि सिनेमाघरो मे पैर रखने की जगह नही है। क्या यही गाधी का देश है ? क्या स्वतन्त्रता का लम्वा सघर्ष हमने इसीलिए लडा था ? क्या आजादी की कीमत सिनेमा के टिकटो मे चुकाई जा रही है ?

जैसी दृष्टि : वैसी सृष्टि

सागर के तट पर व्यापारी व्यापार मे लाभ-हानि का, विद्यार्थी अपने अभ्यास का, कवि कविता की अलौकिक कल्पनाओ का, लेखक अपने मस्तिष्क मे उत्पन्न विचार-शृ खला का, विचारक तत्त्व-चिंतन का, विलासी विलास-मुद्राओ का, गोताखोर सीप के गर्भ मे पडी हुई मोती का और मछलीमार मछली का चिंतन करता है। इनमे से हरएक को अपनी-अपनी दृष्टि के अनुसार समुद्र से प्रेरणा प्राप्त होती है। समुद्र तो एक ही है और उसके मानस मे उठने वाली उत्ताल तरगे भी एक तरह की ही है। किन्तु अपने मन के चिंतन के अनुरूप उनकी प्रकृति वदलती रहती है।

इसीलिए कहा जाता है कि जैसी दृष्टि होती है, उसी के अनुसार सृष्टि होती है। 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' वाली कहावत यही चरितार्थ करती है। यदि मनुष्य अपने मन मे किसी प्रकार का पाप न लाये अथवा उसकी दृष्टि मे किसी प्रकार का दोप न हो तो सर्वत्र सुख और शान्ति का समुद्र लहराता दिखलाई देगा। लेकिन यदि दृष्टि मे ही दोप है तो उसे गुण कहाँ से दिखाई देंगे और कैसे प्राप्त होगे ?

विद्यार्थी और चरित्रबल

'मनुस्मृति' मे एक वडा सुन्दर प्रसग आता है जिसमे यह दर्शाया गया है कि एक बार विद्या ब्राह्मण के पास आकर कहने लगी कि "मै तेरी निधि हूँ, मेरी रक्षा कर। जो ईर्ष्यालु है, उसको मुझे मत दे तभी मैं विशेष शक्तिशाली वन सकूँगी। जिसे तू पवित्र और जितेन्द्रिय-ब्रह्मचारी समझता है, और जो निधि के समान मेरी रक्षा करने वाला है, उसी अप्रमादी छात्र को मुझे देना।"

मैं समझता हूँ कि आज के विद्यार्थी को यह वात गाँठ वाँधकर रख लेनी चाहिए। इस प्रसग मे विद्यार्थी के चरित्रवल की ही प्रशसा की गई है। यदि विद्यार्थी के पास चरित्रवल नही है तो उसकी साधना कभी पूरी नही हो सकती। जो छात्र जितेन्द्रिय और चरित्रवान है उसकी विद्या की साधना सुखद और महान है। इसीलिए 'स्थानागसूत्र' मे चार प्रकार के व्यक्ति पढाने के लिए अयोग्य घोषित किये गये हैं—अविनीत, रसलोलुप, क्रोधी और कपटी। वस्तुत इन व्यक्तियो के पास अध्ययन की प्रेरणा ही नही होती। अत उनका मस्तिष्क उस वजर जमीन की तरह होता है जहाँ बीज डालना ही वेकार हो जाता है। ऐसे लोगो के वारे मे ही उर्दू मे एक शेर है—

"नही बजर जमी मे फूल आते,
अकारथ वीज है, मेहनत के जाते।"

विद्यार्थी कैसा हो ?

विद्यार्थी को सचेत, सजग, उत्साही, धैर्यवान, अनुशासनप्रिय एव उदार मनोवृत्ति का होना चाहिए। इन गुणो के अभाव मे विद्यार्थी विद्यार्थी न रहकर विलासी हो जाता है। सस्कृत के विद्वानो ने विद्यार्थी के पाँच लक्षण निर्धारित किये है—

काकचेष्टा, वकध्यान, श्वाननिद्रा तथैव च ।
अल्पाहार विहारश्च, विद्यार्थी पंचलक्षण ।

अर्थात्—अपने अध्ययन मे उसे वैसी ही चेष्टा करनी चाहिए जैसी कि कौवे मे अपने भोजन के प्रति होती है। जैसे तालाव के जल मे वगुला खडा रहकर मछलियो पर ध्यान लगाये रहता है, उसी प्रकार विद्यार्थी को अखण्ड ध्यान करना चाहिए । कुत्ते को जरा-सी आहट मिलते ही उसकी निद्रा भग हो जाती है। वैसी ही निद्रा से विरक्ति विद्यार्थी मे भी होनी चाहिए। यदि वह निद्रा-भक्त है तो वह पढेगा कव ? इसके साथ-साथ विद्यार्थी को आहार-विहार मे वहुत सयमी होना चाहिए। इनकी अधिकता से विद्यार्थी की साधना मे वाधा पडती है।

गुरु : एक दीपक

जैसे दीपक अपने प्रकाश मे पथिक को पथ भ्रष्ट नही होने देता, और उसे अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने मे मदद करता है, उसी प्रकार सच्चे गुरु अपने ज्ञान के प्रकाश मे शिष्यो को निर्दिष्ट साधना-पथ से विमुख नही होने देते। वे अपनी अन्तरात्मा के प्रकाश से शिष्य की साधना को भी प्रकाशित कर देते हैं। कवीरदास, सूरदास, तुलसीदास जैसे महान सन्तो का जीवन अपने गुरु के आशीष से ही इतना शुभ और पवित्र वन सका।

'गुरु' शब्द की व्युत्पत्ति भी इसी अर्थ को स्पष्ट करती है। एक अज्ञात विद्वान ने लिखा है कि—'गु' शब्द का अर्थ अन्धकार है और 'रु' शब्द का अर्थ रोकने वाला है। अज्ञानरूपी अन्धकार को रोकने वाला होने से गुरु 'गुरु' कहा जाता है।

आज के शिक्षक

किसी विचारक ने कहा है—"पहले शिक्षक वच्चो को पढाते-लिखाते थे और माता-पिता उन्हे अजायवघर दिखाने ले जाते थे। लेकिन अव शिक्षक उन्हे अजायवघर ले जाते है और माँ-वाप उन्हे पढाते-लिखाते है।" कहने का तात्पर्य यह है कि आज के शिक्षको मे मार्ग-दर्शन की उचित प्रेरणा या सामर्थ्य नही है। वे तो सिर्फ शिक्षा का व्यवसाय कर रहे है, जहाँ सारा ध्यान लाभ-हानि पर लगा हुआ है। जो अच्छे शिक्षक और आचार्य है वे भी इस व्यावसायिकता की भीड़ मे खो गये है।

आज के विद्यार्थियो की असफलता का सारा दोप शिक्षक बच्चो के अभिभावको के मत्थे मढ देते है और अभिभावक सारी असफलता के लिए शिक्षको को जिम्मेदार ठहराते है। यह वडी विचित्र उलझन है। इसका सीधा सा अर्थ यह भी है कि शिक्षक भी कही न कही असफल है। सस्कृत के एक विद्वान का अभिमत है कि 'यदि शिष्य को ज्ञान नही होता तो वह आचार्य-गुरु की ही जडता है, क्योंकि गायो को कुघाट मे उतारने वाला वस्तुत गोपाल ही है।'—

आचार्यस्यैव तज्जाड्य यच्छिष्योनाववुध्यते।
गावो गोपालकेनैव, कुतीर्येनावतारिता.॥

सूखा वृक्ष

जिस वृक्ष की जडे जीवन-रस से वचित होकर सर्वथा सूख गयी है, अथवा जिसका भूमि की सरसता से सम्वन्ध-विच्छेद हो चुका है उस वृक्ष पर लाखो घड़े पानी डालने से अथवा उसकी जडो मे खाद-सामग्री या पोषक द्रव्य छोडने से कोई लाभ होने की सम्भावना नही है। वह वृक्ष कभी भी हरा-भरा और सर-सव्ज नही हो सकता। इसी प्रकार जिसका हृदय वासना और परिग्रह की ममता से झुलस चुका है अथवा जिसकी जडो मे राग-द्वेप के कीटाणु लग चुके हैं, उसे कितना भी त्याग और वैराग्य का पाठ पढाया जाय वह सव निरर्थक सिद्ध होता है। तुलसीदासजी ने ऐसे ही मूर्खो पर तरस खाते हुए लिखा है—

फूलहिं फलहि न बेत जदपि सुधा वरसहि जलद।
मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलै विरंचि सम॥

अर्थात् बेत के ऊपर चाहे वादल अमृत की वर्पा क्यो न करे, लेकिन वह कभी फूल और फल नही दे सकता। इसी प्रकार मूर्ख को यदि ब्रह्मा स्वय पढाने वैठें तो भी उसकी चेतना जागृत नही हो सकती।

सीपी और मोती

कई सीपियाँ ऐसी होती हैं जिनमे सयोगवश यदि स्वाति नक्षत्र का वरसा हुआ एक बूँद भी जल पड गया तो वह मोती मे वदल जाता है। लेकिन समुद्र मे ऐसी भी अनेक सीपियाँ होती है जो स्वाती नक्षत्र का टनो पानी

पीकर भी एक भी मोती को जन्म नही दे पाती, अर्थात् उन पर किसी प्रकार का प्रभाव नही पडता ।

इसी प्रकार कई भव्यात्माये महान् गुरुओ तथा आचार्यो के सान्निध्य मे एक क्षण बैठकर अथवा उनका उपदेश सुनकर कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो जाती है और त्याग, वैराग्य एव सयम के गुणो को स्वीकार कर लेती है । लेकिन कुछ जडवत् ऐसी आत्माये भी होती हैं जिनको कितना भी उपदेशामृत पिलाया जाये अथवा गुरु के वचनो का श्रवण कराया जाय, फिर भी उन पर कोई प्रभाव नही पडता ।

बंशी हरी क्यों नहीं होती ?

एक वड़े जनसमुदाय के मध्य मे उच्च आसन पर वैठकर एक प्रमुख आचार्य भागवत की कथा सुना रहे थे । प्रसग कृष्ण की वशी के वर्णन का चल रहा था जिसमे यह वताया गया था कि कृष्ण की वशी की मधुर ध्वनि को सुनकर सारा का सारा वन हरा-भरा हो गया । लतायें झूमने लगी और वृक्षो मे नई कोपलें निकल आयी । उस जनसमुदाय पर कथा का पूरा प्रभाव पड चुका था, अत श्रोता-वर्ग कथा-रस का आनन्द ले रहा था इतने मे ही एक श्रोता ने पडित जी से बडा अटपटा सवाल पूछ लिया—"पडित जी ! यदि वशी की ध्वनि मे इतनी शक्ति थी तो वताइये कि कृष्ण की वशी हरी क्यो नही हो गई ?" सवाल वडा टेढा और चक्कर मे डाल देने वाला था । साधारण मनुष्य इसका क्या उत्तर देता ? लेकिन पडित जी सभा-चतुर थे । उन्होने उत्तर दिया—"भाई ! वृक्षो ने कृष्ण की वशी के सारे शब्द ग्रहण कर लिये थे, अत. वे हरे-भरे हो गये । किन्तु वशी वेचारी तो पोली थी और उसमे कई छिद्र थे, अत वह उस आवाज को नही पकड सकी, उसके सारे शब्द वाहर चले गये । अत वह सूखी की सूखी रह गई ।"

मैं समझता हूँ कि पडित जी के इस उत्तर मे एक वडा रहस्य छिपा हुआ है । आधुनिक श्रोताओ मे ऐसे अनेक वशी जैसे छिद्रयुक्त श्रोता होते हैं, जिन पर किसी भी उपदेश या शिक्षा का असर नही होता । लेकिन कुछ वास्तविक श्रोता भी होते हैं जो गुरु के उपदेशो को आसानी से पकड लेते हैं और अपना जीवन उन्नत वना लेते हैं ।

उपदेश एक दवा

उपदेश को एक औषधि के रूप मे ही ग्रहण करना चाहिए, भोजन के रूप मे नही। भोजन क्षुधा को तृप्त करता है, वीमारी को नष्ट नही करता। वीमारी तो दवा से ही दूर होती है। लेकिन इस बात का भी ध्यान रखना है कि औषधि स्वस्थ व्यक्ति के लिए नही है, वह तो केवल वीमार अथवा अस्वस्थ प्रकृति वाले का उपचार है। यदि स्वस्थ व्यक्ति औपधि का सेवन करे तो यह उसकी मूर्खता ही है।

आज हमे उपदेश या सुन्दर शिक्षा को दवा के रूप मे ही ग्रहण करना चाहिए। यदि यह भोजन के रूप मे लिया जाने लगा तो इसका प्रभाव स्वत नष्ट हो जायेगा। जगह-जगह उपदेशामृत पिलाने वाले उपदेशक जन-साधारण को भोजन की तरह उपदेश पिला रहे है। यह दोनो के लिए अस्वास्थवर्धक है। जैसे भोजन मे नमक की मात्रा सतुलित रखनी पडती है, उसी प्रकार जीवन मे उपदेश की मात्रा को नियमित रखना चाहिए। आज वडे-वड़े आचार्यो के उपदेश इसीलिए बेकार साविन हो रहे है कि जनता ने उपदेशो को भोजन के रूप मे मान लिया है। अत उपदेश सूक्ष्म और मर्मस्पर्शी होना चाहिए न कि विस्तृत और उवाने वाला।

गहरा चिंतन

गहरा चिंतन और गहरा जल दोनो ही श्रेष्ठ और उत्तम होते है। जैसे एक चुल्लू पानी से स्नान नही किया जा सकता, उसी प्रकार हलके और छिछले विचारो से भव-सागर पार नही किया जा सकता। गहरा चिंतन जीवन को प्रकाश देता है और गहरा तथा गम्भीर जल शरीर को पौष्टिक तत्त्व देता है। अत गहरे चिंतक की शरण मे जाकर मन शाति पाई जा सकती है, जिस तरह से असली तैराक को गम्भीर जल मे जाकर ही वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है। 'अधजल गगरी छलकत जाय' वाली कहावत इसीलिए समाज मे प्रचलित है क्योकि अर्धचितन को सम्पूर्ण विचारधारा का प्रतिनिधि नही माना जा सकता। अत समाज को गभीर चितको तथा तत्त्ववेत्ताओ की जरूरत है, छिछले और हलके विचारको की नही।

शिक्षा

जैसे स्वाति नक्षत्र की एक छोटी-सी जल-बूंद सीपी के गर्भ मे पड

कर मोती का रूप धारण कर लेती है, जैसे गाय जंगली घास खाकर शक्तिशाली दूध की पूर्ति करती है, इसी तरह सज्जन व्यक्ति द्वारा ग्रहण की हुई छोटी से छोटी शिक्षा भी महान फलदायक होती है।

किससे क्या सीखें ?

किसी ने पूछा—

"आपने हँसना किससे सीखा ?" उत्तर मिला—"फूलों से, जो हमेशा मुस्कराते रहते हैं और वायु की तरंगों पर थिरकते रहते हैं।"

"आपने मौन का महत्त्व कैसे पहचाना ?" उत्तर मिला—"बातूनी व्यक्तियों से, जो हमेशा बकवास करते हैं और जिनकी बातों पर जन-समाज जल्दी विश्वास नहीं करता।"

"आपने दया का पाठ किससे सीखा ?" उत्तर मिला—"निर्दयी से, जो दया का तिरस्कार करता है और जन्म-जन्मांतरों तक भव-सागर के थपेड़े खाता है ?"

"आप सहिष्णु कैसे बने ?" उत्तर मिला—"असहिष्णु व्यक्ति की हठधर्मिता तथा स्वार्थ-पूर्ति के पीछे अंधे की तरह दौड़ने की प्रवृत्ति से।'

"आपने गाना किससे सीखा ?" उत्तर मिला—"आम्र-मंजरी के बीच में कुहुकती कोकिला से, जिसे अपने श्यामवर्ण पर जरा भी पश्चाताप नहीं होता क्योंकि वह स्वर की साधिका है, रूपगर्विता नहीं।"

आशीर्वाद

पतंग कितनी ही सुन्दर और शक्तिशाली क्यों न हो, किन्तु धागे के अभाव में वह आकाश में नहीं उड़ सकती। बीज में भी भविष्य का वृक्ष छिपा रहता है किन्तु उसके विकास के लिए खाद, पानी, प्रकाश तथा हवा की जरूरत होती है। तिलों के भीतर तेल भरा हुआ है लेकिन मशीन के अभाव में उनसे तेल नहीं निकाला जा सकता। शिशुओं में वाणी की शक्ति तो है किन्तु माता-पिता के अभ्यास कराये बगैर वे बोल नहीं सकते।

इसी प्रकार साधक में कितनी ही उत्कृष्ट लगन एवं सद्प्रेरणा क्यों न हो, लेकिन गुरु की कृपा या आशीर्वाद के बिना वह साधना की अंतिम मंजिल नहीं पा सकता। इसीलिए बड़े से बड़े संतों को गुरुकृपा की महती आवश्यकता का अनुभव हुआ है। 'शान्ति गीता' में लिखा है—"गुरु के बिना

ज्ञान नही मिलता, मुक्ति एव सद्गति नही मिलती । अत योग्य शिष्य को चाहिए कि वह गुरु की सेवा करे और उन्हे सन्तुष्ट करे ।"

भौतिकता की सीपियाँ

सागर के किनारे कोई व्यक्ति मूल्यवान मुक्ता फेककर सीप का सग्रह कर रहा हो तो दुनिया उसे मूर्ख की उपाधि दे देती है। कोई कौडी के वदले हीरा दे दे तो उसकी मूर्खता का इससे वडा विज्ञापन क्या हो सकता है ?

आज का व्यक्ति कुछ ऐसा ही कर रहा है जिससे उसकी मूर्खता सिद्ध हो रही है । अधिकाश व्यक्ति अध्यात्म तत्त्व की मुक्ताओ को न सग्रह कर भौतिकता की सीपियाँ एकत्र कर रहे हैं। वे जीवन के भौतिक मूल्यो—रोटी, कपडा और मकान को सर्वोपरि मान रहे है और उच्चतर मूल्यो की अवहेलना कर रहे है। इससे वडा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है ?

जीवन : एक ताला है

जीवन एक ताले के समान है, जिसकी चावी इसी के साथ मिलती है। किन्तु वहुतो को यह चावी दिखलाई नही पडती, वहुतो ने इस चाबी को खो दिया है और वहुतो को तो इसका उपयोग भी नही मालूम है। वे चावी को लिये-लिये घूमते है किंतु इसे खोलने मे असमर्थ है क्योकि इसकी कला उन्हे नही आती ।

सच पूछिये तो सद्गुरु का निर्देशन ही जीवन रूपी ताले की चावी है । यदि गुरु वास्तविक मार्गदर्शक है तो साधक के समक्ष जीवन के गभीर-तम और गूढतम रहस्यो को स्वत उद्घाटित कर देता है । जो गुरु की इस कृपा को प्राप्त कर लेता है तो उसके लिए ससार मे कुछ भी अलभ्य या गोपनीय नही रह जाता । इसीलिये एक सत ने कहा भी है—

'चन्दन' चावी एक है, है फेरन मे फेर ।
वन्द करे खोले वही, ताते सतगुरु हेर ॥

मन का आराम : निर्विचार

अस्वस्थ और दुर्बल प्राणी को वैद्य औषधि के साथ-साथ आराम करने की सलाह देते है ताकि उसका उपचार भली-भाँति हो सके और वह शीघ्र ही स्वास्थ्य-लाभ कर सके। इस प्रकार के आराम से तन को तो

शाति मिलती है किन्तु मन की शाति के लिए दूसरा ही प्रयत्न करना पडता है।

यदि मन को आराम देना चाहते है तो पहले निर्विचार की अवस्था मे आना सीखे। मन से भौतिक समस्याओ के चिंतन को बाहर निकाल फेकिये और मन को आराम दीजिये। यदि मन को सुख-समाधि की स्थिति मे लाना है तो पहले सासारिक चिन्ताओ से उसे आराम देना ही होगा। जो लोग इस रहस्य को जानते है वे ससार मे रहकर भी मानसिक शांति का यथासभव उपभोग कर लेते है।

भव-रोग का उपचार

जैसे अस्पताल मे जाने से शरीर के रोग का विधिवत् निदान हो जाता है और वहाँ बडे-बड़े डाक्टरो की सलाह पर उपचार का कार्यक्रम भी शीघ्र ही प्रारम्भ हो जाता है, उसी प्रकार धर्मस्थानक भी भव-रोगो के उपचार का सुन्दर अस्पताल है। यहाँ डाक्टरो के स्थान पर पूज्य गुरुओ की सलाह मिलती है जिससे सासारिक राग-द्वेषो तथा विषय कषायो के रोगो का उचित निदान हो जाता है और सच्चरित्रता तथा सयम के द्वारा उपचार होने लगता है। जो लोग मानसिक अशान्ति तथा सासारिक व्याधियों से पीडित है उनके लिए धर्म-स्थानक अस्पताल से बढकर है—और उचित गुरुओ की सलाह किसी योग्यतम और अनुभवी डाक्टर की सलाह से कम नही है।

दोषों को बाहर निकालो

अनुभवी लोगो का कहना है कि अपने दोषो पर पर्दा डालना अपने भविष्य पर पर्दा डालना है। शुभचन्द्राचार्य ने कहा है—"छाद्यमानमपि प्रायः कुकर्म स्फुटति स्वयम्"—अर्थात् कुकर्म को चाहे जितना ही छिपाया जाय वह प्राय अपने आप प्रकट हो जाता है।

इसीलिए गुणो को भले ही छिपाकर रक्खा जाय किन्तु दोषो को तो कदापि नही, क्योकि गुण और सत्कर्म यदि आत्मा के भीतर छिपे रहेगे तो वे अनत आत्म-शक्ति प्रदान करेगे और दोषो का परिहार करेगे। लेकिन यदि दोषो को दवाया गया तो वे जीवन भर साथ न छोडेगे और एक न एक दिन स्प्रिग की तरह उछल कर ऊपर आ जायेगे। तब मनुष्य को कही

भी शान्ति नही मिलेगी। दोप इतने वेग से स्फुटित होते है कि मनुष्य उनके धक्के को सँभाल नही पाता और उसका पतन हो जाता है। इसीलिए किसी विचारक ने कहा है—

पाप छिपायौ ना छिपै, छिपै तो मोटा भाग।
दावी-दूबी ना रहै, रुई लपेटी आग॥

जैसे अग्नि को रुई मे दबाकर नही रखा जा सकता वैसे ही दोषो को आत्मा के भीतर दवाकर रखना असम्भव है।

लेने की कला

जिन्हे कुछ सीखने या शिक्षा-ग्रहण करने की असली कला आती है, वे ससार की छोटी से छोटी वस्तु मे भी कुछ न कुछ शिक्षा पा जाते है। पानी का एक छोटा बुलबुला भी महान सदेश दे सकता है, वशर्ते लेने वाले को उसकी कला मालूम हो, अन्यथा वड़े-वड़े कॉलेजो और विश्वविद्यालयो मे जाकर भी कुछ नही सीखा जाता।

इस्लाम धर्म की प्रसिद्ध साध्वी रविया ने एक सूफी-सन्त के पास मोम, सुई और वाल जैसी तीन महत्त्वहीन वस्तुएँ भेजकर यह सन्देश दिया था कि मोम की तरह जलकर दूसरो को प्रकाश दो ताकि वे अपने पथ का अनुसन्धान कर सकें और ठोकर खाने से वच जाये। जैसे सुई अपने शरीर को नग्न रखकर भी दूसरो के शरीर को कपडे सिलकर पहनाती है, वैसे ही दूसरो की नि स्वार्थ सेवा करो। ऐसा करने से तुम वाल की तरह लचकीले और कोमल वन जाओगे।

वस्तुत· एक साधारण व्यक्ति के लिए उपर्युक्त तीनो वस्तुएँ महत्त्वहीन प्रतीत हो सकती हैं किन्तु रविया जैसी विदुषी के लिए ये वस्तुएँ ही महान शिक्षा दे रही है। इसीलिए तो कहा गया है—

दृश्य-अदृश्य पदार्थ जो, सवसे मिलता ज्ञान।
लेने वाले ले रहे, भूले पडे अजान॥

ऊँचे संस्कार देना कठिन

सस्कारी और समझदार व्यक्ति को वड़े जटिल ग्रन्थो को पढाने मे जितना श्रम नही पडता, उससे कई गुना ज्यादा परेशानी और श्रम छोटे वच्चो को वर्णमाला का पहला पाठ पढाने मे उठानी पडती है।

यही बात सस्कारी और कुसस्कारी व्यक्ति के बारे मे सत्य उतरती है। मस्कार-प्रिय व्यक्ति को ऊँची-ऊँची शिक्षाएँ और नैतिकता का ज्ञान देने मे कठिनाई नही होती। लेकिन जो कुसस्कारो के कीचड मे गले तक डूबे हुए हैं अथवा जिनके मन पर दुराग्रह की शिक्षा रखी हुई है, उन्हे प्रारम्भिक मस्कार देना भी बडी कठिन समस्या है। इस प्रसग मे एक छोटी-सी घटना का स्मरण हो रहा है—

एक वृद्धा नारी सुबह उठकर गोबर एकत्र कर रही थी। तब तक उस क्षेत्र का कोतवाल प्रात:कालीन भ्रमण के हेतु घोडे पर सवार होकर उधर से निकला। बुढिया की कर्त्तव्यनिष्ठा मे कोतवाल बहुत प्रभावित हुआ। उसने बुढिया से अपनी इच्छित वस्तु माँगने को कहा। बुढिया ने दो बाल्टी गोबर प्रतिदिन के लिए माँग लिया। इसी प्रकार सद्गुरु अपनी साधना से प्राप्त अनन्त सुख तथा मुक्तिदाता ज्ञान को समाज के हेतु खुले हाथो मे बाँट रहे हैं किन्तु ससारी प्राणी गोबर के समान तत्त्वहीन भौतिक सुख माँग रहे हैं क्योकि उन्हे ऐसा ही अभ्यास पड गया है और उनके सस्कारो मे विकार आ गया है।

आज की शिक्षा

प्राचीन युग मे नदी और वृक्ष की तरह गुरुकुल के आचार्य बिना किसी धन की लालसा या अपेक्षा से परिचालित होकर निस्पृह भाव से विनीत शिष्यो को विद्यादान करते थे। जब शिष्य सुशिक्षित हो जाता था तो वह गुरु के महान उपकारो को ध्यान मे रखते हुए तथा गुरु के ऋण से उद्धार पाने की भावना को शिरोधार्य कर अपने घर लौटता था। उसके मन मे आजीवन यह बात बनी रहती थी कि—

> एकमेवाक्षरं यस्तु गुरु शिष्यं प्रबोधयेत्।
> पृथिव्या नास्ति तद् द्रव्यं, यद्दत्वा चानृणी भवेत्॥

गुरु, जो शिष्य को एक अक्षर भी उपदेश देते हैं—उस निमित्त पृथ्वी पर ऐसा कोई द्रव्य नही है, जिसको देकर शिष्य उनसे उऋण हो सके।

लेकिन आज की शिक्षा का सारा स्वरूप बदल गया है। आज के आचार्य या गुरु भी विद्यादान के शुभ कार्य को जीवन-निर्वाह का माध्यम

वनाये हुए है—अधिकाधिक वेतन और भौतिक सुखो के प्रति उनमे तीव्र लगाव है। इसी प्रकार विद्यार्थी भी यह समझता है कि जव मैं गुरुओ को प्रतिमास फीस चुकाता हूँ तो गुरु-कृपा कैसी ? दोनो के पवित्र सम्बन्धो को अर्थपिशाच ने अपवित्र कर दिया है और शिक्षा का उद्देश्य विकृत हो गया है।

ये कैसे विद्यालय ?

विद्या और विलास मे जमीन-आसमान का अन्तर है। लेकिन आज मैं देखता हूँ कि दोनो मे वडा घनिष्ट सम्वन्ध स्थापित हो गया है। विद्यालय तो फैशन और विलास के वडे केन्द्र वन गये है। नवयुवक-नवयुवतियाँ विद्याध्ययन की अपेक्षा फैशन-परेड मे शामिल होते दिखाई पडते हैं। लगता है कि शिक्षा का महान उद्देश्य ही पथ-भ्रष्ट हो गया है। इस सन्दर्भ मे मुझे सुप्रसिद्ध राष्ट्रसन्त उपाध्याय अमर मुनिजी का यह कथन वहुत तर्कसगत प्रतीत होता है—

"समय और परिस्थितियो ने आज गुरुकुल की पावन परम्परा को छिन्न-भिन्न कर दिया है। अध्ययन-अध्यापन की पद्धति वदलती गई, विषय वदलते गये और आज तो यह स्थिति है कि अध्ययन-केन्द्र एक मेले की, समारोह की सज्ञा ले रहे है और गुरु अपने आपको नौकर समझने लगे हैं। शिक्षण केन्द्र विद्यार्थियो के ऐसे जमघट वन गये हैं, जहाँ वे कुछ समय के लिए आते है, साथी-दोस्तो से दो-चार गप-शप कर लेते है, रजिस्टर मे उपस्थिति लिखवा देते है, मन हुआ तो किसी अध्यापक का थोडा-सा भाषण सुन लेते है, नही तो कितावे वन्द करके इधर-उधर मटरगश्ती करने चले जाते हैं।"

आज के विद्यालय का यह कच्चा चिट्ठा है। समाज और राष्ट्र का यह परम कर्त्तव्य है कि वे उपाध्यायजी की इस पीडा को पहचाने और इसमे सुधार लाने का भरसक प्रयत्न करे।

उपदेशक और दीपक

रातभर जलने के वाद प्रात काल वुझते हुए दीपक ने दीर्घ निश्वास छोडकर आह भरी—"रातभर प्रकाश देकर भी मैं अपने नीचे के अन्धकार को नही मिटा सका। लगता है मेरा सारा श्रम निरर्थक ही गया।"

तव तक दीपक के पास ध्यानमग्न उपदेशक ने वडी पीडा के साथ कराह भरी—"जीवनभर दूसरो को उपदेश देकर भी मैं अपने मन को नही समझा सका। यह मेरे जीवन की कितनी बडी असफलता है।"

थोडी देर वाद तेल खत्म होते ही दीपक की वाती बुझ गयी और उपदेशक को प्रगाढ-निद्रा ने अपने अक मे समेट लिया।



५

आत्मा की आँखें : ज्ञान और विवेक

- [ ] पानी और विचार
- [ ] कोल्हू का बैल
- [ ] कितनी चिन्ता है ?
- [ ] कुतुबनुमा की सुई
- [ ] ज्ञान की गरिमा
- [ ] पहले दृष्टि फिर सृष्टि
- [ ] ज्ञान के बीज
- [ ] लगामहीन नर
- [ ] अज्ञान की दशा
- [ ] आत्म-स्वरूप
- [ ] सुविचारो की जरूरत
- [ ] सत्पुरुषो का समागम
- [ ] घर नही, घर का मोह छोडिये
- [ ] सच्चा कलाकार
- [ ] गॉड या डॉग
- [ ] प्रयोगकर्त्ता
- [ ] क्या अपनाना है
- [ ] काँच की आँख
- [ ] विवेक दृष्टि
- [ ] सच्चा जानकार कौन ?
- [ ] अन्धत्व
- [ ] तलवार अभिशाप बन गई
- [ ] नदी का मूल स्रोत

आत्मा की आँखें : ज्ञान और विवेक



ज्ञान

प्रसिद्ध विचारक खलील जिब्रान ने लिखा है कि "जब ज्ञान इतना घमण्डी बन जाये कि वह रो न सके और इतना गम्भीर बन जाये कि हँस न सके और इतना आत्मकेन्द्रित बन जाये कि अपने सिवा किसी की चिंता न करे तो वह ज्ञान-अज्ञान से अधिक खतरनाक होता है।"

यह बात महत्त्वपूर्ण ढग से कही गयी है। कुछ लोग जीवन-पर्यन्त ज्ञान का आडम्बर लिए घूमते हैं। ज्ञान कोई पर्वत की शिला तो नही है कि जिसे लादकर घूमते रहे, वह तो एक प्रकाश है जो कभी मन्द नही होता। मिथ्यात्व के आवरण को वह उसी प्रकार छिन्न-भिन्न कर देता है, जिस प्रकार सूर्योदय का प्रकाश अन्धकार को।

आत्मबोध

कहा जाता है कि दृष्टि बदलने से सृष्टि बदलती है। नारी की कञ्चन-काया के प्रति आकर्षित होकर अज्ञानी व्यक्ति अन्धा हो जाता है। किन्तु जब ज्ञान की प्रखर रोशनी उसके आसक्त हृदय पर पडती है तब वह उस नारी को मिट्टी के पुतले की तरह नश्वर समझकर उससे दूर भागता है। यदि ज्ञान और विवेक का सहारा उसे न मिले तो वह मृग-मरीचिका की तरह छलना मे पडा रहता है। अत आत्मबोध अथवा आत्मज्ञान के बिना मनुष्य का अनासक्त होना असभव है।

संस्कार

आज का मानव सस्कारविहीन होता जा रहा है। उसे अपने लक्ष्य

का भी ज्ञान नही है। वह अंधेरे मे भटक रहा है। बाल्यावस्था से ही जो कुसस्कार उसके पीछे लग जाते हैं, वे जीवन के आखिरी छोर तक पीछा नही छोडते। मैं सोचता हूँ कि गलत सस्कार ही क्यो डाले जायँ ? किसान एक ही खेत मे गन्ने और अफीम की खेती करता है किन्तु दोनो के गुण अलग-अलग हैं। जमीन, जल और किसान एक ही होने पर भी बीज मे अतर होने के कारण उसके विभिन्न रूप हमारे समक्ष उभर कर आते है। कहावत है कि 'बोया पेड बबूल का आम कहाँ से होय।' गलत बीजो का वपन करना ही गलत है। बाल्यावस्था से जैसे सस्कार डालेगे, फल भी वैसा ही पायेगे। गलत सस्कारो की छाया मे रहकर जीवन नष्ट नही करना चाहिए।

विवेक

अज्ञानदशा से प्रेरित होकर प्राणी क्या-क्या नही कर डालते ? बन्दर के हाथ मे तेज छुरी देने पर किसका भला हुआ है ? आप एक बच्चे के हाथ मे दियासलाई देकर सुख की नीद सोना चाहते है ? अगर बच्चे को दियासलाई का सही उपयोग नही मालूम है तो वह अपने घर मे ही आग लगा देगा और तब आप चिल्लाते हुए भागेगे। इसी प्रकार मनुष्य के पास जो धन-वैभव-बल आदि वस्तुएँ हैं उनका सदुपयोग होना चाहिए लेकिन यह सदुपयोग बतायेगा कौन ? यह तो विवेक-बुद्धि के द्वारा ही जाना जा सकता है, अन्यथा आप इन वस्तुओ से स्व और पर का विनाश कर डालेगे। अतः विवेक की शरण प्राप्त करते हुए जीवन को सही मार्ग पर लगाना चाहिए।

योग्यता

स्वामी विवेकानन्द का कहना था कि 'मनुष्य की योग्यता का अनुमान उसकी गलतियो से मत लगाओ।'

हम गलती भी करते है और अपने को बडा योग्य समझते है। यही तो दुर्भाग्य है। अपनी योग्यता के नशे मे हम इतने अयोग्य काम कर लेते है कि कुछ मत पूछिये। जरा विचार कर देखिये कि क्या समुद्र के मथन से उसमे मक्खन का एक टुकडा भी निकलेगा ? सारे रेगिस्तान की रेत को पेरने पर क्या तेल की एक भी बूंद आपको मिलेगी ? अगर बालू से तेल निकलने लगे तो देश की तमाम समस्याओ का समाधान हो जाये किन्तु

ऐसा कभी होता नही। आप दही का मथन करे और उसमे से नवनीत प्राप्त करे। तिल को पेरिये और तेल के डिब्बे भर लीजिए। जिस वस्तु की जैसी योग्यता होती है उससे वैसे ही परिणाम की कल्पना हमे करनी चाहिए, अन्यथा सारा श्रम व्यर्थ सिद्ध होगा।

आत्म-दर्शन

रामकृष्ण परमहस का विश्वास था कि मैले शीशे मे सूर्य की किरणो का प्रतिविम्ब नही पडता। उसी प्रकार जिनका अन्त करण मलिन और अपवित्र है उनके हृदय मे ईश्वर के प्रकाश का प्रतिबिम्ब नही पड सकता।

यह अनुभवसिद्ध है कि बहते हुए जल मे अपना प्रतिविम्ब स्पष्ट नही दिखाई देता, परछाई भी जल की लहरो पर नृत्य करती रहती है, लेकिन वह स्थिर नही हो पाती। अगर मन चचल और अस्थिर है तो भला हम अपने को कैसे देख सकते है? जरा जल को स्थिर होने दीजिये और तव आप अपने प्रतिविम्व को जी भर कर निहारिये। इसी प्रकार अपनी आत्मा को भी सकल्प-विकल्पो की चचलता से मुक्त रखिये। वह जव उप-राम होकर पूर्ण स्थिर हो जायेगी तभी उसमे निज स्वरूप की झाँकी प्रति-विबित होगी, चूँकि आत्मा की अस्थिर दशा मे आत्मदर्शन कदापि सभव नही है।

गुण-मधु का संचय

मैंने देखा मधुमक्षिका कितनी एकाग्रता से विभिन्न फल-फूलो का रस सचित करती है। विभिन्न फलो की डालो पर अपना सगीत छेडती हुई वह अपने कार्य को दत्तचित्त होकर सम्पन्न करती है। कभी-कभी कँटीली झाडियो और विषैले वृक्षो पर भी उसे जाना पडता है। लेकिन उसके मधु में तो मिठास ही मिठास है।

उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष इस ससार मे बुराइयो को त्यागकर केवल गुणो का ही सचय करता है। इस कार्य मे कभी-कभी अवगुणी व्यक्तियो से भी सपर्क हो जाता है, किन्तु ज्ञानी के ऊपर इसका कोई प्रभाव नही पडता। गुण-रूपी मधु का सचय करना कठिन तो है किन्तु एकाग्रता के द्वारा उसे प्राप्त किया जा सकता है।

विचारो की भव्यता

कभी आपने पहाड की ऊँचाई पर चढकर प्राकृतिक सौन्दर्य को मन

भर कर निहारा है ? आप जितना ही ऊपर चढेगे उतना ही रमणीय दृश्य आपको देखने को मिलेगा। सरिता का वास्तविक आनन्द तो मझधार मे डुबकी लगाकर ही पाया जा सकता है, किनारे पर बैठकर लहरे गिनने से नही। यही बात मानव जीवन मे भी लागू होती है। आप विचारो की मीनार पर जितना ही ऊँचे चढते जायेगे आपको जीवन उतना ही भव्य और दिव्य गुणो से सपन्न प्रतीत होने लगेगा। अविचारो के कीचड के ढेर पर बैठकर ससार की भव्यता का दर्शन पाना असभव है।

अज्ञान

गधे की पीठ पर महान् से महान् ग्रन्थो का ढेर आप रख देवे तो इससे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? गधे के लिए तो वे सारे ग्रन्थ बोझ स्वरूप ही हैं। उसे क्या पता कि इन ग्रन्थो मे जीवन का सारा रहस्य छिपा हुआ है।

इसी तरह छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े गीता और भागवत जैसे ग्रन्थो को खाद्य पदार्थ समझकर साफ कर जाते है। लेकिन क्या इससे उन्हे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है ? उन्हे क्या पता कि इन ग्रन्थो मे महान् आत्माओं के सदेश छिपे हुए हैं। उनके लिए तो ये सारी पुस्तके खाद्य सामग्री मात्र है। उसी प्रकार अज्ञान-अंधकार मे डूबे प्राणी को अपने निकट की महानता भी नही दिखलाई पडती। वह महान् आत्माओ के सम्पर्क मे आकर भी अछूता रह जाता है। अत. मन के अन्धकार को मिटाने से ही ज्ञान-ज्योति उद्भासित हो सकती है।

ज्ञान और क्रिया

महाकवि जयशकर प्रसाद ने अपनी सुप्रसिद्ध कृति कामायनी में लिखा है :—

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यो पूरी हो मन की।
एक-दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।

ज्ञान और क्रिया का अलगाव जीवन की बुनियादी असफलता है। रेलगाड़ी को चलने के लिए जैसे दो पटरियो की आवश्यकता होती है, वैसे ही मानव-जीवन की गाड़ी के लिए भी ज्ञान और क्रिया रूपी दो पटरियों

की जरूरत है। दोनो मे से यदि एक भी पटरी खराव और निष्क्रिय है तो गाडी कभी सुचारु रूप से नही चल सकेगी।

ज्ञान का अजीर्ण

ज्यादा भोजन करने से शरीर और मन दोनो विकारग्रस्त होते है। शरीर मे अजीर्ण हो जाता है और पाचन-क्रिया के विगड जाने का भय वना रहता है। इसीलिए कहा जाता है कि खा लेने मे बहादुरी नही है वल्कि उसको भली-भाँति पचा लेने मे वहादुरी है। आज की सारी मुसीबतो की जड यही तो है कि हम ज्ञान के अजीर्ण से परेशान है। जहाँ देखिये वही ज्ञान वँट रहा है। किन्तु ज्ञान की गठरी लिये घूमने से पल्ले कुछ भी नही पडने वाला है। यदि ज्ञान के अजीर्ण से वचना है तो उसे आचरण मे उतारना चाहिए, नही तो सारा ज्ञान व्यर्थ हो जायगा।

ज्ञान की बैटरी

एक सज्जन के पास एक वडी सुन्दर टॉर्च थी। वे जब चाहते उसे जलाकर अन्धेरे मे प्रकाश फैला देते। इस प्रकार उन्होने उस टॉर्च का वहुत दिनो तक उपयोग किया। लेकिन एक दिन अकस्मात् उस टार्च का जलना वन्द हो गया। उन्होने आव देखा न ताव उसे पत्थर पर पटक दिया। परिणामस्वरूप वह सुन्दर टार्च पत्थर से टकराकर चूर-चूर हो गई। एक जानकार आदमी ने जब यह कृत्य देखा तो उसे बड़ा दु ख हुआ। उसने उस सज्जन को पास बुलाकर समझाया कि टार्च के न जलने का कारण बैटरी (सेल) का खत्म हो जाना है न कि टार्च मे कोई यान्त्रिक गडबडी है। बहुत से लोग अज्ञानता के कारण इस बात को नही समझ पाते कि आत्मा मे जव तक ज्ञान की बैटरी और श्रद्धा का बल्व कार्य करेगा तभी तक वह अन्धकार मे प्रकाश देगी, नही तो वह अपना कार्य बन्द कर देगी। अत आत्मा मे ज्ञान का सेल होना बहुत जरूरी है। प्रमादवश लोग आत्मा को ही विकार-ग्रसित समझ लेते हैं जवकि गडवडी कही दूसरी जगह होती है। हृदय की बैटरी मे जिनेश्वर देव की आज्ञा का वल्व और श्रद्धा रूपी सेल लगा लेने पर अन्धकार से आप स्वयमेव मुक्त हो जायेगे।

विवेक-दृष्टि

रवीन्द्रनाथ टैगोर का यह कथन कितना सुन्दर है कि "तुम गलतियो

को रोकने के लिए विवेक के दरवाजे वन्द कर दोगे तो सत्य भी वाहर ही रह जायेगा ।"

इस वात को प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन मे चरितार्थ होते देख सकता है । एक व्यक्ति केले के छिलके को वेकार ममझकर रास्ते मे फेंक देता है और असावधानी से चलता हुआ अन्य आदमी भूल से उस पर फिसल कर गिर पडता है । वह वेचारा रास्ते चलते लोगो के उपहास का पात्र तो वनता ही है साथ ही शरीर पर चोट उसे व्याज रूप मे भोगनी पडती है । यदि उस केले के छिलके को सडक पर न फेंक कर गाय को खिलादे तो उसका सदुपयोग हो सकता है । लेकिन इसके लिए विवेक-दृष्टि की आवश्यकता होती है । उसके अभाव मे व्यक्ति गलतियाँ करता रहता है और परिणाम से दूसरों को अनावश्यक कष्ट भोगने पडते है ।

अनुभव का ज्ञान

लोग कहते है कि 'किताबी कीडा' वनकर क्या करोगे ? यह वात वहुत ध्यान देने योग्य है । कवीरदास ने वहुत पहले यह वात कही थी कि 'पोथी पढि पढि जग मुआ, पण्डित भया न कोय' । पुस्तकीय ज्ञान पुस्तको मे वन्द रहता है, वह अन्त करण मे तभी प्रवेश पा सकता है जवकि व्यक्ति अनुभव का माध्यम अपनाये । एक उदाहरण के द्वारा इसे समझा जाये तो कहा जा सकता है कि पुस्तक का ज्ञान वह टॉर्च है जिसे जव चाहे तव जला कर प्रकाश पा सकते है किन्तु अनुभव का ज्ञान आँख की रोशनी की तरह है जो हमे निरन्तर प्रकाश देता रहता है । अत ज्ञान को अनुभव से प्राप्त करना वहुत वडी विशेषता है, अन्यथा दुनिया का सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान तो पुस्तको मे भरा पडा ही है ।

उल्लू और अज्ञानी

ऐसी मान्यता है कि उल्लू को रात्रि मे ही दिखाई पड़ता है । अत: उल्लू के लिए रात्रि ही दिन है । उस अन्धकार को वह प्रकाश-पुज मानता है । इसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति को भी वास्तविकता का ज्ञान नही होता । उसे माया-मोह ग्राह्य लगते हैं और वह उसी मे लिप्त रहता है । तव ऐसी स्थिति मे उसमे और उल्लू मे अन्तर ही क्या है ?

तत्त्व-मोती

किसी ने कहा है—

जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।
मैं वौरी वूडन डरी रही किनारे बैठ॥

जो मनुष्य सागर की विराट लहरो के थपेडो से भयभीत नही होता, और लहरो की चुनौती स्वीकार करता हुआ सागर के वीच मे मुस्कराता हुआ पहुँच जाता है, वह सफल गोताखोर होता है। मूल्यवान मोती भी उसी को प्राप्त होते है। लेकिन भय के कारण जो सागर के जल मे हाथ भी नही डालना चाहता है उसे तो किनारे के घोघे और सीपो से ही सन्तोष करना पडता है। यही हाल विचार-सागर का भी है। जो ज्ञानी पुरुष इस विचार-सागर की गहराई तक पहुँच जाता है उसे ही विचारो के सुन्दर मोती प्राप्त होते हैं किन्तु जो सासारिक वन्धनो से आवेष्टित है, ज्ञान-सागर की वाह्य सीमा का ही स्पर्श कर रहा है, उसे सामान्य विचारो से ही सतोप करना पडता है। अत विचार-सागर मे गोते लगाकर ही तत्त्व-मुक्ता से अपने मानस को समृद्ध वनाया जा सकता है।

पानी और विचार

मानव को स्वच्छता अधिक पसन्द है। इसलिए वह हर वस्तु मे स्वच्छता के सदर्शन करना चाहता है। भोजन, वस्त्र, मकान आदि सभी मे स्वच्छता को महत्त्व देता है। पानी भी पीते समय छानकर पीता है क्योकि उसकी गन्दगी कही उसके पेट मे न चली जाये और उसका कुप्रभाव उसके स्वास्थ्य पर न पडे, इसके लिए वह कितनी सतर्कता रखता है। किन्तु विचारो का जल पीते समय वह इतनी सजगता क्यो नही वरतता ? कौन से विचार ग्रहण करना और कौन से नही ? अगर इतना भी ध्यान नही रख सकता तो क्या यह उसके लिए शोभनीय है ? मेरी दृष्टि से तो यह उसकी अज्ञानता है। विचारो को ग्रहण करते समय विवेक-दृष्टि को उपयोग मे लाना चाहिए, अन्यथा गन्दे विचार उसके मानसिक स्वास्थ्य को विकृत किये विना नही रहेगे।

कोल्हू का वैल

तेली के कोल्हू से वँधा हुआ वैल आँख पर पट्टी वाँधकर लगातार

एक ही धुरी पर चक्कर लगाता रहता है। वह समझता है कि उसने बहुत बडी यात्रा पूरी कर डाली। लेकिन कोई उसे आँख की पट्टी खोलकर यह दिखाये कि वह कितनी सीमित जगह मे चक्कर काटता रहा है तो उसे कितना आश्चर्य होगा ? यही हालत ससार के जड-बन्धनो से ग्रस्त मनुष्य की होती है। वह समझता है कि उसने बडे-बडे किले फतह कर लिये। घर-परिवार को ठीक से चलाया। बाल-बच्चो की हिफाजत की। लेकिन प्रश्न यह है कि उसने अपने लिए क्या किया ? वह तो ससार-सागर मे गोते ही लगाता रहा है। अगर ज्ञान की आँख खोलकर देखे तो उसे केवल पश्चाताप ही मिलेगा। इसलिए माया-मोह के बन्धनो से मुक्त होकर जरा अपनी ओर भी ध्यान देना चाहिये नही तो कोल्हू के बैल और व्यक्ति मे अन्तर ही क्या रहेगा ?

कितनी चिन्ता है ?

मुक्त-गगन मे उडने वाले पक्षियो को देखिये। वे कितनी प्रसन्नता से वायु-तरङ्गों पर थिरकते रहते है। यह थिरकन इसलिए है कि उनके माता-पिता ने बहुत कच्ची उम्र मे उन्हें स्वतन्त्र-विचरण का अवसर देकर स्वय को मुक्त कर लिया है। यही बात पशु-जगत की भी है। पशु अपने नौनिहालो को बहुत जल्दी मुक्त कर स्वतन्त्र हो जाता है। लेकिन मानव-स्वभाव इसके ठीक विपरीत है। यहाँ तो हर आदमी अपने बच्चे के लिए जीवनभर सोचता है, चिन्ता करता है। ऐसा लगता है कि उसे अपने बारे मे तो कुछ सोचना ही नही है, बस अपनी पत्नी-बच्चे तथा अन्य सम्बन्धियो की चिन्ता लिए वह अपने जीवन की साँसे पूरी करता रहता है। सच तो यह है कि मनुष्य को व्यर्थ की चिन्ताएँ छोडकर अपने उत्थान के बारे मे चिन्तन करना चाहिए। अन्यथा सारा जीवन दूसरो की चिन्ता मे व्यतीत हो जायगा और वह अपने बारे मे कुछ भी नही सोच सकेगा।

कुतुबनुमा की सुई

कुतुबनुमा की सुई निरन्तर एक ही दिशा की ओर उन्मुख रहती है। कितना भी उसे हिलाइये या उलट-पुलट कीजिये फिर भी वह हमेशा उत्तर दिशा की ओर ही सकेत करती रहती है। इसी प्रकार साधक को अपनी साधना मे एकाग्रता की आवश्यकता है। दुनिया के तमाम प्रलोभनो को

छोडकर आतम-साधना मे लग जाना चाहिए और अपनी बुद्धि की सुई को जिनेश्वर देव की ओर उन्मुख रखना चाहिए। इससे स्वय का कल्याण तो होगा ही साथ ही समाज भी सुख और शान्ति का अनुभव कर सकेगा।

ज्ञान की गरिमा

उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा गया है कि 'नाणेण विना न हुति चरण गुणा'—अर्थात् ज्ञान के विना चारित्र-सयम नही होता। यह वात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अन्धे व्यक्ति का मार्ग-दर्शक अन्धा नही हो सकता। यह ज्ञान भी दो प्रकार का होता है—प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञान। अवधिज्ञान, मन-पर्यवज्ञान और केवलज्ञान—ये तीन प्रत्यक्ष ज्ञान माने जाते है और मति-ज्ञान तथा श्रुतज्ञान परोक्ष-ज्ञान के अन्तर्गत समाहित हैं। जीवन की सम्पूर्णता के लिए दोनो ज्ञान परमावश्यक हैं। ज्ञान का प्रकाश करोडो सूर्यो के प्रकाश से भी वढकर है। मोह और मिथ्या का अन्धकार मन से तभी भागता है जव उसमे ज्ञान-सूर्य की किरणे चमकती हैं। वस्तुत ज्ञान के द्वारा ही जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है, अज्ञान से नही।

पहले दृष्टि फिर सृष्टि

कहते हैं दृष्टि वदलने से सृष्टि वदलती है। यह वात सोलह आने सत्य है। दृष्टि का मतलव अन्तर्दृष्टि है। पहले भीतर की दृष्टि वदले तव सारा नजारा वदलता नजर आयेगा। सूरदास को लोग जन्माध कहते हैं। लेकिन उनकी अन्तर्दृष्टि स्पष्ट थी, तभी तो उन्होने कृष्ण की लीलाओ को सर्वत्र प्रतिफलित होते देखा। आत्मवोध को जाग्रत करना ही सवसे वडी तपस्या है। आत्मवोध को जाग्रत करने मे ज्ञान की सीढी तो चढनी ही पडेगी। उपनिषदो मे यही वात दूसरे ढग से कही गई है—

उत्तिष्ठा ! जाग्रत ! प्राप्यवरान्नि वोधत.।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्या दुर्गंपथस्तत्त्वकवयोवदन्ति ॥

अर्थात् उठो ! जागो ! और श्रेष्ठजनो के पास जाकर आत्मज्ञान प्राप्त करो। जैसे छुरे की धार तीखी होने के कारण उसका स्पर्श नही किया जा सकता, वैसे ही आत्मज्ञान के मार्ग को वुद्धिमान व्यक्ति दुर्गम वतलाते है। अगर हम दुर्गम चढाई समझकर मन मारकर वैठ गये तो इस पथ पर पैर कौन आगे वढायेगा ? जीवन के अनुभव तो यही वतलाते है कि

जहाँ चाह है, वही राह है। सवाल आत्मबोध और अन्तर्दृष्टि का है। अतः इसकी शक्ति को हमे आगे बढना चाहिए।

ज्ञान के बीज

किसान एक ही खेत मे अफीम तथा गन्ने की खेती करता है। जैसा बीज डालता है, वैसा ही फल उसे मिलता है। क्या कारण है कि किसान, खेत, जल तथा खाद एक होने के बावजूद खेत मे पैदावार अलग-अलग किस्म की होती है ? कारण तो स्पष्ट है, बीज के अनुकूल ही फल होता है। जैसा पेड लगायेगे वैसा ही फल पायेगे। अत मन के खेत मे ज्ञान के बीज डालना श्रेयस्कर है, अज्ञान के नही, वरना हमारा सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा। अज्ञान का बीज मन मे धीरे-धीरे फलेगा-फूलेगा और एक दिन ऐसी स्थिति आ जायेगी जब हृदय पर अज्ञानता की प्रगाढ छाया उतर आयेगी। प्रारम्भ से ही यदि हम मन के विकारो से मुक्त रहकर ज्ञान की दिशा मे अग्रसर हो तो आगे का जीवन भी सफल होगा।

लगामहीन नर

बालक के हाथ मे दियासलाई सौपकर कोई भी सुख की नीद नही सो सकता। क्या पता वह कब घर-सपत्ति को आग लगा दे ? क्या करणीय है और क्या अकरणीय है, इसे भला वह कहाँ जानता है ? उसके लिए तो आग लगाना एक कौतूहल है, किन्तु ससार के लिए तो आग लगाना विनाश है। सत और फकीरो के स्वभाव को लेकर कहा जाता है कि 'आई मौज फकीर की दिया झोपडा फूंक।' पता नही बच्चे को कब मौज आये और कब वह अपना ही झोपडा फूंक दे। यह सारा खतरा अज्ञानता के कारण है। अगर मन में ज्ञान की ज्योति जल रही है तो इस प्रकार के खतरे का सामना किया जा सकता है। विवेकवान् पुरुष बड़े सयम से किसी निर्णय पर पहुँचते हैं। किन्तु विवेक के अभाव मे अनर्थ सम्भव है। धन-दौलत तथा शारीरिक बल रहते हुए भी यदि विवेक का अभाव है तो उस व्यक्ति के कल्याण की बात नही सोची जा सकती। इसलिए कहा गया है कि—निरकुश हाथी और लगामविहीन घोडे की तरह ज्ञान की लगाम से विरत मनुष्य स्वच्छन्द बन जाता है और विनाश की ओर उन्मुख होता है।

अज्ञानी की दशा

ऋग्वेद मे कहा गया है—"पश्यदक्षणवान् नविचेद् अन्ध"—जिसके

आँख है, जो ज्ञानी है, वही देखता है, अन्धा तथा अज्ञानी देखने मे असमर्थ होता है। विचार करने पर यह बात इस ससार पर पूरी तरह सत्य उतरती है। उल्लू और चर्मचिडी को अन्धकार भी प्रकाश-पुज जान पडता है और दिन के प्रकाश को वे अन्धकार का समूह समझते हैं। उसी प्रकार जिनके ज्ञान-नेत्र वन्द है, उन्हे सासारिक विषयो मे ही आनन्द की प्राप्ति होती है। किन्तु जो इस ससार की क्षणभगुरता से परिचित है, जो मायावी दुनिया के दाँव-पेच से सजग हैं, उन्हे तो इन सासारिक विषयों से जरा भी आसक्ति नही होती। ससार के भोग-विलास मे वास्तविक आनन्द की खोज अज्ञानता की सबसे वडी पहचान है। जैसे रेगिस्तान मे जलती वालू के भीतर ठण्डे जल की प्राप्ति असम्भव है, वैसे ही अज्ञानी के मन को वास्तविक शान्ति की प्राप्ति भी सम्भव नही है।

आत्म-स्वरूप

अजस्र धारा के प्रवाहित नीर मे कही स्पष्ट प्रतिविम्व झलकता है ? जव तक जल अस्थिर एव चचल है, तव तक मुँह का प्रतिविम्व कैसे दिखाई देगा ? पानी के स्थिर होने पर एव उसके मल के नीचे वैठने पर ही मुखाकृति स्पष्ट हो सकती है । मन की चचलता ज्ञान के द्वारा ही समाप्त हो सकती है। चचलता तो विकार की जननी है। मन के स्थिर होने पर आत्म-वोध के सोपान पर चढने का सुअवसर मिलता है। अत· आत्मा जव सकल्प-विकल्प के झझावात से उपराम हो जायेगी और स्थिरता की ओर अग्रसर होगी तभी उसमे अपने स्वरूप को जानने की योग्यता आयेगी।

सुविचारों की जरूरत

ससार मे जीवन-ज्योति प्रज्वलित रखने के लिए मनुष्य को भोजन, आवास तथा वस्त्र की आवश्यकता रहती है। प्रकृति का विधान भली-भाँति चले इसके लिए ससार को सूर्य के प्रकाश की, चन्द्रमा की शीतल किरणो की तथा मेघ के हृदय मे जन्म लेने वाली वर्षा की जरूरत पडती है। ससार मे जीवन-पद्धति सुचारु रूप से चल सके तथा आदर्श गृहस्थ-जीवन का निर्माण हो सके, इसके लिए महापुरुषों के पावन-विचारो की आवश्यकता होती है। राम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध जैसे विशिष्ट महान् आत्माओ की पवित्र वाणी मे वह शक्ति रही हुई है जिसके द्वारा समस्त ससार को वदला जा सकता है।

सत्पुरुष का समागम

द्विवेदी-युग के एक बड़े प्रसिद्ध कवि 'श्री गयाप्रसाद शुक्ल सनेही' ने दीपक की आत्म-कथा लिखते हुए कहा है—"जलना हो जिसे वो जले मुझ-सा, बुझना हो जिसे वो बुझ जाये मुझ-सा।" मैं भी सोचता हूँ कि जलने और बुझने की जो सबसे आदर्श स्थिति है वह दीपक की ही है। लेकिन दीपक मे आप कितना ही तेल भर दे, उसका जब तक अग्नि से सम्पर्क या साक्षात्कार नही होगा तब तक वह प्रज्वलित नही हो सकता। उसी प्रकार हमारे हृदय मे श्रद्धा रूपी तेल के रहते हुए भी ज्ञान-ज्योति के अभाव मे मुक्ति सम्भव नही है। यह ज्ञान-ज्योति हम सत्पुरुषो के समागम मे ही प्राप्त कर सकते है।

घर नहीं, घर का मोह छोडिये

जब तेली को कोल्हू से तेल पेरना होता है तो बैल की आँखो पर पट्टी बाँध देता है ताकि उसे चक्कर का आभास न हो। बैल बेचारा अपनी एक परिधि पर मूक-भाव से स्वामी के आदेशानुसार चक्कर काटता रहता है। यही हाल सासारिक विषयो मे लिप्त प्राणी का है। वह घर-गृहस्थी के प्रपच मे इतना उलझ जाता है कि उसके बाहर सोचना ही नही चाहता। जबकि आवश्यकता इस बात की है कि घर की चौहद्दी से ऊँचे उठकर उसके बाहर देखे। अन्यथा वह तेली के बैल की तरह एक सीमित दायरे मे चक्कर लगाता ही रह जायगा। मुझे इस सन्दर्भ मे श्रद्धेय उपाध्याय अमर मुनिजी की विचारपूर्ण रचना 'चिन्तन की मनोभूमि' का एक प्रसग स्मरण आ रहा है। एक बार मुनिजी विहार-काल मे एक आश्रम मे ठहरे हुए थे। एक गृहस्थ आये और गीता पढने लगे। इतने मे एक सन्यासी आया और कहने लगा—"पढी गीता तो घर काहे को कीता ?" मुनिजी ने यह बात सुनी तो सन्यासी से पूछा कि—"क्या गीता और घर मे कुछ परस्पर वैर है ? यदि वास्तव मे वैर है तो गीता के उपदेशक श्रीकृष्ण का भी गीता से वैर होना चाहिए और तब तो आप जैसे दो-चार साधुओ के अतिरिक्त अन्य किसी की भी गीता के उपदेश से मुक्ति नही होगी।" सन्यासी ने प्रत्युत्तर मे कहा—"हमने तो घर छोड दिया है।" मुनिजी ने कहा—"घर क्या छोडा है, एक घोसला छोड़ा तो दूसरे कई घोसले बना लिये। कही मन्दिर, कही मठ और कही आश्रम खड़े हो गये। फिर घर कहाँ छूटा ?" सन्यासी ने कहा—'हमने इन

सबका मोह छोड रखा है।" मुनिश्री ने बतलाया—"हाँ, यह बात कहिये। असली बात मोह छोड़ने की है। घर मे रहकर भी यदि कोई घर का मोह छोड सकता है तो बेडा पार है। घर बन्धन नही है, घर का मोह बन्धन है।"

सच्चा कलाकार

कलाकार का महत्त्व इस बात मे कि वह मिट्टी को मूर्त्ति का रूप प्रदान करे। साधारण को असाधारण मे बदल दे—क्योकि कलाकार अपनी सृष्टि का प्रजापति होता है। एक मूर्त्तिकार अनगढ पत्थर को हथौड़े तथा छेनी के माध्यम से एक सुन्दर मूर्त्ति का आकार दे देता है। इसी प्रकार महापुरुष भी समाज के अज्ञानी मनुष्यो तथा साधारण जीवो का मार्ग-दर्शन करते हुए नव-निर्माण के अक्षय प्रेरणा-स्रोत बन जाते हैं। अपने को बनाना आसान है, किन्तु दूसरे को निर्मित करना कठिन है। सच्चा कलाकार अथवा महापुरुष तो वही है जो अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर मानव-समाज को एक तेजस्वी व्यक्तित्व दे, और बुराइयो से सघर्ष करते हुए नयी जीवन-दृष्टि की स्थापना करे।

गॉड या डॉग

भाषा का छल बहुत मशहूर है। अँग्रेजी तथा विश्व की अनेक भाषाओ मे भाषागत चमत्कार के उदाहरण मिलते हैं। अँग्रेजी मे कुत्ते को डॉग (Dog) कहते हैं। लेकिन इसकी वर्तनी (स्पेलिंग) उलट देने से डॉग का गॉड (God) बन जाता है जिसका अर्थ होता है ईश्वर या परमात्मा। जरा सा उलट-फेर होने से अर्थ ही बदल जाता है। मानव चाहे तो अपनी विवेक-बुद्धि से अपने प्रतिकूल आचरणो को परिवर्तित कर सकता है। मनुष्य अपने कुविचारो से कुत्ता बनता है और सुविचारो से परमात्मा। कुत्ता या परमात्मा बनना उसके ही हाथ मे है, वह जो भी चाहे बन सकता है।

प्रयोगकर्त्ता

स्याही की एक बूंद सुन्दर से सुन्दर चित्र को भी गन्दा या भद्दा कर डालती है, किन्तु उस बूंद का सदुपयोग करके हम किसी महापुरुष का निर्मल चरित्र भी अकित कर सकते हैं। अर्थात् एक ही वस्तु के सुन्दर और असुन्दर दोनो पक्ष हमारे सामने आते हैं। हम जिस रूप मे उस वस्तु का प्रयोग करते हैं, वही महत्त्वपूर्ण है। छुरी और काँटे से मनुष्य खाना खाते हैं और

उसी से वे किसी की आँख भी फोड सकते है। विश्व की प्रत्येक वस्तु का प्रयोक्ता मानव है। ससार की महान् प्रयोगशाला मे हम विभिन्न रसायनो का सदुपयोग अथवा दुरुपयोग स्वतन्त्रतापूर्वक करते है। अत· अपनी विवेक-बुद्धि को सन्तुलित करके मनुष्य अपने जीवन को सार्थक वना सकता है।

क्या अपनाना है ?

चाणक्य नीति मे कहा गया है कि —

> अनन्त शास्त्रं वहुला च विद्या, अल्पश्च कालो वहुविघ्नता च।
> यत्सारभूतं तदुपासनीयं हंसो यथा क्षीरमिवाम्वुमध्यात् ॥

तात्पर्य यह है कि ससार मे शास्त्रो का ज्ञान अनन्त है, विद्याएँ अनेक है। लेकिन समय थोडा है और विघ्न-वाधाये अनेक हैं। अत. जैसे हस जलमिश्रित दूध से शुद्ध दूध ग्रहण कर लेता है उसी तरह जो पदार्थ सारभूत लगे उसे तत्काल ग्रहण कर लेना चाहिए। हमे क्या ग्रहण करना और क्या त्यागना है ? इसका विवेक निरन्तर वनाये रखना होगा। सत्य जीवन का सौरभ है, असत्य जीवन की दुर्गन्ध है, क्षमा जीवन की सुगन्ध है और क्रोध जीवन की वदबू है। अत· हमे इनमे से क्या अपनाना है, इसका निर्णय तो हमारी विवेक-वृत्ति ही कर सकती है।

काँच की आँख

एक राजस्थानी कहावत है कि—'आँख कान मे चार आँगल रो फरक'। लेकिन यह चार अंगुल का फर्क भी आकाश-पाताल के जितना अन्तर ला देता है। इसीलिये लोग कहते हैं कि आँखो की देखी पर विश्वास करो, कानो की सुनी पर नही। लेकिन आँख-आँख मे भी भेद होता है। कुछ लोग नेत्रो मे विकार आ जाने पर काँच की आँख लगा लेते हैं। ऊपर से देखने मे तो असली और काँच की आँख मे कोई अन्तर नही दिखाई पडता। किन्तु काँच की आँख चैतन्य-तत्त्व से हीन होने के कारण देखने मे असमर्थ होती है। वह फैशन का कार्य कर सकती है किन्तु देखने का नही। असली आँख होने पर भी कुछ लोग दृष्टिहीन जैसा आचरण कर वैठते है। उचित-अनुचित का विवेक छोडकर जो मनचाहा कार्य करते रहते हैं उनकी आँखो के सम्वन्ध मे क्या कहा जाय ? वे तो असली होते हुए भी काँच की आँख की तरह सच्चाई की प्राप्ति मे असमर्थ हैं।

विवेक-दृष्टि

दशवैकालिक सूत्र मे कहा गया है कि—

से जाणमजाणं वा कट्टु आहम्मियं पयं।
संवरे खिप्पमप्पाणं बीय तं न समायरे॥

अर्थात्—विवेकवान् व्यक्ति जाने-अनजाने मे यदि कोई पाप कर्म कर बैठे तो अपनी आत्मा को शीघ्र ही उससे मोडे और दुवारा वह कार्य न करे। परलोक मे दो ही वस्तुएँ साथ मे चलती है—पाप और पुण्य। वाकी सव पौद्गलिक वस्तुएँ यही रह जाती है। ऐसी स्थिति मे हमे क्या ग्रहण करना चाहिए और क्या त्यागना चाहिए ? इसका विचार करने का नाम ही विवेक है। तथागत बुद्ध से किसी व्यक्ति ने प्रश्न पूछा कि मनुष्य की आत्मा के पवित्र होने के क्या साधन है तव बुद्ध ने बड़े स्पष्ट शब्दो मे कहा—

कम्म विज्जा च धम्मो च सील जीवितमुत्तम।
एतेन मुक्त्वा सिज्झंति न गोत्तेन धनेन वा॥

अर्थात्—कर्म, विद्या, धर्म, शील तथा सदाचार इन्ही से मनुष्य की आत्मा की शुद्धि होती है, धन और गोत्र से नही। अगर ऐसा न होता तो ससार के सभी धनी प्राणी तथा उच्च गोत्र वाले व्यक्तियो की आत्मा शुद्ध हो जाती।

सच्चा जानकार कौन ?

जीवन के लिये तीन शिक्षाये वडी महत्त्वपूर्ण है—कम खाओ, गम खाओ और नम जाओ। जैसे स्वस्थ जीवन के लिए कम खाना उपादेय है, उसी प्रकार सासारिक जीवन मे गम खाने की आदत डालनी चाहिये। लोग कटु वाणी का प्रयोग करे तव भी उनसे टकराने का प्रयत्न छोड देना चाहिये। ज्ञान और विवेक के उपासक विनम्र होते है। अहकार और अभिमान के द्वारा ज्ञान प्राप्त नही कर सकते। वताया जाता है कि रावण जव मृत्युशैया पर अपनी अन्तिम घडियाँ गिन रहा था, तव राम ने अपने अनुज लक्ष्मण को उससे ज्ञान प्राप्त करने के लिये भेजा था। लक्ष्मण वडे भाई की आज्ञा-पालन करने के लिये रावण के सिरहाने जाकर खडे हो गये। रावण ने एक वार आँखे खोलकर लक्ष्मण को देखा पर वोला कुछ

नही। लक्ष्मण निराश होकर वापिस लौट आये। राम ने लक्ष्मण से पूछा कि वन्धु! रावण से क्या-क्या ज्ञान की वाते सीखी हैं? लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि रावण ने तो मुझसे बोलना भी उचित नही समझा, ज्ञान की वातें तो दूर रही। राम को वडा आश्चर्य हुआ। उन्होने लक्ष्मण से सारी स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् कहा—लक्ष्मण तुम रावण के सिरहाने खड़े होकर कैसे ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो? उसके पैताने खड़े होकर प्रार्थना करो कि वह ज्ञान की विभूति तुम्हे दे। लक्ष्मण भाई की आज्ञा शिरोधार्य कर जव दूसरी वार रावण के पैरो की तरफ खड़े हुए और उन्होने विनम्रता से ज्ञान-प्राप्ति करने की अभिलाषा प्रकट की, तव रावण ने उन्हें जीवन मे सफलता प्राप्ति के अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट किये। कहने का तात्पर्य यह है कि ज्ञान-प्राप्ति के पूर्व उचित पात्र वनना परमावश्यक है, अन्यथा ज्ञान-सरिता का अवगाहन कठिन है। जो यह समझता है कि मैं सव कुछ जानता हूँ, वह क्या सीखेगा? सव कुछ जानने का अहकार तो अज्ञान का परिचायक है।

अन्धत्व

मानव-मन की यह कितनी वडी दुर्बलता है कि वह दूसरे को दु खी देखकर सुख का अनुभव करता है। इस भावना मे मानव का क्षुद्र स्वार्थ रहा हुआ है। जीवन मे इसके कई उदाहरण पाये जा सकते है। श्मशान मे लकड़ी वेचने वाले तथा कब्रिस्तान मे कब्र खोदने वाले जव किसी शव को आते देखते हैं तो बड़े पुलकित होते है क्योकि इससे उनका रोजगार अथवा धन्धा चलता है। वे तो मन से यही चाहते है कि अधिक से अधिक शव आये ताकि उन्हे ज्यादा से ज्यादा पैसे मिले। लेकिन इससे वडी मूर्खता उनकी और क्या होगी? वे यह नही जानते कि एक दिन उनकी भी यही स्थिति होने वाली है। क्या उस दिन उनके भाई-वन्धु भी उतने ही आनन्द का अनुभव करेंगे? इस वात को कवीर ने एक वड़े सुन्दर रूपक के द्वारा स्पष्ट किया है—

माटी कहै कुम्हार से तू क्यो रौंदे मोहि।
एक दिन ऐसा होयगा मैं रौंदूंगी तोहि॥

जो वात कवीर माटी और कुम्हार के माध्यम से कहना चाहते है वह यही है कि मृत्यु का विधान शाश्वत है। हम थोड़े से लाभ के कारण

हीन-स्वार्थो की उपासना करने लगते है और अपनी मूल वात को भूल जाते है। यह हमारे अन्धत्व का ही तो प्रतीक है।

तलवार अभिशाप बन गई

किसी भी वस्तु का महत्त्व उसके दुरुपयोग अथवा सदुपयोग पर निर्भर करता है। यदि आप मूल्यवान से मूल्यवान वस्तु का दुरुपयोग करे तो वह घातक सावित हो सकती है। एक राजा ने अपने सुन्दर महल मे अपनी सुरक्षा के लिए एक बडा स्वस्थ और शक्तिशाली वन्दर पाल रखा था। वन्दर वडा स्वामिभक्त था और वह निरन्तर राजा की रक्षा का भरसक प्रयत्न करता था। इसी वीच राजा के एक मित्र ने उपहारस्वरूप राजा को एक सुन्दर तलवार भेंट की। राजा ने प्रसन्न होकर वह तलवार अपने बन्दर को दे दी। राजा की इस उदारता से वन्दर बडा प्रसन्न हुआ तथा अपने कार्य को वह और भी दत्तचित्त होकर निभाने लगा। एक दिन राजा निद्रामग्न था और बन्दर उसकी चौकसी कर रहा था। इतने मे न जाने कहाँ से एक मक्खी उडते हुए आई और राजा की नाक पर बैठ गई। वन्दर ने एक दो वार अपने हाथो को हिलाकर मक्खी को उडा दिया। किन्तु मक्खी बार-वार राजा के शरीर पर आकर बैठने लगी। वन्दर ने सोचा कि इस मक्खी से स्वामी की निद्रा मे विघ्न पड रहा है अत इसको हमेशा के लिए उडा दिया जावे। वस फिर क्या था? वन्दर ने तलवार निकाली और मक्खी पर चला दी। मक्खी तो उड गई किन्तु राजा के शरीर के दो टुकड़े हो गये। महल मे हा-हाकार मच गया। सिपाही, मन्त्री तथा अन्य कर्मचारी दौड़े आये और क्रोधावेग मे वन्दर को भी उसी तलवार से समाप्त कर दिया। एक ही तलवार से राजा और बन्दर दोनो की मृत्यु हो गई।

इस कहानी से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि यदि हम वुद्धि का सदुपयोग न करे तो वडा भयकर परिणाम प्रकट हो सकता है। तलवार दुष्टो से रक्षा करने के लिए वनी है, न कि अपने आत्मीय और स्वजनो के अङ्ग-भङ्ग के लिए। इसीलिए मनुष्य को वुद्धि का वरदान मिला है कि वह मानव-कल्याण के लिए उसका उपयोग करे। अन्यथा वन्दर की तरह वुद्धि का दुरुपयोग करके न तो वह अपना भला कर सकेगा और न समाज का ही।

नदी का मूल स्रोत

किसी भी वस्तु के मूल तक पहुँचने के लिए निरन्तर गवेपणा तथा अनुसन्धान करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए यदि कोई गंगा के उद्गम स्थल को खोजना चाहता है तो उसे हरिद्वार के आगे गगोत्री तक जाना होगा। इसी प्रकार यदि हम जीवनरूपी गङ्गा के मूल स्रोत का पता लगाना चाहें तो हमे आत्मारूपी गगोत्री तक पहुँचना होगा। लेकिन यह बड़े साहस का काम है। डरपोक और कायर तो विघ्न-बाधाओ से भय पाकर मध्य मार्ग से ही पुन. लौट जाता है। लेकिन जिसमे आत्मवल है और साधना का माधुर्य है वह मूलस्रोत तक पहुँच सकता है।

इसी प्रकार ज्ञानरूपी महानदी का उद्गमस्थल खोजने के लिए ज्ञानी व्यक्ति निरन्तर जीवन की जटिल समस्याओ की गुत्थी सुलझाते रहते हैं। जितना वे जीवन के वारे मे जानते है, उतने से ही उन्हे सन्तोप नही होता, वल्कि ज्ञान के अज्ञात क्षेत्रो मे भी वे प्रवेश पाने का साहस करते हैं, और ज्ञान-सागर की अतल गहराई मे जाकर विवेक-मुक्ता की प्राप्ति करते हैं।

☆

६

जीवन के दो पहलू : सुख-दुःख

जीवन के दो पहलू : सुख-दुःख



सुख-दुःख की भाषा

सुख-दु·ख की भाषा कोई अलग-अलग नही होती जिस वस्तु से एक व्यक्ति सुख का अनुभव करता है, वही वस्तु दूसरे के लिए दु खदायी वन सकती है। उदाहरण के लिए, जव परिवार मे खुशी का तार आता है तो आत्मीय-जनो को सुख और हर्ष होता है, दुश्मनो को दु ख होता है और तार-विभाग के कर्मचारी को उसकी कोई अनुभूति नही होती, क्योकि उसका काम तो तार का वितरण ही करना है। अत· एक ही तार तीन व्यक्तियो के लिए अलग-अलग अनुभूति पैदा करता है।

आनन्द और आवश्यकता

आनन्द पदार्थ मे नही होता। एक ही सगीत को हजार वार सुनने पर उसका आनन्द समाप्त हो जाता है। यदि सगीत आनन्ददायक था तो अन्त मे उसका आनन्द कहाँ गया ? आनन्द का सम्वन्ध कभी-कभी आवश्यकता से भी होता है—पहली रोटी भूख लगने पर जितनी स्वादिष्ट व मधुर लगती है, उतनी दूसरी और तीसरी नही। एक तृपित व्यक्ति पहले शर्बत भरे गिलास के लिए मुँह माँगी कीमत दे सकता है, किन्तु दूसरे और तीसरे गिलास के लिए मोल-तोल करने लगता है।

शान्ति किस में ?

गृह-कार्य मे व्यस्त गृहिणी जव अपने हाथ की चूडियो की खनखनाहट से परेशान हो उठती है तो हाथ मे सौभाग्य सूचक एक चूडी को छोड-कर अवशेप सव उतार देती है ताकि काम करने मे सुविधा हो। इससे पता

चलता है कि द्वैत-भावना ही कलह और सघर्ष का मूल कारण है, शान्ति तो अद्वैत मे है। जव तक हममें और प्रभु मे पार्थक्य है तभी तक अशान्ति और अतृप्ति है। जिस दिन दोनो एक हो जायेंगे, उसी दिन वास्तविक आनन्द-सागर मे गोते लगा सकेंगे।

मन की ट्यूनिंग

कभी-कभी रेडियो सगीत प्रसारित हो रहा होता है तभी अचानक उसमे खडखडाहट होने लगती है। किन्तु उसकी ट्यूनिंग ठीक कर लेने पर फिर से मधुर स्वर-लहरी मुखरित होने लगती है। ऐसी ही स्थिति कभी-कभी मानव की भी हो जाती है। मन मे विषय-वासना के कारण खडखडाहट शुरू हो जाती है, तव उसकी शान्ति भग हो जाती है, और वह वेचैन हो उठता है। उस समय यदि वह अपने मन की ट्यूनिंग ठीक कर ले तो उसे आत्मिक शान्ति का स्वर ध्वनित होते सुनाई दे सकता है।

ब्लडप्रेशर

रक्त मे वायु का प्रकोप वढ जाने से ब्लडप्रेशर वढ जाता है, वैसे ही मनुष्य मे चिन्ता, द्विधा एव कलह वढ जाने से मन का ब्लडप्रेशर भी वढ जाता है और वह अशान्ति का अनुभव करने लगता है। भगवान महावीर ने एक दिन वडी गम्भीरता से श्रोताओ से यह प्रश्न पूछा कि दु ख का जन्मदाता कौन है ? इस गम्भीर प्रश्न का उत्तर किसी से देते न वना। सभी चुपचाप भगवान की ओर देखने लगे। भगवान ने स्वय इसका समाधान करते हुए कहा—"जीवेण कडे ? पमाएण" आत्मा प्रमादवश कर्म करती है और उसका फल भोगती है। साराश यह है कि कर्म ही दु ख का मूल कारण है।

सुख और सन्तोष

जैसे बालक अपनी छाया को पकडने के लिए घर भर मे चक्कर काटता रहता है, उसी प्रकार ससार मे व्यक्ति भौतिक सुख के पीछे पागल होकर घूमता रहता है। लेकिन वास्तविक सुख तो मन के सन्तोष मे है। कन्फ्यूसियस ने कहा है कि "आनन्द सन्तोष मे है, कर्त्तव्य पूरा करने मे है। खाने को मेरे पास मोटा अन्न हो, पीने के लिए पानी हो और तकिये के लिए मुडी हुई कुहनी हो तो फिर मुझे और क्या चाहिये ?"

वास्तविकता

जब तक इन्सान के हाथ मे सच्चा हीरा नही आता, तब तक वह ककड-पत्थरो से मन वहलाया करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे ये ककड ही वास्तविक हीरे हैं। लेकिन जब वास्तविक हीरा उसे मिल जाता है तब वह ककड-पत्थर को फेक देता है। इसी प्रकार साधक को जब अपनी आत्मा का वास्तविक परिचय मिल जाता है, तब वह उसी मे रमण करता है और उसका विषय-सुख अपने आप छूट जाता है। अत सुख तो आत्म-स्वरूप को पहचानने मे है।

मन की शान्ति

रात्रि मे यदि कोई व्यक्ति गरम जल को मिट्टी के पात्र मे डाल देवे तो सुवह तक वह अतिशीतल हो जाता है क्योकि शीतल बनाना पात्र का स्वभाव है। उसमे कितना भी गरम जल डाला जाय पर वह कालान्तर मे उसे ठण्डा करके ही रहता है। यही वात मानव-मन की भी है। मन जब स्थिर और सयमित होता है तो उसमे कितना भी वासना का गरम जल डाला जाय, वह उन्हे शीतलता मे परिणत कर ही देगा।

सुख-दुःख

एक कवि ने कहा है—

हर साझ वेदना एक नई, हर भोर सवाल नया देखा।
दो घडी नही आराम कही, मैंने घर-घर जा-जा देखा॥

वात तो बडी सरल लगती है लेकिन है, बडी महत्त्वपूर्ण। गृहस्थ लोग नल से टाकी मे जल एकत्र करने के लिए प्लास्टिक की नली का उपयोग करते हैं जो कभी सीधी दिखाई नही पडती बल्कि वर्तुलाकार होती है। उसमे वहता हुआ जल भी सीधा नही दिखाई देता वल्कि नली के आकार-प्रकार के अनुरूप हो जाता है। लेकिन वास्तविक रूप मे तो जल टेढा-मेढा नही है केवल नली मे पडकर वैसा प्रतीत होता है। सासारिक जीवो के लिए सुख-दु.ख की कल्पना भी ऐसी ही है। यदि मन निर्विकार है तो दु ख भी सुख स्वरूप प्रतीत होता है।

सुख कहाँ ?

कवीरदास ने लिखा है—'कस्तूरी कुडल वसै, मृग ढूँढै वन माँहि।'

रक्षा करने लगा। परिणाम जो होना था, वही हुआ। उसके पास सुख-साधनो का तो अवार लग गया लेकिन सत्य उसके पास से खिसकता गया। आज हालत यह हो गई है कि सत्य तो उसने सव वाँट दिया है लेकिन सुख के साधनो को एकत्र करने मे कुछ कमी नही उठा रखी है।

अति-निर्वाह

इमर्सन ने लिखा है कि सुख और आनद—दो ऐसे इत्र हैं कि इन्हे जितना भी दूसरो पर छिडको, तुम्हे उतनी ही अधिक सुगध आयेगी। लेकिन ऐसा होता कहाँ है ? सासारिक सुखों का ढेर एकत्र करने के वाद भी हमे सतोष कहाँ है ? जीवन-निर्वाह के लिए तो दो रोटी, दो वस्त्र और एक साधारण मकान पर्याप्त होता है। लेकिर अति-निर्वाह के लिए तो कुवेर का सम्पूर्ण खजाना भी अपर्याप्त है। एक विद्वान ने कहा है कि सासारिक सुख तो सुपारी के समान है। सुपारी के पीछे कई लोगो को अपने दाँतो से हाथ धोना पडा है किन्तु आज तक क्या किसी का सुपारी से पेट भरा है ? अत सासारिक सुखो से तृप्ति का तो प्रश्न ही नही उठता।

उत्तम पुरुषो का सत्सङ्ग

श्रीस्थानाङ्गसूत्र मे तीन प्रकार के उत्तम पुरुष कहे हैं—धर्मपुरुष, भोगपुरुष और कर्मपुरुष। इनमे धर्मपुरुष तीर्थङ्कर, भोगपुरुष चक्रवर्त्ती और कर्मपुरुष वासुदेव माने जाते हैं। ऐसे उत्तम पुरुषो के सत्सङ्ग से जीवन धन्य हो जाता है। मेघ की गर्जना सुनकर जैसे मयूर थिरकने लगता है, सरोवर मे कमल खिलने पर जैसे भ्रमर गुजार करने लगते है, आम्र मञ्जरी की मादक सुगन्ध से जैसे कोकिला पञ्चम स्वर से तान सुनाने लगती है, वैसे ही उत्तम पुरुषों के आगमन से चतुर्दिक् प्रसन्नता एव उल्लास का वातावरण निर्मित हो जाता है। सुख और शान्ति की सुरसरि प्रवाहित होने लगती है।

सुख का नवनीत

दही के मथन से ही नवनीत प्राप्त किया जा सकता है, जल के मथन से नही। जल के मथन से तो मात्र फेन की उत्पत्ति हो सकती है। इसी प्रकार जिन्हें शाश्वत-सुखरूपी नवनीत की आवश्यकता होती है वे आत्म-तत्त्व का मथन करते हैं, भौतिक ऐश्वर्यो का नही। किन्तु आज का मानव

भोग-विलास की अवाध सरिता मे प्रवाहित होकर सुख के किनारे खोज कर रहा है जो सर्वथा असभव है।

भक्त और मयूर

मेघ की गर्जना सुनकर जब मयूर की वाणी मुखरित होती है और वह अपने पखो को प्रसारित कर नृत्य करने लगता है उस समय यदि कोई उसे पूछे—"मयूर, तू क्यो इस तरह उन्मत्त होकर कूकता है?" तब मयूर स्वाभाविक रूप से कहेगा "यह मेरा स्वभाव है, मेरे मन की तरङ्ग है किसी के कहने से न मैं नृत्य करता हूँ और न सगीत ही सुनाता हूँ।" भगवान की अमृतमय वाणी को सुनकर भक्तजन का मन-मयूर भी इसी प्रकार थिरकने लगता है। यह भक्त के मन की एक आनन्द-तरङ्ग है। उसे स्वाभाविक हर्ष की अनुभूति होती है।

विषय-सुख

सिन्दूर प्रकरण मे यह वतलाया गया है कि जो व्यक्ति आलस्य और प्रमाद के वश समय नष्ट कर रहा है वह अज्ञानी मनुष्य सोने की थाली में मिट्टी भर रहा है, अमृत से पद-प्रक्षालन कर रहा है, श्रेष्ठ हाथी पर ईंधन ढो रहा है, और चिन्तामणि रत्न के द्वारा काग उडाने का प्रयत्न कर रहा है। मैं इस सूक्ति मे एक वात और जोड देना चाहता हूँ कि वह अज्ञानी व्यक्ति है जो कच्चे सूत से वने पलग पर निर्विघ्न निद्रा लेने का प्रयास करता है। ऐसा व्यक्ति पलग पर बैठते ही धराशायी हुए विना नही रह सकता। अत· इन्द्रियजनित सुखो पर जो व्यक्ति आसक्त होकर परम सुख की कल्पना करे तो यह उसकी अज्ञानता ही सिद्ध होगी।

सुख का मूल

धूप से सतप्त मनुष्य के लिए वृक्ष की छाया अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। घोर अन्धकार मे दीपक का प्रकाश अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। उसी प्रकार जिसने ससार की विपत्तियो को कभी देखा नही है, जिसके शरीर पर ग्रीष्म ऋतु की जलती हुई धूप विखरी ही नही है उसके लिए सुख और छाया का क्या महत्त्व है? हिन्दी के सुकवि सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा है—

जो सोये स्वप्नों के तम मे वे जागेंगे यह सत्य वात।
जो देख चुके जीवन-निशीथ वे देखेंगे जीवन प्रभात॥

कस्तूरी हिरण की नाभि मे रहते हुए भी वह भ्रमवश बाहर घास-पात मे ढूढता रहता है। वह उस गध के मुख्य केन्द्र को नही पहचान पाता। इसी प्रकार वास्तविक सुख तो मानव के अन्तर मे निहित है कि किन्तु भ्रमवश वह सासारिक विषय-वासना मे सुख की खोज कर रहा है। क्या यह उसका पागलपन नही है ?

भ्रान्ति

कुत्ते के सामने यदि दर्पण रख दिया जाये तो वह अपने प्रतिविम्ब को ही अपना परम शत्रु समझकर उस पर आक्रमण कर बैठता है। उसे अपनी पहचान भी विस्मृत हो जाती है। उस प्रतिविम्ब पर वह दाँतो और नाखूनो से भाँति-भाँति के दाँव-पेच दिखाता है और लडते-लडते थककर चूर हो जाता है। यदि सामने से दर्पण न उठाया जाये तो सभव है वह अतिम दम तक लडता रहे। ऐसे ही मनुष्य भी भेद-भाव की भ्रान्ति मे पडकर अपनो से ही सघर्ष करता रहता है। उसे यह नही पता चलता कि वह जिनसे लड रहा है वे भी उसके अपने ही है। यह भ्रान्ति ही दु:ख का कारण है।

सौदेबाजी

आजकल का सारा व्यवसाय सौदेवाजी और लेन-देन पर टिका हुआ है। जिसको लेन-देन की कलाबाजी मालूम है, वह व्यवसाय मे उतनी ही सफलता हस्तगत करता है। लेकिन कुछ लोग भगवान की भक्ति और उपासना मे भी सौदेवाजी की कला दिखा रहे हैं, जो अनुचित है। भगवान का भजन क्यो करते हैं ? दु ख दूर करने के लिए ? लॉटरी के नम्वर लाने के लिए ? अथवा आनन्द प्राप्ति के लिए ? यदि इस प्रकार प्रभु के साथ सौदेवाजी करेगे तो घाटा ही होगा, लाभ नही।

दो प्रकृतियाँ

कुत्ते को जव कोई लाठी से मारता है तो वह लाठी को ही मुँह से पकड़ता है और समझता है कि लाठी ही उसे मार रही है। वह मारने वाले को नही देखता और न उस पर आक्रमण करता है। लेकिन सिंह की प्रकृति इससे भिन्न होती है। वह लाठी को नही पकडता परन्तु मारने वाले पर ही सीधा आक्रमण करता है। इसी प्रकार ससार मे दो प्रकार के मनुष्य होते हैं। एक वे हैं जो दु ख मे घवड़ाते हैं, उसे नष्ट करने के लिए प्रयत्न

भी करते है किन्तु उस दु ख के मूल कारण को वे नही खोज पाते। दूसरे प्रकार के लोग वे हैं जो दु ख से न घवडाकर उसके मूल कारण की शोध करते है और उस कारण को ही समाप्त कर देते हैं। इसीलिए अनुभवी सज्जनो ने कहा है कि 'अंधेरे मे लाठी चलाने से अपना ही सिर फूटता है'। अत पहले दु ख का कारण खोजे और फिर उसका प्रतिकार करे।

चिन्ता दूसरों की नहीं, अपनी !

आजकल लोग दूसरों की चिन्ता से वहुत परेशान नजर आते है। जिसे देखिए उसे दूसरो की चिन्ता खाये जा रही है। क्या लोग इस चिन्ता के लिए वेतन देते है ? अगर नही तो फिर यह व्यर्थ की मगजमारी क्यो ? उर्दू मे एक कहावत है—'काजी दुवले क्यो ? शहर के अदेशे से।' अत दूसरे के अदेशे से दुर्वल होना ठीक नही है। उत्तम तो यह है कि हम अपनी ही चिन्ता करे, दूसरो की व्यर्थ की चिन्ता से वचे, और यही दु ख से मुक्त होने का सुन्दर तरीका है।

मन और मधुमक्षिका

मधुमक्षिका के क्रिया-कलापो को यदि हम गौर से देखे तो पायेंगे कि वह तभी तक फूलो के ऊपर मँडराती और गुनगुनाती है जव तक कि उसे रस नही मिलता। उसका प्रयोजन तो तभी सिद्ध होता है जव उसे रस का आस्वादन हो जाये। रस मिलते ही वह विल्कुल शान्त, मौन और निश्चेष्ट हो जाती है। इसी प्रकार मनरूपी मधुमक्षिका को जव तक पवित्र विचारो का रस नही मिलता, तव तक वह सासारिक वासनाओ के ऊपर मँडराता रहता है। यदि उसे आध्यात्मिक जीवन-का रस मिल जाये तो सत, चित् और आनद के सागर मे वह गोते लगाने लगे।

दो कलश

मानव जव जीवन-यात्रा प्रारभ करने के पूर्व ईश्वर से आशीष माँगने गया तो भगवान ने उसे दो कलश दिये—एक सुख से परिपूर्ण था और दूसरे मे सत्य भरा हुआ था। ईश्वर ने मनुष्य को सलाह दी—सत्य की रक्षा करना और सुख का अधिकाधिक वितरण करना। जव इन्सान धरती पर आया तो प्रभु का आदेश भूल गया और विपरीत आचरण करने लगा। उसने सत्य को वॉटना शुरू किया और सुखो को ज्यादा से ज्यादा

परमानन्द की प्राप्ति

जो परमानन्द की प्राप्ति करना चाहते है, वे अपनी समस्त इन्द्रियो को कच्छप की भाँति अन्दर मे समेट लेते है अर्थात् बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी हो जाते है। क्योकि बाह्य भौतिक सुखो का प्रकाश तो जुगनू की तरह है जो केवल नेत्रो को भ्रम मे डालने वाली पालिस की एक चमक है, वास्तविकता कुछ भी नही होती। किन्तु अन्तर आत्मा मे तो ज्ञान का प्रकाश है, शान्ति का साम्राज्य है। अत यदि हमे परमसुख का अनुभव प्राप्त करना है तो बाहर से भीतर की ओर प्रयाण करना चाहिए।

महापुरुष कौन है ?

सस्कृत की एक सूक्ति है—पर दु खेनापि दु खिता विरला—अर्थात् पर-दु.ख से दु खी होने वाले व्यक्ति विरले है। स्वय के दु ख से दग्ध-मानव तो ससार मे सर्वत्र मिलते ही है किन्तु दूसरो के दु ख से सतप्त कितने है ? जो पर-दु ख से पीडित होते है तथा उनके दु ख निवारण का सतत प्रयास करते है, मैं उन्ही को सच्चा महापुरुष मानता हूँ।

दुःख का स्वरूप

ऐसा कहा जाता है कि शेखसादी को ईद के दिन नये जूते न मिलने से बडा दु ख हुआ। बहुत पश्चाताप के पश्चात् उन्होने मरने की ठान ली। जब वे मरने के लिए किसी उपयुक्त स्थान की खोज मे चले जा रहे थे तो उनकी दृष्टि एक लगड़े भिखारी पर पडी। शेखसादी के मन मे विचार आया कि मैं जूते न पाने के कारण मरने जा रहा हूँ किन्तु इस बेचारे के पास तो टाँग भी नही है। इस दृश्य को देखकर वे वापस लौट पड़े और मृत्यु का विचार ही मन से निकाल दिया। अत जिसने कभी दु ख देखा ही न हो उसे भला दु ख की प्रतीति कैसे होगी ? गोस्वामी तुलसीदास ने इसीलिए तो लिखा है—

"जाके पाँव न फटी बिवाई।
सो क्या जाने पीर पराई॥"

फेन में मक्खन की खोज

प्रात काल उठकर एक व्यक्ति सागर के किनारे जाकर उसके फेन

मे कुछ खोजने का प्रयास कर रहा था। उसी समय उसके बगल से जाते हुए एक तत्त्ववेत्ता ने वड़े स्नेह से पूछा—"बन्धु! सागर के फेन मे किस वस्तु को खोज रहे हो?" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—"श्रीमान्! मैं इस फेन मे नवनीत की तलाश कर रहा हूँ।" तत्त्ववेत्ता पहले तो इस वात पर खूब हँसा किन्तु बाद मे कहने लगा—"भाई! तुम कितने नादान हो? कही समुद्र के फेन से मक्खन निकलता है? मक्खन तो दही के मथन से ही प्राप्त होता है, जल के मथन से नही।" उस व्यक्ति को तत्त्ववेत्ता के इस कथन मे छिपी सच्चाई समझ मे आ गई और वह वडी विनम्रता से अपनी भूल अनुभव करता हुआ घर की ओर चल पडा।

आज के मनुष्यो की स्थिति भी वड़ी दयनीय है। वे इस ससार-सागर के विषय-वासना रूपी जलराशि के फेन से सुख का मक्खन प्राप्त करना चाहते है। क्या उन्हे अपने उद्देश्य मे सफलता मिलेगी? नही।

सुख और दुःख

कवीर ने दु ख के बारे मे यह मन्तव्य प्रकट किया है—

देह धरे का दण्ड है, सव काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूरख भुगते रोय॥

दु ख की स्थिति तो सार्वकालिक है। उससे कौन बच सका है? किन्तु दु ख का मूलभूत कारण तो अज्ञान ही है। ज्ञान के जैसा अन्य कोई दूसरा सुख नही है, उसी प्रकार अज्ञान से वढकर भी तो ससार मे दु ख नही है।

सुख पुजाने में नहीं पूजने मे

एक दिन उपवन के समस्त पुष्प क्रोधित होकर प्रकृति से कहने लगे—"प्रकृति का यह कैसा न्याय है कि जीवन-पर्यन्त हम प्रस्तर की प्रतिमाओ को ही पूजते रहे?" प्रकृति ने उन्हे वडी ममता के साथ समझाया "फूलो! यदि तुम पाषाण-प्रतिमा का पूजन उचित नही समझते तो कोई बात नही। कल से पत्थर तुम्हारी पूजा करेंगे क्योकि पूजन तो निश्चित है, उसके बिना ससार का काम विधिवत् नही चल सकता। तुम पूजा नही करना चाहते तो पत्थर ही तुम्हारी पूजा करेंगे।" फूलो ने बडी प्रसन्नता के साथ यह परिवर्तन स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन ब्रह्ममुहूर्त्त मे ही फूलो पर पत्थरो की वृष्टि प्रारम्भ हो गयी। बेचारे कोमल फूलो के अग-भग हो गये और उनका शरीर क्षत-विक्षत हो गया। फूल कब तक यह स्थिति सहन करते। घवडाकर पुन. प्रकृति के समक्ष उपस्थित हो गये और बोले—"प्रकृति हमे क्षमा करो। हमे यह पूजा भारी पड रही है। अब हम सव समझ गये कि स्वय को पुजाने की अपेक्षा दूसरो को पूजने मे ही आनन्द है।" प्रकृति ने दयार्द्र होकर फिर से नियम मे परिवर्तन कर दिया और तव से फूल प्रतिमाओ के पूजन मे ही आनन्द मान रहे है। यही वात मानव के सुख के सम्वन्ध मे है। मानव-सुख पुजाने मे नही, पूजने मे है।

अपनी ही आत्मा

अपने गर्भ से उत्पन्न वालक को देखकर माँ अत्यन्त हर्ष का अनुभव करती है क्योकि वह उसमे स्वय को प्रतिविम्बित पाती है। इसी प्रकार अन्तर्दृष्टा व्यक्ति भी प्रत्येक आत्मा मे अपनी ही आत्मा को देखकर प्रसन्न हो उठता है। मैं और तू का भेद उसके मन से तिरोहित हो जाता है। उसके लिए तो समस्त प्राणि-समाज ही अपना है। यह साधना की उच्च भूमि है।

आशा के धागे

अनुभवी लोग कहते है कि 'जव तक साँसा, तव तक आसा' यह वात जीवन मे वडी निर्णायक भूमिका अदा करती है। सच पूछा जाये तो सारा ससार ही आशा के धागे पर झूल रहा है। सभी इस विश्वास पर जीवित है कि एक दिन ऐसा आयेगा जव आनन्द रूपी वीणा के समस्त तार झकृत हो उठेगे। वसन्त ऋतु का सुगन्धित और मादक पवन जीवन के कुम्हलाये पुष्पो को नया जीवन दे देगा। दरिद्रता के दशानन से मानव-जीवन मुक्ति प्राप्त कर लेगा और सभी क्लेश समाप्त हो जायेगे। तव सोने से दिन और चाँदी सी रातें कटने लगेगी।

उस किनारे पर

कुछ दिन पूर्व मैंने एक कविता पढी थी जिसकी निम्नलिखित पक्तियाँ मानस मे छा रही है—

छोडकर निश्वास कहता है नदी का यह किनारा,
उस किनारे पर जमा है, जगत भर का हर्ष सारा।
वह किनारा किन्तु लम्बी साँस लेकर कह रहा है,
हाय रे! हर एक सुख उस पार ही क्यो वह रहा है?

आज राष्ट्रो की कूटनीति देखकर मुझे इन पक्तियो का वरावर स्मरण होता रहता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने सुखो को भूलकर या उपेक्षित कर दूसरे राष्ट्रो के सुखो से ईर्ष्यादग्ध है। भला यह कहाँ की सज्ञानता है? दूसरो को सुखी देखकर तो हमे सुखी होना चाहिए लेकिन आज हम विपरीत आचरण कर रहे है। हम समझते है कि हमी दुखी है। वाकी सभी सुखी है। किन्तु अपने सुख को महान समझकर अपने को हीनपने से वचाना चाहिए।

सच्ची प्रतीति

कभी-कभी मन की प्रतिक्रिया भी वडी विचित्र होती है। रात्रि के भयानक अन्धकार मे अचानक कुत्तो के समवेत स्वर से गृह-स्वामी की नीद उचट गयी। उसे वडा क्रोध आया कि कुत्तो ने सुखद नीद मे वाधा डाल दी अन्यथा स्वप्निल ससार मे खोया रहता। किन्तु जव वे सुवह उठे और उन्हे यह पता चला कि रात्रि मे चोर उनके घर मे चोरी करने के हेतु प्रविष्ट हुए थे और कुत्तों की आवाज सुनकर भाग खडे हुए तो गृह-स्वामी का मन कुत्तो के प्रति कृतज्ञता का अनुभव करने लगा और वे कुत्तो की प्रशसा करने लगे।

मन मे कभी-कभी किसी घटना से प्रतिकूल प्रतिक्रिया होती है किन्तु जव हम उस परिस्थिति को भली-भाँति समझ लेते है तो मन के दर्पण मे दूसरे ही भाव झलकने लगते है।

आनन्द कहाँ है?

मराठी के सुप्रसिद्ध सत ज्ञानेश्वर ने लिखा है कि 'अन्तर जितना उज्ज्वल होगा, जगत उतना ही मगलमय होगा।' जो आनन्द एक झोपडी मे, तबूरे के तार मे, भक्ति की धुन मे, फटे वस्त्रो मे और दीपक के हलके प्रकाश मे आता है, वह आनन्द विराट महलो की जगमगाती रोशनी मे, सगीत की महफिल मे, राग-रग मे नही मिलता। इससे ज्ञात होता है कि

आनन्द भौतिक साधनो मे नही है वल्कि आत्मा के भीतर ही है। उसी मे आनन्द को ढूढने की आवश्यकता है।

रेशम का कीट और मानव

भ्रम के कारण हम अपने दु ख का स्वत सृजन करते है और उन्ही को सुख का कारण मान बैठते है। रेशम का कीट अपनी ही लार से अपने शरीर पर रेशम लपेटता है और सोचता है कि इससे सर्दी-गर्मी से मेरी रक्षा होगी। लेकिन यह रेशम ही उसके दु ख का कारण बन जाता है। गरम जल मे उसे घण्टो तक उबलना पडता है और अत्यन्त वेदनापूर्ण मृत्यु का भीषण दण्ड भोगना पडता है। इसी प्रकार मानव-समाज विषय-कषायजन्य पाप के लेप से अपनी आत्मा को आवृत करता है और अपार दु.ख भोगता है। अत. हम अपने सुख-दु ख के स्वय ही कर्त्ता और भोक्ता हैं।

धर्म सुख ही वास्तविक सुख !

कहा जाता है कि एक बादशाह ने अपने वजीर को एक बडा कीमती दुशाला भेट किया। वजीर ने उससे नाक पोछ लिया। दरबारियो मे से किसी एक ने बादशाह से चुगली खाई कि वजीर आपके दिये हुए दुशाले से नाक पोछता है। बादशाह ने क्रोधित होकर वजीर को बुलाया और उसे नौकरी से पृथक कर दिया। ईश्वर के दिये हुए मनुष्य शरीर रूपी सुन्दर दुशाले से अधर्म और पाप करके हम भी नाक पोछने जैसी क्रिया तो नही कर रहे हैं? इसका वास्तविक उपयोग तो धर्म-सुख एकत्र करना है। क्षणिक सुखों का सचय करके अनन्तकाल तक दु ख के वन्धन मे बँधना इसका दुरुपयोग ही कहा जायेगा।

जंगल में मंगल

सुख बाहर है और शान्ति भीतर है, तभी तो मनुष्य बाहर को छोड-कर भीतर की ओर प्रयाण करना चाहता है। वास्तविक शान्ति का साम्राज्य तो मन के भीतरी तहखाने मे विराजमान है। भौतिक सुख तो बाह्य साधनो मे अन्तर्निहित हैं, और वह क्षणिक भी हैं। अत. उसे खोजने की आवश्यकता नही। इसीलिए कहावत है—'चार दिन की चाँदनी, फिर अन्धेरी रात'। आनन्द और शान्ति तक पहुँचने का तो एक ही साधन है—मन की गहराई मे डूबना। जो आनन्द-सागर मे डुबकी लगा लेता है, उसे

फिर वाह्य साधनो की कोई ममता नही होती। उसके लिए तो जगल मे भी मगल है।

जिन खोजा तिन पाइयाँ

जिसे अजीर्ण हो गया हो उसके समक्ष यदि पट्रस व्यजनो से पूर्ण थाली रख दी जाये तो वह मुँह फेर लेगा क्योकि उसे यह अच्छी तरह मालूम है कि थाली से एक ग्रास खाना भी मृत्यु को आमत्रित करना है। इससे पता चलता है कि आनद खाने मे नही वल्कि तृप्ति मे है, सतोप मे है।

इसी प्रकार मन जव अन्तर्मुखी वनता है तव उसे अपनी आत्मा का साक्षात्कार होता है और जव आत्मदेव के दर्शन हो जाते है तभी अपूर्व एव अवर्णनीय आनद की उपलब्धि होती है। आनद तो आत्मा का सहज धर्म है, वह तो उसी मे मस्त रहती है। लेकिन इस आनद को वाहरी और कृत्रिम सुखो मे खोजना व्यर्थ है। कबीर कहते है--"जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।" यदि अतर की गहराई का स्पर्श हो गया तो सुखो का वास्तविक उत्स भी प्राप्त हो जायेगा।

सज्जन, दुर्जन और संत

एक सूक्ति है—'परोपकाराय सता विभूतय' अर्थात् सज्जन पुरुषो की विभूतियाँ परोपकार के लिए ही होती हैं। जो स्वय की सुख-सुविधा का ध्यान रखते हुए अन्य के लिए भी सुखदायी हो, उसे सज्जन की उपाधि से विभूषित करना चाहिए।

लेकिन जो स्वय के सुख के लिए चिन्ता करे और दूसरो को दु ख पहुँचाने मे जरा भी हिचक न करे, वह दुर्जन है। ऐसे लोगो के लिए कहा गया है—

"दुर्जनस्य विशिष्टत्व, परोपद्रवकारणम्।"

जो दूसरो को सुख-शान्ति पहुँचाने के लिए खुद अपार दु ख सहन करता है, उसे वास्तविक सत कहते है। ऐसे लोगो पर मुसीवतो का वोझ अधिक दिन नही रहता है। तभी तो कहा है--

सज्जनो के शीश पर, मकट रहेगे कितने दिन।
चाँद को घेरे हुए, वादल रहेगे कितने दिन॥

भूल जाओ !

गत महायुद्ध की विषम परिस्थितियो मे ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल को प्राय १८ घटे काम करना पडता था। किसी हितैषी ने उनसे पूछा कि इतनी जिम्मेदारियो से क्या आपको चिन्ता नही होती ? चर्चिल ने बड़े नपे-तुले शब्दो मे उत्तर दिया—"मेरे पास इतना समय ही कहाँ है कि मैं चिन्ता करूँ ?" चिन्ता से मुक्त होने पर ही दु खो से मुक्ति मिल सकती है। अमेरिका के एक प्रमुख डॉक्टर ने अपने वर्षो के अनुभवो के पश्चात् यह निर्णय दिया कि दु:ख और चिन्ता दूर करने के लिए 'भूल जाओ' से वढकर कोई दवा नही है। यदि व्यक्ति शरीर और मन से स्वस्थ रहना चाहता है तो अस्वस्थता को लाने वाली सारी वाते भूल जाये। चिता या उदासी के समय किसी हँसते चेहरे का ध्यान कीजिये। ऐसा वार-वार करने से दु ख की परेशानी और चिन्ता स्वत मन से भाग जायेगी।



७

परिग्रह का प्रायश्चित्त : दान

- दान
- अन्तर्दृष्टा
- श्रीमताई का रोग
- जलोदर
- धनावतार या धर्मावतार
- पेट की मर्यादा
- महान् कौन ?
- तृप्ति कहाँ ?
- पापचक्र
- अनन्त भविष्य
- परोपकारी
- सेवा का मेवा
- सेवक या नेता
- असली श्रीमत
- चन्दन और लक्ष्मी
- दान का महत्त्व

☐ धन सरोवर

☐ मग्रह और वितरण

☐ पुण्य का हिमाव

☐ मत्य के दर्शन

☐ दान देने की कला

☐ उदारता की वरमात

☐ लोभ का नशा

☐ देने मे आनन्द

☐ याचना किनसे ?

☐ वडप्पन का श्रेय

☐ कजूस का धन

☐ परिग्रह की निवृत्ति

☐ स्वार्थ का त्याग

☐ परिग्रह का स्वरूप

☐ दु ख का कारण परिग्रह

☐ व्यसन और परिग्रह

☐ अपरिग्रही का जीवन

☐ रुई और रुई की गॉठ

☐ धन कव वढता है ?

☐ अपना भी मोचे

☐ पारा और मोती

☐ लौह-चुम्वक का आकर्षण

☐ अनर्थो की जड लोभ

☐ मालिक नही, सेवक वनो

☐ भगवान और व्यापार

परिग्रह का प्रायश्चित्त : दान

दान

ऋग्वेद की एक ऋचा मे कहा गया है कि 'शतहस्त समाहर ! सहस्र हस्त सकिर !' अर्थात् सौ हाथो से कमाओ और हजार हाथो से बाँटो ! यह कितना महत्त्वपूर्ण कथन है ! आज के युग मे ऐसा कहाँ सभव होता है ? धन के सग्रह के पीछे लोग जी-जान से जुटे हुए है, किन्तु देने की प्रकृति ही समाप्त हो रही है। जिनके पास हजारो है, वे लाखो की चिन्ता मे परेशान है और लाखो वाले को करोडो की आकाक्षा परेशान किये हुए है।

यदि हम वडा भव्य आलीशान महल रहने के लिए वनाये जिसमे हवा के आगमन की सुविधा तो हो किन्तु वहिर्गमन की कोई व्यवस्था न करे तो क्या हम उसमे सुख का अनुभव करेंगे ? थोडी ही देर मे हमारा दम घुटने लगेगा और खुले मैदान मे आने की इच्छा होने लगेगी। यही स्थिति जीवन की भी है। यदि हम केवल धनोपार्जन के साधन जुटाते रहे और दान अथवा धन के समुचित उपयोग से विरक्त हो जावे तो फिर जीवन मे भी एक प्रकार की वेचैनी पैदा होगी जो सुख की साँस न लेने देगी। हम एक विशेप प्रकार की पीडा से छटपटायेगे और उस पीडा का कही निदान भी न पा सकेगे। इसीलिए तो पचतत्र मे कहा गया है—

उपार्जितानामर्थाना, त्याग एव हि रक्षणम्।
तड़ागोदर-सस्थाना, परिवाह इवाम्भसाम्॥

अर्थात्—सचय किये हुए धन का दान करते रहना ही उसकी रक्षा करना है। जैसे—तालाव के पानी का वहते रहना ही उसे गदा न होने देने का कारण है।

अन्तर्दृष्टा

सत-कवि तुलसीदास ने लिखा है कि 'प्रभुता पाइ काहि मद नाही' — प्रभुता को पाकर भला किसे अहकार नही होता ? वैभव और धन का अहकार जहरीले नाग की तरह होता है, जिसे जरा भी उत्तेजित कर दीजिये कि वह अपना फण उठाकर खडा हो जाता है।

लेकिन वास्तविक ज्ञानी तो वही है जो वैभव के अतल सागर के बीच रहकर भी उसमे निर्लिप्त रहता है। जैसे सरोवर का जल-वैभव कमल को आकृष्ट नही कर पाता, वह उससे सदैव एक हाथ ऊपर या दूर रहता है। उसी प्रकार जो ज्ञान-सम्पन्न तथा प्रज्ञा-चक्षु हैं वे धन और वैभव की माया से निर्लिप्त रहते हैं। उनमे चचल लक्ष्मी कोई विकार नही पैदा कर पाती।

राष्ट्र-सत विनोवा भावे का यह कथन ध्यान देने योग्य है—"जिस पैसे की तुम परमेश्वर की तरह पूजा करते हो, वह पैसा परमेश्वर नही पिशाच है, जिसका भूत तुम पर सवार हो गया है। जो रात-दिन तुमको सताता रहता है और तनिक भी आराम नही लेने देता। पैसे रूपी पिशाच को तुम देवतुल्य समझकर कव तक पूजते रहोगे और नमस्कार कर कव तक अपनी नाक रगडते रहोगे ?

श्रीमंताई का रोग

जैसे आज कई प्रकार के रोग और व्याधियाँ प्रचलित हैं, वैसे ही समाज मे इन दिनो श्रीमताई का रोग फैलता जा रहा है। सवको श्रीमंत वनने का नशा सवार है। शरीर के स्वास्थ्य के लिए रक्त का होना तो अनिवार्य है किन्तु यदि यही रक्त सग्रहीत होकर शरीर के किसी एक अग मे रुक जाये तो क्या यह शुभ लक्षण है ? ऐसी हालत मे तो डाक्टर या वैद्य की अविलम्ब शरण ग्रहण करनी पड़ेगी और रक्त-सचालन की उचित व्यवस्था करनी होगी। लेकिन आज समाज के लोगो को यही नही समझ मे आ रहा है कि सारे कष्टो का मूल धन अथवा सम्पत्ति का एक स्थान पर एकत्रित हो जाना ही है। यदि यह समाज के सभी वर्गो मे वरावर सचालित होता रहे तो किसी वात की चिन्ता करने की जरूरत ही क्या है ? सारे झगड़े और वैमनस्य अर्थ के केन्द्रीकरण से ही तो जुडे है। इसीलिए हिन्दी के एक कवि ने लिखा है—

पैसा बना मनुज के कर से, आज वही भगवान हो गया।
क्रय करता मानव का पैसा, उसका ही सम्मान हो गया॥
गई मनुजता दूर विश्व से, पशुता का साम्राज्य हो गया।
कहाँ गया वह राम-राज्य, यह देखो रावण राज्य हो गया॥

जलोदर

जव पेट मे पानी भर जाता है तब वह जलोदर की वीमारी कही जाती है। इसी प्रकार धनोदर की भी वीमारी लगती है। बडे-बड़े राष्ट्रो मे धन-सग्रह की प्रतिस्पर्द्धा चल रही है, गरीव देशो का शोषण कर अधिकाधिक धनवान बनने की महत्त्वाकाक्षा जागृत हो गई है। आये दिन इसी महत्त्वाकाक्षा के कारण वड़े-वडे सघर्षो की भूमिका निर्मित होती है फिर भी ये राष्ट्र इस वीमारी से मुक्त नही होना चाहते। धन का दान एव उपभोग करना चाहिए, किन्तु सग्रह नही। देखो! मधुमक्खियो का सचित धन (मधु) दूसरे लोग हर लेते है। अगर वड़े राष्ट्रो तथा व्यक्तियो को यह वात समझ मे आ जाये तो ससार की अशाति मे बहुत कमी आ सकती है।

धनावतार या धर्मावतार

आज समाज मे मैं देखता हूँ कि लोग धन की मदिरा मे मस्त होकर बड़े गर्व के साथ घोपणा करते है कि मै करोडपति हूँ, मै लखपति हूँ। मै उनसे एक वात स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि तुम करोडपति या लखपति भले ही हो किन्तु अपने मन के पति नही हो। वहाँ तो तुम सर्वथा कगाल हो। यह कगाली धनहीन होने से भी अधिक कष्टदायक है। धन का संचय और सग्रह कितने वड़े रूप मे तुमने किया है यह महत्त्वपूर्ण नही है। महत्त्वपूर्ण तो यह है कि तुमने समाज या राष्ट्र के लिए कितना व्यय किया है। धर्म की उन्नति मे तुम्हारा योगदान कितना है? आज धनावतारो की कमी नही है, कमी है तो धर्मावतारो की।

किसी वडे शहर की घटना है कि एक वार एक वडे सेठ की पत्नी बडी कीमती विदेशी कार मे बैठकर उपाश्रय मे साध्वीजी के दर्शनार्थ गई। साध्वी ने उस सेठानी से कहा—"यह गरीव वहन मेरे पास आई है, यदि सभव हो तो इसे कुछ रुपये दान स्वरूप दे दीजिये। आपके पास तो ईश्वर की कृपा से वहुत धन है।" सेठानी ने उत्तर दिया—"साध्वीजी! मेरे पास

धन बहुत है तो मेरे लिये है, दूसरे के लिए नही। ऊँट की लम्बी गर्दन काटने के लिए थोड़े ही है।" ऐसा कहकर सेठानी वहाँ से चली गई। कुछ ही दिनो के बाद सुनने मे आया कि सेठानी का सबसे बडा लडका चोर-बाजारी मे पकडा गया। यह है आज के श्रीमन्तो के मन की दरिद्रता जो अपने पैसे का सदुपयोग नही कर पाते है, उनकी यही तो दशा होती है ?

पेट की मर्यादा

प्रकृति ने मनुष्य के पेट को मस्तिष्क और हृदय के नीचे स्थान दिया है, मानो प्रकृति यह सदेश दे रही है कि पेट की मर्यादा को कायम रखने का काम मस्तिष्क और हृदय का है। यदि पेट अमर्यादित हो जाय तो शारीरिक विकृति के साथ-साथ मानसिक विकृति का भी खतरा है। जब मनुष्य पाव भर आटे के लिए आकाश-पाताल या जल-थल एक कर देता है, अपनी शाति को तिलाजलि दे देता है तो यदि पेट अमर्यादित हो जाये तब तो मनुष्य एक से एक जघन्य कार्य करने मे भी संकोच नही करेगा। इसलिये पेट की इच्छाओ को प्राथमिक महत्त्व देने की जरूरत नही है। उसमे तो जितना भी डालिये स्वाहा हो जायेगा। सवाल उसको मर्यादित रखने का है।

आज धन की लालसा भी अमर्यादित होती जा रही है। ज्यादा खा लेने पर जो कष्ट होता है और मजबूरी से वमन के लिये प्रस्तुत होना पडता है, उसी प्रकार अमर्यादित धन की बाढ से भी अनेक कष्ट भोगने पडते हैं। जिस प्रकार चतुर माली बगीचे के वृक्षो की अमर्यादित शाखाओ को काटकर उसे और सुन्दर बना देता है उसी प्रकार विज्ञ और समझदार प्राणी भी धन की मर्यादा को बराबर बनाये रखते हैं क्योकि वे जानते है कि अर्थ ही सारे अनर्थो का मूल है।

महान कौन ?

एक छोटे से अनाज के कण को प्राप्त करके चीटी अपने को चक्रवर्ती समझने लगती है और ऐसा मान लेती है कि ससार मे सबसे अधिक सम्पन्न वही है। लेकिन चक्रवर्ती सम्राट को भी जब क्षुधा सताती है तो वह व्याकुल हो जाता है और क्षुधा-शाति के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के खाद्य-पदार्थो को खाने के लिये मँगाता है। ऐसे मे चीटी महान कही जाये

या चक्रवर्ती ? चीटी की क्षुधा या तृष्णा तो एक अनाज के छोटे से कण या जल की एक छोटी-सी बूंद से शात हो सकती है किन्तु चक्रवर्ती तो नाना प्रकार के व्यजनो का आहार करके भी अतृप्त रहता है।

मैं समझता हूँ कि धन के विषय मे भी यही बात सत्य है। लाखो और करोड़ो होने पर भी यदि अतृप्ति या असतोप है तो वह व्यक्ति की दुर्बलता है। लेकिन जो लोग थोडे ही धन की उपलब्धि से सतोप पा लेते हैं, वे सचमुच भाग्यशाली है। धन की महत्ता तो सतोष मे ही है। तुलसीदास ने लिखा है कि हाथी, घोडे, रत्न, मणि और माणिक्य भी सतोप-धन की बराबरी नही कर सकते—

गज-धन, गो-धन, वाजि-धन और रतन-धन, खान।
जब आवे सतोप-धन सब धन धूरि समान॥

तृप्ति कहाँ ?

श्री उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा गया है—"इच्छाहु आगास समा अणतया"—इच्छा आकाश के समान अनन्त है। यह कभी तृप्त नही होती। इच्छा-पूर्ति का प्रयत्न क्षितिज प्राप्त करने का प्रयत्न है, जिसमे सफलता की सभावना ही नही है। एक अरबी कहावत है कि 'जो दौलत और इज्जत के पीछे पडा हुआ है वह उस तृपारोगी के समान है जो समुद्र के खारे जल से अपनी प्यास बुझाना चाहता है। वह जितना ज्यादा पीता है उतना ही ज्यादा और पीना चाहता है, आखिर पीते-पीते वह स्वय ही समाप्त हो जाता है।' आज सर्वत्र तृष्णा तथा अशान्ति का बाजार गरम है। लोगो ने अपनी छोटी-छोटी इच्छाओ के लिये बड़े-बड़े सुख त्याग दिये हैं। मुझे बहुत दिनो पूर्व समाचार-पत्र मे प्रकाशित एक आश्चर्यजनक समाचार का स्मरण आ रहा है जिसमे कहा गया था कि यूरोप के एक अत्यन्त समृद्ध व्यवसायी ने गोली खाकर आत्महत्या कर ली। उसके हाथ मे एक पत्र था जिसमे लिखा गया था कि मेरे पास सिर्फ दो करोड पौंड धन रह गया है—इसी की चिन्ता मे मैं आत्महत्या कर रहा हूँ।

विचारणीय है कि क्या दो करोड पौंड की राशि इतनी कम थी कि आत्महत्या करनी पड़े ? मैं समझता हूँ कि यह सारा खेल तृष्णा का है। इसके विपरीत भारतीय सतो और विद्वानो ने सन्तोप और अपरिग्रह को जीवन मे सर्वाधिक महत्त्व दिया है। क्रातिकारी कबीर ने तो ईश्वर से

यही प्रार्थना की थी कि हे ईश्वर, मुझे इतना ही देना जितने मे मेरा परिवार भरण-पोषण कर सके और दरवाजे पर आया कोई अतिथि भूखा न चला जाये—

साई एतो दीजिये, जामे कुटुम्व समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥

जव तक यह भावना न जागृत होगी, हमे तृप्ति कहाँ मिलेगी ?

पाप-चक्र

एक वार मै घूमता-घूमता एक मिल मे चला गया। वहाँ मैंने देखा कि जहाँ मुख्य मशीन थी वहाँ एक वडा लोहे का चक्र था, जिससे तमाम चक्र सम्वद्ध होकर गतिशील हो रहे थे। वडा चक्र ही अनेक छोटे-छोटे चक्रो को चलायमान कर रहा था। उस दृश्य को देखकर मैंने मन ही मन विचार किया कि ससार मे भी तो महा-परिग्रह का बडा और दुर्निवार चक्र पाप के छोटे-छोटे चक्रो को चला रहा है। यदि यह महाचक्र वन्द हो जाये तो कई पापो से मन को मुक्ति मिल सकती है। लेकिन महाचक्र को रोकने के लिये महाशक्ति की जरूरत है। थोड़े से साहस और शक्ति के द्वारा उसे रोकना कठिन है।

अनन्त भविष्य

रात्रि का खाया हुआ भोजन भी कल तक पचेगा या नही, इसका विश्वास करना कठिन है। फिर भी मानव अपने को अनन्त समझ कर रात्रि-दिन किसी न किसी आशा के कच्चे धागे के सहारे झूल रहा है। जब हमे आज के जीवन के वारे मे कुछ भी निश्चित रूप से पता नही है तो कल या आगे के जीवन की आशा लेकर धन-दौलत के सग्रह का क्या मूल्य ? मनुष्य भूत और भविष्य को भी वाँधने के लिए जिस प्रकार से लालायित है, यह उसकी नादानी नही तो और क्या है ?

भर्तृहरि ने अपने 'वैराग्यशतक' मे इस दुर्निवार आशा का वडा मुन्दर रूपक प्रस्तुत किया है। वे कहते है—आशा नाम की एक नदी है, उसमे मनोरथ रूपी जल है, तृष्णा रूपी तरगे हैं, राग रूपी मगर हैं, विवर्त-रूपी पक्षी हैं, यह नदी धैर्य रूपी वृक्ष का नाश करने वाली है, अति गम्भीर है। उसमे मोह रूपी भवर है, उसके चिन्ता रूपी ऊँचे तट है। अत. उसे

पार करना अति कठिन है। पवित्र हृदय वाले योगिराज ही उस नदी को पार कर सके है एव आनन्द का अनुभव कर रहे है।

आधुनिक मनुष्य की अनन्त इच्छाओ तथा आशाओं के सन्दर्भ में भर्तृहरि की यह चेतावनी वडी समीचीन है। मनुष्य यदि अनावश्यक आशाओ से मुक्ति पा सके, तो उसके लिए अलभ्य क्या है ?

परोपकारी

अगरबत्ती स्वय जलकर भी दूसरो के लिए सुगन्ध वितरित करती है मोमबत्ती अपने शरीर को जलाकर भी दूसरो के मार्ग अथवा घर को प्रकाशित करती है। इसी प्रकार परोपकारी व्यक्ति स्वय कष्ट एव व्याधि को सहन कर दूसरो को सुख शान्ति प्रदान करने मे नही हिचकता !

एक विचारक ने कहा है—दीपक जलकर भी प्रकाश देता है, पखा स्वय घूमकर भी लोगो को शीतल हवा देता है तथा केश काले होकर भी मनुष्यो की शोभा वढाते है। मनुष्यो ! तुम भी इनसे कुछ सीखो और परोपकारी वनो !

सेवा का मेवा

सुन्दर वृक्ष फल दे या न दे किन्तु अन्य कई प्रकार की सेवा से तो वे जन-समाज का हित-साधन करते ही है। सेवा का फल कभी न कभी तो मिलता ही है। इसीलिए सेवा की मधुरता प्रशसनीय है।

गोवर्धनाचार्य ने लिखा है कि विधाता ने चन्दन के वृक्ष को फल-फूल से हीन वना दिया, तो क्या हुआ ? वह अपने शरीर से भी दुनिया के सताप का नाश कर रहा है।

चन्दन की तो वात जाने दीजिये, साधारण वृक्ष भी कम सेवार्थी नही है। पेड के पत्ते, फल, छाया, मूल, वल्कल, लकडी, गध, दूध, रस, भस्म, गुठली और कोमल अकुर तक मानव-समाज की विना किसी फीस के सेवा मे लगे हुए है। दाता और परोपकारी व्यक्ति का जीवन भी सेवा के वदले कुछ भी न चाहकर अपने कार्य को करने मे प्रसन्नता का अनुभव करना है।

सेवक या नेता

आज देश के सामने यह एक वडा जटिल प्रश्न उपस्थित हो गया है

कि उसे सेवक चाहिए या नेता। सर्वत्र कुर्सी के पीछे भागने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। आन्दोलन, हड़तालें, चुनाव, नेतृत्व की होड़ और नारेबाजी के अजगरी गुजलक की चपेट मे सारा देश परेशान है। लगता है देश मे सेवाभाव तो कभी का समाप्त हो गया। आज सभी को मन्त्री-पद या नेतृत्व की अतृप्ति ने परेशान कर डाला है।

आज देश को ऐसे बलिदानी, आत्म-त्यागी और मौनभाव से कार्य करने वाले सच्चे सेवक या कार्यकर्त्ता की आवश्यकता है जो नयी पीढी के समक्ष आदर्श की स्थापना कर सके। नेता तो आज मचीय अभिनेता बने हैं, जो करते कम है, कहते ज्यादा हैं। सेवक तो परोपकारी और विनम्र होता है, अत देशोद्धार तथा सामाजिक उन्नति का मार्ग वही प्रशस्त कर सकता है।

असली श्रीमंत

ईसाई धर्मग्रन्थ मे लिखा है कि 'सुई के छेद से ऊँट का निकलना सभव है, पर पैसे वालो को स्वर्ग मिलना कठिन है।' इसका कारण पैसे वालो की परिग्रह भावना और कृपणता है। धन का सचय जीवन को सुखमय बनाने के लिए बुरा नही है किन्तु उसकी एक सीमा है। यदि जरूरत से अधिक सचय को ही जीवन का लक्ष्य मान लिया जाये तो जीवन एकागी और दुखद बन सकता है।

धनहीन व्यक्ति दरिद्री नही कहलाता। दरिद्रता का सम्बन्ध धन से नही, हृदय से है। असंतोषी श्रीमत भी दरिद्र है जबकि सतोषी धनहीन भी श्रीमत है। लाखो की सम्पत्ति भरकर भी यदि हृदय-कपाट बन्द कर लिये गये हो तो उससे बडा दरिद्र कौन होगा ?

सस्कृत मे एक सूक्ति है जिसमे कहा गया है कि कृपण एवं कृपाण (तलवार) मे केवल एक 'आ'कार की मात्रा का अन्तर है। शेष बाते दोनो मे समान हैं, जैसे दोनो की मुष्टि दृढ है अर्थात् दोनो की मूठ जल्दी खुलती नही। दोनों कोष (खजाना और म्यान) मे रहने वाले हैं और दोनो ही स्वभाव से मलिन (काले और मैले) है।

चन्दन और लक्ष्मी

चन्दन का वृक्ष आजीवन बिना किसी सकोच के सुगन्ध वितरित

करता रहता है, फिर भी उसके पास सुगन्ध की कभी कमी नही पडती। इसी प्रकार दानी व्यक्ति की लक्ष्मी कभी कम नही पडती। वह जितना ही देता है, उतना ही उसका धन बढता जाता है। लेकिन जो धन का सचय करने मे ही जीवन की सार्थकता समझते हैं, उनकी नादानी को क्या कहा जाय ?

आप मधुमक्षिका के छत्ते को जरा ध्यान से देखिये। ऐसा लगता है कि उस पर बैठी हुई मधुमक्खियाँ मानव-जाति को एक शुभ सन्देश दे रही है कि पुण्यात्माओ को धन का सग्रह करके अकिंचनो को वितरित करते रहना चाहिए क्योकि उसी के कारण कर्ण, बलि और विक्रम जैसे राजाओ का सुयश इस ससार मे विद्यमान है। लेकिन दान और उपयोग किये बिना मनुष्यो का मधु-धन जो चिरकाल से सचित था, आज निरर्थक हो गया। इसी दु.ख से वे मधुमक्खियो की तरह पश्चाताप कर रहे हैं।

दान का महत्त्व

किसी वृक्ष से कोई यह पूछे कि तुमने अब तक कितने फलो का दान मानव-जाति को दिया है ? उत्तर मे वृक्ष शायद यही कहेगा कि भाई ! हिसाब कौन रखे, जितना था उतना दे दिया। इसके स्थान पर यदि किसी धनवान से यह प्रश्न पूछा जाये तो वह एक-एक रुपया, आना और पैसा तक का हिसाब बता देगा।

हिसाब के प्रति यह सजगता ही दान के महत्त्व को कम कर देती है। दान न तो हिसाब की वस्तु है और न विज्ञापन की। यदि हम कुछ देने के बाद उसका प्रचार और विज्ञापन करने लगे तो यश-कीर्त्ति की क्षुधा की तृप्ति करने का बहाना ढूढ रहे है। दान के विषय मे इसीलिए कहा गया है "गुप्त दान महापुण्य"। दान देकर उसका हिसाब या प्रचार मत करो।

आपने देखा होगा कि एक किसान धान के बीज बाँस की नली मे डालकर चुपचाप बोता है, जबकि दूसरा किसान मुट्ठियाँ भर-भर के उछालता हुआ विज्ञापन के साथ बोता है।

चुपचाप बोने वाले किसान के खेत मे बीज मिट्टी को चीरते हुए बाहर निकल आये। धरती ने हरी साडी पहनी। खेतो मे हरियाली खिल उठी। कुछ ही महीनो मे लहलहाते सुनहले पौधे धान्य राशि का उपहार लिए धरती के ऊपर बढ आये।

दूसरी ओर विज्ञापनप्रिय किसान भी खेत मे पहुँचा। पर वहाँ क्या बचा था ? जल की धारा मिट्टी के साथ अनाज के कण भी बहा ले गयी थी।

यही बात दान के सम्बन्ध मे भी समझनी चाहिए।

धन-सरोवर

ससार मे रुपये-पैसे, सोना-चाँदी, जवाहिरात आदि भौतिक वस्तुओ को ही धन समझा जाता है। मनुष्य इनको ही एकत्र करने मे अपने जीवन की सार्थकता समझते है। वे धन से तिजोरियाँ भर लेते हैं और समझते है कि मजबूत ताला लगी तिजोरियो, बैंक लाकरो, भूमि के अन्दर ककरीट आदि से बने हुए तहखानो मे यह सुरक्षित है और सदा इसी प्रकार सुरक्षित रहेगा लेकिन उनका यह समझना भूल है। यह तो चोर, डाकू आदि लुटेरो के द्वारा लूट लिया जाता है। इसीलिए ज्ञानी व्यक्ति अपने धन के सरोवर का जल समाज को वितरित करते रहते हैं क्योकि वे जानते है कि यही उसका सदुपयोग है। लेकिन जो कृपण या कजूस हैं, वे अपनी तिजोरी का ताला बन्द कर स्वय नाग की तरह पहरा देते रहते हैं जिसका लाभ न तो वे स्वय उठा पाते है और न समाज ही। अनुकूल अवसर पाकर चोर या डाकू उस धन को लूट लेते है। इसीलिए संस्कृत मे कहा गया है—

गौरव प्राप्यते दानान्नतु वित्तस्य सचयात्।
स्थितिरूर्ध्वं. पयोदानां, पयोधीनामध स्थिति. ॥

अर्थात्—दान देने से गौरव मिलता है, धन का संग्रह करने से नहीं। देखो! मेघ ऊँचे रहते हैं और समुद्र नीचे रहता है।

संग्रह और वितरण

किसी चिन्तक ने सग्रह और वितरण की परिभाषा देते हुए कहा है—"सग्रह का अर्थ है सडना और वितरण का अर्थ है विकास।"

यदि हम सिर्फ संग्रह की चिन्ता करे और उसके वितरण की ओर ध्यान न दे तो वह वस्तु निश्चित रूप से सडने लगेगी। चाहे वह कितनी ही मूल्यवान और दुर्लभ वस्तु क्यो न हो, उसका वितरण आवश्यक है। यदि धनी अपने धन का, गुरु अपनी विद्या का वितरण न करे तो उस धन और विद्या का क्या लाभ ?

हम अपनी विवेक-बुद्धि पर यह निर्णय छोड दे कि सग्रह और वितरण

मे क्या अनुपात होना चाहिए ? यदि दोनो मे सतुलन है तो दोनो का विकास स्वत होता जायेगा, अन्यथा इसका प्रतिकूल परिणाम भी हो सकता है।

इसीलिए 'पचतन्त्र' मे कहा गया है कि 'धन की तीन गतियाँ होती है—दान, भोग और विनाश'। जो व्यक्ति न तो किसी को देता है और न स्वय खाता-पीता है, उसके धन की तीसरी स्थिति अर्थात् विनाश ही होता है।

पुण्य का हिसाब

'व्याससमृति' मे प्रसगवश एक स्थल पर लिखा है कि सुक्षेत्र एवं सुपात्र मे डाला हुआ द्रव्य नष्ट नही होता, अत सुक्षेत्र मे वीज बोओ और सुपात्र को दान दो।

इसीलिये पुण्य का हिसाब रुपये-पैसो के लिये नही किया जाता, अन्यथा पैसा ही पुण्य का मानदण्ड वन जाता और ससार के सारे धनी पुण्यात्मा वन जाते। दान देने की मात्रा पर भी पुण्य का लेखा-जोखा नही हो सकता क्योकि यह तो दाता की क्षमता या सामर्थ्य पर निर्भर है। जिसकी जितनी क्षमता है वह उतना ही दान दे सकता है। करोडपति द्वारा दिये गये एक रुपये के दान से धनहीन व्यक्ति का एक रुपये का दान कही अधिक वढकर है। लेकिन इन सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण वात यह है दान या जो वस्तु हम देते हैं उसका उपयोग किस कार्य मे हो रहा है और उसका उद्देश्य क्या है ? यदि कुपात्र को दान देकर हम सतोप कर ले तो यह तो हमारी नादानी है। एक ही भूमि और एक ही जल होने पर भी नीम और आम के फल मे अन्तर होता है—एक मे मिठास और दूसरे मे कडुआहट होती है। यह मिठास और कडुआहट दान के विषय मे भी है।

सत्य के दर्शन

मदिर के गर्भ-गृह मे वैठा हुआ पुजारी मदिर के उच्चतम स्वर्ण-कलश को नही देख सकता। उस कलश को देखने के लिये तो उसे गर्भ-गृह मे वाहर आना होगा और दृष्टि को ऊपर केन्द्रित करना होगा।

यही दशा उन धनिको अथवा लक्ष्मी के दासो की है जो रात-दिन सिर्फ तिजोरी का चिन्तन करते है अथवा रात-दिन लक्ष्मी का ही स्तवन

करते हैं। उन्हे परमसत्य के दर्शन कैसे हो सकते है ? क्योकि परमसत्य का तिजोरी से कोई सबध नही है। यदि वे तिजोरी की माया अथवा आसक्ति से मुक्त होकर धर्म एव समाज की सेवा मे हाथ बँटायें तो परम सत्य के दर्शन पा सकते है, वरना उनकी हालत मदिर के भीतर बैठे हुए पुजारी से वहुत भिन्न नही है।

दान देने की कला

दान देना अति उत्तम है, किन्तु दान देने की कला भी आनी चाहिये। दान देते समय आपका मुँह पीछे की ओर हो जाना चाहिए ताकि दान लेने वाले अर्थात् याचक के मुँह की शरम आप देख न सके।

कुछ लोग दान देते समय याचक के प्रति सवेदना अथवा सहानुभूति इसलिये प्रकट करने लगते हैं ताकि उन्हे अपने वडप्पन का सतोष हो। लेकिन यह गलत है। जिस दान मे प्रचार एव अहकार की भावना कार्यरत हो, वह दान न होकर दिखावा है, छलना है। याचक की मजबूरी से अपने अह को सतुष्ट कर लेना स्वय मे एक महापाप है क्योकि जो याचना करता है उसके लिए तो वह क्षण अत्यन्त लज्जाजनक तथा मरणतुल्य होता है। इसीलिये सुविज्ञो ने कहा है—'धनिको से अपने लिए धन लेते समय लेने वाले के मुख पर कालिमा छा जाती है, इसमे कोई आश्चर्य की वात नही। दूसरो के लिये समुद्र का जल लेने पर भी, मेघ काले हो जाते हैं। मेघ वेचारे अपने लिये तो समुद्र से जल की याचना नही करते, किन्तु याचना की दीनता उनके मुँह को काला कर देती है।'

उदारता की बरसात

आकाश मे दिखाई देने वाली एक छोटी श्यामघटा क्षितिज के पास विराट रूप धारण करके सारे आकाश को आच्छादित कर लेती है। धीरे-धीरे उससे बूँदे पडने लगती है जो धरती की तृषा को ही शात नही करती अपितु मुरझायी हुई गुल्म-लताओ तथा शुष्क प्रसूनो के मुखमडल पर चेतना की एक नई काति ला देती हैं। फूलो मे पराग भर जाता है और पवन के सहारे उसकी सुगध चतुर्दिक् फैल जाती है। छोटी-सी वदली की महान उदारता का यह परिणाम निकलता है।

क्या आज के मनुष्य मे वदली जितनी भी उदारता नही है ? उनके

द्वार पर आये हुए शुष्क याचक जो दरिद्रता की धूप से झुलस रहे है तथा जिनकी झोली मे दाता की याचना के अतिरिक्त कुछ नही है, क्या उन पर उदारता की किंचित् वरसात साधन-सम्पन्न समाज नही कर सकता ? यदि उन पर थोड़ी सी उदारता की बरसात हो जाये तो उनके मुरझाये और झुलसे चेहरो पर रौनक आ जाये तथा उनके मुख-कमल भी खिल उठे ?

लोभ का नशा

दशवैकालिकसूत्र मे कहा गया है—'लोहो सव्व विणासणो'—लोभ सव गुणो का नाश करने वाला है। लोभ आँख मे पडे हुए उस तिनके की तरह है जो मनुष्य को शान्ति से सोने नही देता। जैसे आँख की किरकिरी थोडी-थोडी देर मे असहनीय पीडा पहुँचाती है, वैसे ही लोभ की वृत्ति मन को अशांत करती रहती है।

सस्कृत मे एक सुभापित है जिसमे यह मान्यता प्रकट की गई है कि लोभी मनुष्य धन को देखता है, किन्तु उससे उत्पन्न होने वाले दु ख को नही देखता। जैसे विल्ली दूध को देखती है किन्तु लाठी के प्रहार को नही देखती। वह तो समझती है कि दूध को निरापद भाव से पी लेना ही उत्तम है। लेकिन जव गृहस्थ डडे के साथ उसका सत्कार करता है तव उसे वास्तविकता का भान होता है।

देने में आनन्द

इस्लाम के धर्मग्रथ कुरान मे कहा गया है—'ऐ ईमानवालो ! अपने दान को अहसान जताकर या तकलीफ पहुँचाकर वर्वाद मत करो !' यह वात मन मे रेखाकित करने योग्य है। सुन्दर वस्तु को दूसरो को देने पर जो प्रसन्नता का अनुभव मन मे होता है उसकी तुलना मे ब्रह्मानन्द भी नही ठहर सकता। लेकिन देने के वाद यदि आपने अपने अहसान को प्रचारित कर दिया या मन मे यह भाव ले आये कि एक सुन्दर वस्तु को मैने व्यर्थ मे दे दिया तो समझिये सारा गुड गोवर हो गया। देते समय मन के आनद को ही प्रमुखता देनी चाहिये, अहसान अथवा अहकार को नही।

याचना किन से ?

याचना स्वय मे एक वुरी आदत है, किन्तु आवश्यकता और मजबूरी याचक को विवश कर देती है। फिर भी याचना करते समय इस वात का

ध्यान रखना चाहिए कि हम जिसके सामने हाथ फैला रहे हैं स्वयं उसकी सामर्थ्य क्या है ? नमक बेचने वाले से हम हीरे की याचना नही कर सकते। सुगन्धित फूलो से ही इत्र निकाला जा सकता है। इसी प्रकार उदार-हृदय वाले व्यक्ति से ही धन की याचना की जानी चाहिए।

मुझे इस प्रसग मे भर्तृहरि का एक श्लोक स्मरण आ रहा है, जो उन्होने 'नीतिशतक' मे लिखा है। श्लोक का भावार्थ यह है कि 'हे मित्र चातक ! आकाश मे तो अनेक मेघ निवास करते हैं, वे सभी बरसने वाले नही हैं। कई तो वृष्टि से पृथ्वी को गीली करते हैं एव कई व्यर्थ ही गर्जना करते हैं, अत मेरी बात सुन और हर एक के सामने दीन वचन मत बोल। दीनता प्रकट कर देने के बाद छिपाई नही जा सकती। अत. व्यक्ति को देख-कर ही अपनी दीनता को प्रगट करना चाहिए।

बड़प्पन का श्रेय

धन और सम्पत्ति मनुष्य के बडप्पन के मानदण्ड नही है, क्योकि यह तो किसी भी माध्यम से सग्रहीत हो सकते हैं। मनुष्य का वास्तविक बडप्पन तो उसकी उदारता मे है। यदि अथाह धन-सम्पत्ति का मालिक भी कृपण एव अनुदार है तो उसकी महानता पर प्रश्न-चिह्न लग जाता है।

दक्षिण के सुप्रसिद्ध सन्त तिरुवल्लुवर ने एक स्थल पर लिखा है कि 'उदार आदमी का वैभव गाँव के बीचोबीच उगे हुए एव फलो से लदे हुए वृक्ष के समान है।' इसमे एक गूढार्थ छिपा हुआ है जैसे गाँव के बीचोबीच फलो से पूर्ण लदा वृक्ष हो तो जिसे जब जितनी आवश्यकता पडेगी वह उससे उतने फल तोड लेगा और अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर लेगा। वास्तविक उदारता ऐसी ही होनी चाहिए।

कंजूस का धन

'धम्मपद' मे लिखा गया है कि 'नवे कदरिया देवलोक वजन्ति'— अर्थात् कृपण व्यक्ति स्वर्ग मे नही जाते। आप पूछेगे क्यो ? इसका सीधा उत्तर यह है कि वे अपने धन का सदुपयोग नही करते, जो स्वर्ग-गमन का समुचित माध्यम है।

सागर मे अगाध जल है, उत्ताल तरगे है किन्तु उसका जल क्षार युक्त होने के कारण उपयोग मे नही आता। एक सोते का जल भले ही किसी की

प्यास को शान्त कर दे किन्तु समुद्र का जल तो इसमे भी असमर्थ है। इसी प्रकार कजूस की लक्ष्मी न तो स्वय के काम मे आती है और न दूसरा ही उसका उपभोग कर पाता है। इसीलिए तो शास्त्रो मे कहा गया है कि 'जो धनवान होते हुए भी दान नही करता वह सबसे बडा दरिद्र है।'

परिग्रह की निवृत्ति

परिग्रह आत्मा के ऊपर बोझ स्वरूप एक दारुण वस्तु है। किसी कोमल वस्तु पर यदि हम बहुत बडा बोझ रख दे तो उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। उसी प्रकार आत्मा जैसी कोमल वस्तु पर परिग्रह की शिला रख देने से उसके कुचल जाने का भय बना रहता है।

महापुरुषो ने परिग्रह की निन्दा करते हुए उसके घातक परिणामो से मनुष्य को सचेत किया है। साधना के मार्ग मे परिग्रह से क्या बाधाये आती हैं इसकी ओर सकेत करते हुए श्रद्धेय उपाध्याय अमरमुनिजी ने लिखा है—"यह परिग्रह काम, क्रोध, मान और लोभ का जनक है। धर्म-रूपी कल्पवृक्ष को जला देने वाला है। न्याय, क्षमा, सन्तोष, नम्रता आदि सद्गुणो को खा जाने वाला कीडा है। परिग्रह बोधबीज अर्थात् समकित का विनाशक है और सयम, सवर तथा ब्रह्मचर्य का घातक है। यह जन्म, जरा और मरण के भय को पैदा करने वाला है। मोक्ष-मार्ग मे विघ्न खडा करने वाला और कटुक फलो को देने वाला है। चिन्ता और शोक रूपी सागर को बढाने वाला, तृष्णारूपी विष-वल्लरी को सीचने वाला, कूड-कपट का भण्डार और क्लेश का घर है।"

स्वार्थ का त्याग

स्वार्थ की दुष्प्रवृत्ति से मुक्त होना ही वास्तविक मानव-धर्म है। पशु और मनुष्य के आचरणो की विभाजक-रेखा स्वार्थ ही है। यदि मनुष्य भी स्वार्थ मे लिप्त होकर परमार्थ को तिलाजलि दे दे तो फिर उसके लिए मनुष्यत्व की कौन-सी निशानी है ?

कुत्ते को जब रोटी का टुकडा प्राप्त हो जाता है तो वह सबकी नजरो से दूर एकान्त मे बैठकर उसका आहार करता है क्योंकि उसे इस बात का भय बना रहता है कि कही दूसरा जाति-भाई आकर हिस्सा न बँटा ले। यदि इस स्थिति मे कोई दूसरा कुत्ता उसके पास चला जाये तो वह क्रोधित

होकर गुर्राने लगता है। वह एक क्षण के लिए भी नही सोचेगा कि इसे भी भूख लगी होगी, अत अपने टुकड़े से छोटा भाग इसे भी दे दिया जाये। स्वार्थ का त्याग करना तो उसे आता ही नही। लेकिन मनुष्य का आचरण या स्वभाव इसके विपरीत होना चाहिए। यदि वह भोजन करते समय किसी भिखारी या कगाल को देखे तो उसे अवश्य ही कुछ न कुछ भोजन देना चाहिए और इसी से उसको आनन्द की अनुभूति हो सकती है।

परिग्रह का स्वरूप

कुएँ के गम्भीर जल मे आदमी डूबकर मृत्यु का आलिगन कर लेता है, किन्तु यदि इस जल को विस्तृत मैदान मे फैला दिया जाये तो सुकुमार बालक भी उसमे क्रीडा का आनन्द ले सकता है। इसी प्रकार अटूट धन के स्वामी यदि चाहे तो समाज को धन की गहराई मे डुबा सकते है, मानव-समाज को अपने अपार धन की शक्ति से नियन्त्रित कर सकते है। यह सब सग्रह अथवा परिग्रह की माया है। किन्तु श्रीमन्त व्यक्ति की लक्ष्मी को यदि विस्तृत जन-समाज के प्रागण मे फैला दिया जाये अर्थात् वितरित कर दिया जाये तो सम्पूर्ण मानव-समाज सहज मन से उस लक्ष्मी का आनन्द ले सकता है। अत परिग्रह की भावना से मुक्त होकर खुले मन से दान और अपरिग्रह की मदद से समाज को सुखी एव प्रसन्न बनाया जा सकता है।

दुख का कारण : परिग्रह

धर्मशास्त्रो मे आसक्ति-ममता को ही समस्त अनर्थो की जड माना गया है। इसीलिए दर्शनशास्त्र के पण्डितो ने परिग्रह की व्याख्या करते हुए कहा है—"मूर्च्छा परिग्रह' अर्थात् वस्तु पर मोह या ममत्व ही परिग्रह है। लेकिन साधारण मानस इस तथ्य को सहज स्वीकार नही कर पाता। जितनी चिन्ता एक बालक को अपने खिलौने की टोकरी की होती है, उतनी ही एक धनिक को अपनी तिजोरी की। जिस प्रकार बालक आसक्त होकर अपने विभिन्न खिलौनो मे ही मन रमाये रहता है उसी प्रकार धनी व्यक्ति उठते-बैठते, जागते-सोते अपनी तिजोरी के बारे मे ही चिन्तन करता है। बालक निद्रित अवस्था मे भी खिलौनो के ही स्वप्न देखता है और उसे लगता है कि कोई दूसरा बालक उसके खिलौनो को उठाकर ले जा रहा है। वह चौक कर उठ बैठता है या घबडा कर रोने लगता है। धनी व्यक्ति

की हालत तो इससे भी विचित्र होती है। वह न तो सुख से खा सकता है और न सो सकता है। इस प्रकार बालक और श्रीमन्त के दु ख का कारण परिग्रह ही है। यदि दोनो सचय और सग्रह वृत्ति से थोडी मुक्ति पा ले तो आनन्द का स्रोत उनके हृदय मे प्रकट हो सकता है।

व्यसन और परिग्रह

सन्त तुकाराम ने अपरिग्रह के विषय मे कहा है—

"तुका म्हणे धन आम्हा गोमासा समान।"

अर्थात्—धन का आवश्यकता से अधिक सचय करना बहुत बुरा है। जब तम्बाकू जैसे साधारण अथवा सामान्य व्यसन को छोडते समय मनुष्य को बड़े कष्ट का अनुभव होता है तो बड़े व्यसन का त्याग और भी कष्ट-कारक होगा। लेकिन एक बार यदि मनुष्य व्यसन से मुक्त हो जाता है तो उसे असीम आनन्द भी मिलता है। यही बात परिग्रह के व्यसन की है। यद्यपि उसे छोडते समय अपार कष्ट की अनुभूति होती है, किन्तु उससे मुक्त होकर आत्मा शाश्वत आनन्द के सागर मे गोते लगाती है।

अपरिग्रही का जीवन

पढरपुर मे रहने वाले राँका और उनकी पत्नी बाँका का जीवन आदर्श अपरिग्रही का जीवन था। कहते है कि एक बार दोनो कही जा रहे थे कि एक देव ने दोनो की परीक्षा लेने के लिए रास्ते मे सोने की मुद्राओ से भरकर एक थैली रख दी। सबसे पहले राँका की दृष्टि उस थैली पर पडी। राँका ने सोचा कि कही मेरी पत्नी बाँका के मन मे इस बडी थैली को देखकर आसक्ति उत्पन्न न हो जाये अत इसको धूल से ढँक देना चाहिए। राँका बेचारे उस थैली को धूल मे छिपा ही रहे थे कि तब तक बाँका, जो उनके पीछे-पीछे आ रही थी, वहाँ पहुँच गई। बाँका ने जब यह दृश्य देखा तो कहा—"इस थैली को ऐसे ही पड़े रहने दीजिए। भला धूल पर धूल डालने की क्या जरूरत है?"

यह है आदर्श अपरिग्रही का जीवन। पति और पत्नी दोनो के लिए सोने की थैली धूल के समान ही थी। जगल मे आप सिह को बडी मस्ती से विचरण करते देखते है। उसकी मस्ती का राज क्या है? वह कल के आहार और दूसरे के द्वारा मारे गये शिकार की चिन्ता नही करता। अपरिग्रही को

भी कल की चिन्ता परेशान नही करती, वह दूसरे के धन की ओर आँख उठाकर भी नही देखता। उसका जीवन सतोष और आनन्द से परिपूर्ण होता है।

रुई और रुई की गाँठ

महात्मा भगवानदीन ने परिग्रह-अपरिग्रह की व्याख्या करते हुए एक वडा सुन्दर दृष्टात प्रस्तुत किया है—

अपरिग्रह खुली हुई रुई है जबकि परिग्रह कसकर दबाई हुई रुई की गाँठ के समान है। पहली तो पानी मे तैर जायेगी, किन्तु दूसरी पानी मे डूब जायेगी। पहली को तो सरलता से अपने स्थान से हटाया जा सकता है जबकि दूसरी बड़ी मुश्किल से अपने स्थान से हिलाई जा सकती है। रुई की गाँठ के नीचे आप दब जायेगे किन्तु खुली रुई तो इतनी हल्की होती है कि आपका कुछ भी नही बिगड़ सकता।

वस्तुत परिग्रह और अपरिग्रह का प्रश्न मनुष्य की भावनाओ से सम्बद्ध है, उसमे वस्तु की अल्पता या बहुलता का कोई महत्त्व नही है। यदि मानव-हृदय अपनी भावनाओ पर अधिकार कर सके तो अपरिग्रही होना कदापि कठिन नही है।

धन कब बढ़ता है ?

कुछ लोगो के मन मे यह भय है कि यदि वे अपने धन का वितरण करेंगे तो उसकी मात्रा कम हो जायेगी। लेकिन यह भय सर्वथा निर्मूल है। वस्तुत. धन और विद्या—ये दो ऐसी वस्तुएँ हैं कि इन्हे जितना ही खर्च किया जाये अथवा जितना इनका सदुपयोग किया जाये इनकी मात्रा उतनी ही बढती है। जो लोग भाग के शौकीन हैं, उन्हे यह रहस्य मालूम है कि भाग को जितना ही सिल पर पीसा जाये वह अधिक नशीली बनती है। यदि उसे सिल पर ठीक से पीसा न गया तो उसका आनन्द ही कम हो जायगा। धन की स्थिति भी इसी से मिलती-जुलती है। अगर आप उसे समाज को मुक्तहस्त होकर बाँटते हैं तो वह अपने आप बढता जायेगा। किन्तु तिजोरी के भीतर रखे-रखे उसमे सडान पैदा हो सकती है। इसीलिए कहावत है कि कृपण का धन खाने से शैतान भी डरता है।

अपना भी सोचें !

मैं देखता हूँ कि आजकल लोग दूसरो के जीवन मे बडी रुचि लेते है और दूसरो के व्यक्तिगत जीवन की बाते बड़े रस के साथ सुनते-सुनाते है। यदि कोई व्यक्ति अपने घर की लगी हुई आग को न बुझाकर दूसरे के घर की आग को बुझाने दौडे तो उसे जमाना 'मूर्ख' की उपाधि से विभूपित करने के अतिरिक्त और क्या करेगा ? पहले घर मे दिया जलाकर तब मस्जिद मे दिया जलाने की सोचना चाहिए। लेकिन आज तो लोग ठीक इसके विपरीत आचरण कर रहे है।

पहले आप अपनी जीवन-रूपी कम्पनी के लाभ-हानि की चिन्ता करे न कि दूसरे की कम्पनी के घाटे से परेशान हो। यदि आप ध्यान से अपनी कम्पनी का लेखा-जोखा करे तो पता चलेगा कि धर्म की जमा-पूँजी तो कम होती जा रही है और घाटा बढता जा रहा है। कृपया इस तथ्य को अपनी आँखो से ओझल न करे, अन्यथा आपकी कम्पनी फेल हो जायेगी।

पारा और धर्म

पारे को पकडना, मारना और पचाना कठिन माना जाता है फिर भी उसे मारा और पचाया जाता है जिसने पारे को पचा लिया उसका यौवन अमर हो गया ऐसा कहते हैं।

यही बात धर्माराधना के विषय मे समझना चाहिए। धर्म को समझना; जीवन मे उतारना सरल नही कठिन है, फिर भी जिसने धर्म को समझ लिया है तथा जीवन मे उतार लिया है उसका जीवन शुद्ध और स्थिर हो जाता है।

लौह-चुम्बक का आकर्षण

लोहे के खिलौने चुम्बक के पास आते ही उछलने-कूदने लगते हैं और अन्तत उसके आकर्षण से उसमे चिपक जाते है। फिर वे उस आकर्षण से अपने को मुक्त नही रख पाते।

धन का चुम्बक भी बडा आकर्षक और आसक्तिवाला है। सासारिक आत्माएँ लोहे के खिलौनो की भाँति इसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाया करती हैं और तृष्णा तथा आसक्तिवश इससे चिपक जाती हैं। फिर वे इसके आकर्षण से कभी भी छूट नही पाती। लेकिन जो भव्यात्माये हैं, जिनका आचरण

शुद्ध और सयमी है, जो विषय-कषाय से निर्लिप्त तथा तटस्थ हैं, वे सोने और चाँदी के खिलौने के समान है, उन पर चुम्बक का कोई असर नही पडता। वे अपने स्वरूप मे ही स्थिर एव दृढ है। आत्मानन्द मे मस्त हैं। धन रूपी चुम्बक का आकर्षण उनके लिए निरर्थक एव तत्त्वहीन है। अत मनुष्य को लोहे का खिलौना न बनकर सोने-चाँदी का खिलौना बनना होगा ताकि वह धन-माया के कुचक्रो से अपनी रक्षा कर सके।

अनर्थों की जड़ : लोभ

अँग्रेजी के प्रख्यात उपन्यासकार सर वाल्टर स्कॉट ने सत्य ही कहा है—"अब तक नगी तलवार मानव-शरीरो की हत्या उतनी बडी मात्रा मे नही कर सकी है जितनी बडी सख्या मे आत्माओ का वध चाँदी के सिक्कों ने किया है।"

लोभ अनर्थो की जड है। यह अनेकानेक पापो को उत्तेजित और आमन्त्रित करता है। किन्तु जब पाप का घडा भर जाता है तो मानव का विनाश भी अवश्यम्भावी हो जाती है। लेकिन लोभ की माया से बचना सन्तजनो की असली पहचान है। सुना जाता है कि अकबर बादशाह ने अपने समय के एक बड़े प्रसिद्ध सन्त को फतेहपुर सीकरी मे जागीर देने के हेतु आमन्त्रित किया था किन्तु उस सन्त ने बादशाह के प्रस्ताव को बड़ी दृढता के साथ यह कहकर ठुकरा दिया—

सन्तन कहा सीकरी सो काम ?
आवत-जात पनहियाँ टूटे, बिसरि जाऊँ हरिनाम।
जिनको मुख देखे दुःख उपजत तिनकी करबी पड़े सलाम ।।

अर्थात्—साधु-जन का सीकरी से क्या प्रयोजन ? वहाँ जाते-जाते पैरो के जूते भी घिस जायेंगे और हरि का नाम भी विस्तृत हो जायेगा। जिन मनुष्यो को अर्थात् अत्याचारियो को देखते ही हृदय दुःख और घृणा से भर जाता है उनको दरबार मे जाकर सलाम (नमस्कार) करना पडेगा।

यह साधु की पवित्र और दृढवाणी का प्रस्फुटन है। ऐसा सच्चा साधक वीर ही लोभ दुर्ग को तोड सकता है।

मालिक नहीं सेवक बनो !

घर के मालिक बनने की अपेक्षा घर के सेवक बनकर रहने मे अधिक

मुख और सतोष है। घर के विधिवत् सचालन के हेतु मालिक को दिन-रात चिन्ता सताया करती है, लेकिन सेवक निर्द्वन्द्व होकर विचरता है। मिल्कियत की भावना ही वडी दु:खदायी है। सच्चे मन मे सेवा करने का एक अपना ही सतोष होता है।

लक्ष्मी के त्यागने की उतनी आवश्यकता नही है, जितनी कि उसके शुभ कार्यो मे व्यय करने की है। लक्ष्मी का सर्वथा परित्याग तो गृहस्थ जीवन के लिए सभव भी नही है। लेकिन यह तो सभव है कि हम लक्ष्मी का दुरुपयोग न करे और मानव-जाति की सेवा मे उसको अधिकाधिक लगाये। किन्तु यह प्रवृत्ति मन मे तभी जागृत होगी जव हम लक्ष्मी के मालिक वनने की भावना से मुक्त हो जाये, वल्कि उसको सेवा-भाव से ग्रहण करके उसे पुन: धर्म और समाज के शुभ कार्यो मे लगाये।

भगवान और व्यापार

कुछ लोग घर मे तथा दुकान मे भगवान के सुन्दर चित्रो को सजा-कर रखते हैं और व्यापार तथा लाभ की वाते प्रारभ करने पर मन ही मन ईश्वर की कृपा चाहते है। उस समय वे यह समझते हैं कि भगवान सर्वत्र विद्यमान हैं अत उनका स्मरण करके ही शुभ कार्य (व्यापार) करना चाहिये। लेकिन जव कोई ग्राहक या खरीददार अथवा व्यापारी उनकी दुकान मे कोई वस्तु खरीदने आता है तव वे उससे धोखाधडी करके अधि-काधिक लाभ कमाना चाहते हैं। उस समय वे यह भूल जाते है कि भगवान उनके इस कुकृत्य को देख रहे है और वे इसे कदापि क्षमा नही करेंगे। अधिक लाभ की आशा मे अपने ही समाज के भाई-वहनो को ठगना व्यापार का उच्चादर्श नही कहा जा सकता। भगवान के सामने ही भगवान की सतानो को धोखा देना भला क्या शोभा देता है? व्यापार करते समय ग्राहको मे भी भगवान विराजमान है, जव इस भावना को चरितार्थ करेंगे तभी व्यापार की महानता सिद्ध होगी और आपका व्यापार ही प्रभु से मिलन का दरवाजा खोल देगा!

☆

दान के भूषण

आनन्दाश्रूणि रोमाञ्चं बहुमान प्रियंवचः ।
किंचानुमोदना पात्रे दान भूषण पञ्चकम् ॥

दान के पाँच भूषण है—

१ देने समय हर्ष के आसू वहाना
२ रोमाच होना
३ पात्र का बहुमान करना
४ मीठी वाणी बोलना
५ सत्पात्र की अनुमोदना करना

८

धर्म की आधारशिला : सत्य

- ☐ सत्य की ताकत
- ☐ सत्य कड़वा और असत्य मीठा
- ☐ कहाँ ईमानदारी ! कहाँ बेईमानी !!
- ☐ मिलावट
- ☐ चूहो की वृष्टि
- ☐ पर-दोष
- ☐ बाहर और भीतर
- ☐ धर्म का समय
- ☐ सन्देह और स्नेह
- ☐ यश-कीर्ति
- ☐ धर्म का अर्थ
- ☐ धर्म और ससार
- ☐ अपना ही दु ख
- ☐ धर्म के ठेकेदार
- ☐ धर्म का तमाशा
- ☐ मानव-जीवन एक दुर्लभ वस्तु

- ☐ कैसे पवित्र होंगे ?
- ☐ दासानुदास क्यो बने ?
- ☐ चन्दन से भी बढकर
- ☐ पानी और विचार
- ☐ फूल और मानव
- ☐ असली और नकली धर्मोपासक
- ☐ एक समान
- ☐ धर्म
- ☐ उपाधि
- ☐ स्वतन्त्रता दिवस
- ☐ धर्म की प्रेरणा
- ☐ सत्य की आवश्यकता

धर्म की आधारशिला : सत्य

सत्य की ताकत

सत्य के सम्बन्ध मे कहा गया है—

जो वात कहो साफ हो, सुथरी हो, भली हो।
कडवी न हो, खट्टी न हो, मिसरी की डली हो।।

लेकिन कठिनाई तो तब होती है जब लोग सत्य की ताकत को न पहचानकर उसका वहिष्कार करने लगते है। एक असत्य वात को सिद्ध करने के लिए न जाने कितने कष्ट उठाने पडते है, जबकि सत्य स्वत. सिद्ध है। लोग कहते हैं कि प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता ?

सत्य सर्वथा प्रत्यक्ष होता है जवकि असत्य सदैव अप्रत्यक्ष। फिर भी आज ससार मे असत्य का वाजार गरम है। सत्य के उपासक बहुत कम हैं जवकि असत्य की आराधना जोर-शोर से हो रही है। सत्य के उपासक मे इतनी शक्ति होती है कि अनेको असत्यो के दावेदारो को पछाड देता है। सत्य की एक जाज्वल्यमान किरण के आगे असत्य का प्रगाढ अधकार अपना मुँह छिपा लेता है।

सत्य कडुवा और असत्य मीठा

गाधीजी का कहना था कि सत्य एक विशाल वृक्ष की तरह है। उसकी ज्यो-ज्यो सेवा की जाती है, उसमे अनेक फल आते हुए नजर आते हैं, उनका कभी अन्त नही आता। लेकिन आज के युग मे सत्य के पौधे के रक्षण तथा सिंचन का उत्तरदायित्व लेने को कौन तैयार है ? लोग तो जल्दी से जल्दी फल-प्राप्ति की आकाक्षा लिए घूमते हैं जवकि सत्य के वृक्ष की

जड़ो मे काफी दिनो तक जल और खाद डालने की आवश्यकता होती है। सुविधा और शीघ्रता के नाम पर आज मानव-व्यवहार छल, असत्य तथा छद्म का सहारा ले रहा है जो प्रारंभ मे तो वडा मधुर प्रतीत होता है किन्तु आगे चलकर जिसके कटुतम दुष्परिणाम सामने आते है।

जिसको सत्य वात कह दी जाती है वह तिलमिला उठता है और समझता है कि मेरी बुराई की जा रही है। यही हालत राजा से लेकर रक तक की है। कहा जाता है कि वीर-रस के प्रमुख कवि भूषण सवसे पहले औरगजेव के दरवार मे पहुँचे थे। औरगजेव ने भूषण को उत्तेजित करते हुए कहा—'आज दुनिया मे सच्ची वात सुनाने वाला कोई नही है।' भूषण ने प्रत्युत्तर मे कहा—"कहने वाले तो वहुत है किन्तु सुनने वाला कोई नही है। यदि आप सुनने को प्रस्तुत हो तो मैं सच्ची वात सुनाऊँ।" शहशाह ने स्वीकृति दे दी। तव भूषण ने कहा—"वाप को कैद करके और भाइयो की हत्या करके आपका नमाज पढना व्यर्थ है। पहले उसका पश्चाताप कीजिये।" भूषण का यह कहना था कि वादशाह आग-ववूला हो गया और भूषण को जीवन-रक्षा के लिये वहाँ से भागकर महाराज शिवाजी की शरण लेनी पडी थी।

कहाँ ईमानदारी ! कहाँ बेईमानी !!

ऐसा सुन रखा है कि स्विट्जरलैड मे ट्रैफिक पुलिस नही है, फिर भी वहाँ के नागरिक सडक पर चलने के नियमों का वरावर पालन करते हैं। कही-कही तो रेलवे-फाटक और टिकट-निरीक्षक भी नही हैं। लेकिन वहाँ के लोग विना टिकट यात्रा करने का साहस कभी नही करते। इसी प्रकार इग्लैड मे समाचार-पत्रो की गड्डी लगाकर सडक के किनारे रख दी जाती है और उसी के पास पैसा रखने की एक पेटी भी रखी रहती है। लोग आते हैं और अपनी पसद का समाचार पत्र लेकर स्वत पेटी मे उसकी कीमत डाल देते हैं। सन्ध्या के समय मालिक आता है और उसे पूरे के पूरे पैसे मिल जाते हैं, यहाँ तक कि एक पैसे की भी भूल या चोरी नही होती।

इग्लैड की इस परम्परा से प्रेरणा ग्रहण करके पूना के आसपास कुछ नवयुवको ने महाराष्ट्र के प्रखर चितक साने गुरुजी की रचनाओ की एक गड्डी और पेटी रख दी। शाम को जव हिसाव मिलाया गया तो पता चला

कि केवल चालीस प्रतिशत पैसे मिले। शेप रचनाये लोगो ने बिना कीमत दिये ही ले ली या चुराली।

क्या इस घटना से देश के नैतिक पतन की पराकाष्ठा परिलक्षित नही होती ? जिस देश को जगद्‌गुरु के रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त थी वहाँ सत्य का इतना वडा अपमान ! क्या यह बेईमानी देश के आगे गभीर नैतिक सकट का प्रश्न-चिह्न नही लगा रही है ?

मिलावट

आज देश के बाजारो मे मिलावट का कार्य पूरे उत्साह के साथ चल रहा है। खाने-पीने से लेकर औषधियो तक मे मिलावट के मार्मिक प्रसग समाचार बनकर हवाओ मे तैर रहे है। कभी पता चलता है कि खाद्य-वस्तु मे अखाद्य वस्तु की मिलावट के कारण इतने लोग मर गये या पगु होकर लाचार हो गये। कभी औषधियो मे अमानवीय मिलावट के कारण रोगियो को अपनी जान से हाथ धोना पडता है। मुझे तो ऐसा लगता है कि यह मिलावट सिर्फ खाद्य अथवा औषधियो मे नही बल्कि आदर्शो एव विचारो मे भी जारी है। सुविधापरस्ती तथा स्वार्थ को परममत्र समझकर चलने वाले आज देश के लिए सबसे बड़े खतरे के रूप मे विद्यमान है।

इस मिलावट के प्रसग मे एक उर्दू कविता प्रस्तुत है—

जमाना है मिलावट का, कि चीजो मे मिलावट है।
रहा कुछ भी नही खालिस, कि वीजो मे मिलावट है॥
× × ×
कहा वीमारियो ने आओ, मिल करके करे हमला।
कि अव कोई नही खतरा, दवाओ मे मिलावट है॥
ये धुँधली आँखे, हिलते दाँत, यूँ फरियाद करते हैं।
कि अजन मे मिलावट है, और मजन मे मिलावट है॥
× × ×
नही होती है हल मुश्किल, करे लाखो जतन कोई।
वजह यह साफ जाहिर है, विचारो मे मिलावट है॥
'तवस्सुम' इस मिलावट ने, उजाडा आशियाँ अपना।
गमो का जिक्र ही क्या अव, कि खुशियो मे मिलावट है॥

चूहों की वृष्टि

एक विचारक ने एक वडा सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत किया कि एक वार

सारे राष्ट्र की विल्लियो का वृहत् सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन मे हजारो की सख्या मे विल्लियाँ उपस्थित हुई। अध्यक्ष ने वडे उत्साह के साथ एक आकर्षक प्रस्ताव रखा कि अव हम सवको भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि हम लोग क्षुधा से व्याकुल हो रही है अत· जैसे मनुष्यो का ख्याल करके ईश्वर जल की वृष्टि करता है, वैसे ही हमारे लिए चूहो की वृष्टि करे।

प्रस्ताव इतना सुन्दर और आकर्षक था कि विल्लियो ने सर्वसम्मति से इसका अनुमोदन कर दिया। यही वात आज ससार के वड़े-वडे राष्ट्रो के साथ लागू होती है। ये राष्ट्र शक्ति और प्रभुता से मदान्ध होकर छोटे और अर्धविकसित राष्ट्रो की प्रतिष्ठा को हडप जाना चाहते है। अपने स्वार्थ से ग्रस्त होकर ये भी ईश्वर से एक-दूसरे को समाप्त करने की प्रार्थना कर रहे है। यह कैसी विडम्वना है ?

पर-दोष

एक वार चलनी ने सुई पर तीखा कटाक्ष करते हुए कहा—"अरी सुई ! तू क्यो अपने गर्व मे वडी फूली-फूली घूमती है ! जानती नही तेरे मुँह पर तो छेद है ! कितनी भद्दी लगती है तू ?"

सुई वेचारी ने वडी नम्रता से उत्तर दिया—"वहन ? तेरा कहना तो विल्कुल ठीक है। तेरी दृष्टि कितनी विशाल है कि मेरा सूक्ष्म छेद भी तुझे नजर आ गया। पर वहन ! कभी-कभी अपनी ओर भी तो निहार लिया करो। तुम्हारी देह मे तो अनेको छेद है, जिनको तुम देख ही नही पाती। दूसरों के छेद देखने से पहले अपने छिद्रो को भी देखना जरूरी है, न ?"

सुई का उत्तर सुनकर चलनी का मुँह लटक गया।

वाहर और भीतर

राजा रणजीतसिह वडे उदारमना हिन्दू सम्राट थे। उनके दरवार मे एक वार मुसलमान फकीर आया। सध्या के भोजन के वाद उसने नमाज पढी और फिर राजा तथा फकीर आमने-सामने वैठकर अपनी-अपनी माला फेरने लगे। राजा की माला का मनका हिन्दू धर्म की प्रथा के अनुसार भीतर की ओर घूमता था जवकि मुसलमान फकीर अपने मजहव के अनुसार अपनी माला का मनका वाहर की ओर घुमाता था। एकाएक रणजीतसिह ने प्रश्न किया—"कौन-सी विधि ठीक है ?"

फकीर ने दोनो पद्धतियो मे समन्वय करते हुए कहा—"महाराज ! दोनो ही ठीक है। आपका मनका अन्तरात्मा मे सद्गुणो के प्रवेश की कामना करता है और मेरा मनका अन्तरात्मा को दुर्गुणो को बाहर निकालने की प्रेरणा देता है। वस्तुत. बाहर और भीतर का लक्ष्य एक ही है।"

धर्म का समय

दशवैकालिकसूत्र मे लिखा गया है—

जरा जाव न पीलेइ, वाही जाव न वड्ढई।
जावेन्दिया न हायति, ताव धम्मं समायरे ॥

अर्थात्—जब तक बुढापा पीड़ित न करे, जब तक रोगो का जोर न बढे तथा जब तक इन्द्रियाँ—कान, आँख आदि शक्तिहीन न हो, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए।

यह बात उन लोगो के लिये विशेष ध्यान देने योग्य है जो यह सोचते हैं कि युवावस्था तो मुख्यत धनोपार्जन एव भोग-विलास के लिये होती है अत· इस आयु मे धर्म-कर्म की क्या जरूरत है ? इस अवस्था मे तो आँख मूँद कर पैसे कमाओ और दुनिया के सुखो का आनन्द लो।

ऐसे लोगो से मै एक बात पूछना चाहूँगा कि क्या बूढे व्यक्ति को कोई गोद लेना पसन्द करेगा ? यदि आप ही बूढे व्यक्ति को गोद लेना नही पसन्द करते तो फिर बेचारा धर्म क्यो बूढे आदमी को स्वीकार करेगा ? इसलिये बुढापा आने से पहले ही धर्माराधना कर ले अन्यथा पछताना पड़ेगा।

संदेह और स्नेह

सदेह स्नेह का दुश्मन है। जहाँ सदेह होगा वहाँ स्नेह का कोमल वृक्ष कुम्हला जायेगा। जैसे विप और अमृत मे कोई समानता या आपसी मेल नही है, वैसे ही सदेह और प्रेम मे सर्वथा विपरीत मनोभाव कार्य करते है। आप शुद्ध दूध मे एक बूँद खट्टे पदार्थ की डाल देगे तो देखेगे कि सारा दूध फट गया है। प्रेम के सूत्र भी इतने सहज और पवित्र होते है कि उन पर सदेह का मैल बैठते ही टूट जाते है। और प्रेम के धागे तोडने के बाद जोड़े तो जा सकते है किन्तु उनमे कही न कही गाँठ अवश्य पड जाती है।

यश-कीर्ति

मानव यश-कीर्ति का सदैव भूखा रहा है। येन-केन-प्रकारेण वह अपनी प्रसिद्धि चाहता है। चाहे जल-थल के कुलावे उसे एक क्यो न करने पडे लेकिन वह अपनी प्रसिद्धि के लिये सब कुछ करने को तैयार है। एक चिन्तक ने तो कहा है कि बिल्ली को जितना दूध प्रिय है, मानव को उतना ही यश-कीर्ति प्रिय एव सुखकर है।

लेकिन यश-कीर्ति की अधिकाधिक लालसा मानव को पतन के निकट भी ले जा सकती है। अग्रेजी मे कहावत है कि 'प्रसिद्धि पाने की आकाक्षा महापुरुषो की अतिम कमजोरी है।' कुछ लोग प्रसिद्धि के लिए इतने उतावले या व्यग्र हो जाते है कि उन्हे अच्छे या बुरे का भी ज्ञान नही होता। झूठी प्रतिष्ठा या कीर्ति तो व्यक्तित्व के लिये विघातक ही है।

एक बार सत विनोवा को किसी धनी व्यक्ति ने कुआँ खुदवाने का वचन दिया। किन्तु उसने यह शर्त रखी कि कुएँ के निर्माण मे उसके पिता का नाम भी अकित हो। विनोवा ने कहा—"नही भाई! मैं तेरे वाप को नरक मे भेजने का पाप नही करूँगा।"

जो लोग धर्माचरण के द्वारा यश-कीर्ति की क्षुधा शात करना चाहते है उनके लिये विनोवा का कथन विचारणीय है। धर्म अथवा समाज-सेवा के कामो को कर्त्तव्य समझकर करना चाहिये न कि यश-प्राप्ति के माध्यम के रूप मे।

धर्म का अर्थ

धर्म मानव की व्यक्तिगत साधना का विषय है। इसे किसी समाज के वन्धन मे वाँधना कठिन है और जो लोग धर्म को किसी सम्प्रदाय से सम्वद्ध कर देते हैं वे वास्तविक रूप से इसके उदात्त अर्थो को विस्मृत कर देते हैं। जैनदर्शन का तो यह स्वर है कि—'धम्मो मगल मुक्किट्ठ' अर्थात् धर्म सवसे उत्कृष्ट मगल है। मजहवी और साम्प्रदायिक दुनिया धर्म जैसी मगलवस्तु को आपसी भेद-भाव का विषय वना देती है। जव मैं यह सुनता हूँ कि आज देश के इस प्रान्त मे धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक हिंसा की आग भडक उठी तो सोचने लगता हूँ—

धर्म को तो आज दुनिया ने खिलौना कर लिया।
दूध के वदले मे पानी का विलौना कर लिया॥

धर्म और संसार

धर्म फूलो की सेज है, जबकि ससार काँटो की शय्या है। इसीलिये धर्माचरण करते समय प्राय. निद्रा देवी का आगमन हो जाता है। आप माला का जाप कर रहे हो या प्रभु-कथा का श्रवण कर रहे हो तो थोडी ही देर मे नीद आने लगती है।

लेकिन ससार की माया वडी विचित्र है। यहाँ तो लोग नाना प्रकार के सुख-साधनो का सग्रह इसलिये करते है कि सुख की नीद सो सके। लेकिन भवजाल की दुश्चिन्ताये उन्हे एक क्षण के लिये भी आनन्द की नीद नही लेने देती। अनेक भक्तजनो के मुख से सुनता हूँ कि उन्हे अनिद्रा की बीमारी है। इसके लिये वे नीद की गोलियाँ खाते है। जबकि उनके पास देखने के लिये सुन्दर घर, मोटर तथा वडा व्यवसाय है।

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि वास्तविक सुख की खोज करनी है तो धर्म के निकट आओ, वहाँ पूर्ण शाति मिलेगी, मन को आश्वासन मिलेगा। किन्तु यदि आपको बाह्य सुख-सुविधाओ की तलाश है तो रेगिस्तान मे मृग-मरीचिका के समान हमेशा सुख की खोज मे ही परेशान रहेगे। यही तो धर्म और ससार मे अन्तर है।

अपना ही दुःख

एक बार अमेरिका के विख्यात राष्ट्रपति अब्राहम लिकन किसी सभा मे वोलने के लिए जा रहे थे। इतने मे उनकी दृष्टि रास्ते के कीचड मे फँसे एक सुअर पर पडी जो बहुत देर से कीचड से मुक्ति पाने का प्रयास कर रहा था। लिंकन को उस पर वडी दया आयी और उन्होने विना अपनी ख्याति तथा कपडो की परवाह किये कीचड मे फँसे सुअर की मदद करनी शुरू की। थोडी ही देर मे सुअर उस कीचड से निकल कर भाग गया।

लिंकन को मीटिग मे पहुँचने मे देर हो गयी और उनके सारे कपडे भी कीचड से भर गये। सभा-स्थल मे जव वे इस हालत मे पहुँचे तो लोगो ने उन्हे घेर लिया और विलम्व का कारण पूछने लगे। लिंकन ने सारी वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण किया और देर होने के कारण क्षमा माँगी। इस पर लोगो ने कहा—"आप वास्तव मे वडे दयालु है, जो उस सुअर का दु ख दूर कर दिया।"

लिकन ने वडे सकोच से कहा—"मैंने अपना दु.ख दूर किया है, सुअर का नही। मैने किसी पर दया नही दिखलायी, यह तो मेरा कर्त्तव्य था।"

मैं समझता हूँ कि धर्माचरण करके दम्भ करने वाले लोगो को लिकन का उत्तर अवश्य स्मरण रखना चाहिए। दया और अहिसा तो हमारे जीवन के स्वाभाविक कर्त्तव्य है, उन्हे वडप्पन और अहकार के कीचड से वचाना चाहिए।

धर्म के ठेकेदार

आज समाज मे धर्म के ठेकेदार वहुत मिलते है। जैसे घर या मकान वनाने वाले ठेकेदार सारी जिम्मेदारी अपने कन्धो पर उठा लेते है, वैसे ही धर्म के ठेकेदार, लगता है कि समाज को धार्मिक वनाने की सारी जिम्मेदारी अपने सिर पर ओढे हुए हैं।

मैं पूछता हूँ कि यह ठेकेदारी तुम्हे दी किसने? कही तुमने स्वय तो धर्म को व्यवसाय का विषय नही वना लिया है? जैसे वड़े-वड़े तीर्थस्थानो मे पण्डे और पुजारी ग्रामीण तथा सरल जनता का पैसा खाकर स्वर्ग का रिजर्वेशन कर रहे हैं वैसे ही समाज मे ये ठेकेदार धर्म के नाम पर पेट का धन्धा तो नही चला रहे है?

सच पूछिये तो वह धर्म विकृत हो जाता है जिसे ठेकेदारो की जिम्मेदारी पर छोड दिया जाता है। धर्म तो व्यक्तिगत साधना का सचेतन मार्ग है। उसकी सामाजिक ठेकेदारी का प्रश्न ही कहाँ उठता है? वह तो आत्मोत्थान का पवित्र माध्यम है। यदि धर्म को भी व्यवसाय और ठेकेदारी का आवरण पहना दिया जायेगा तो धर्म का उज्ज्वल प्रकाश मन्द पड जायेगा। प्रयत्न तो यह करना होगा कि धार्मिक मनोवृत्तियो का जागरण हो।

धर्म का तमाशा

हिन्दुओ मे वैष्णव परम्परा के लोगो के मन मे माथे पर चन्दन का तिलक लगाने का वडा माहात्म्य है। इसके पीछे समाज मे अनेक जन-श्रुतियाँ या कथाये प्रचलित है जिनमे माथे के तिलक की वडी प्रशसा की गई है और उसे धर्म-रक्षण के हेतु अनिवार्य माना गया है। ऐसी ही एक कथा का स्मरण आ रहा है—

एक वडा ही दुराचारी व्यक्ति जगल से होकर कही जा रहा था कि लू लगने के कारण उसकी जगल मे ही आकस्मिक मृत्यु हो गयी। जिस पेड के नीचे वह लू लगने के कारण अचेत होकर गिर पडा था, उसी पेड की शाखा पर बगुले का एक घोसला था। उस बगुले ने थोडी देर के वाद बीट कर दी जो मरे हुए दुराचारी व्यक्ति के माथे पर गिर पडी और उसने तिलक का आकार धारण कर लिया। मरने के पश्चात् एक तरफ तो यमराज के दूत उसके प्राणो को लेने आये और दूसरी तरफ से विष्णु के दूत विमान लेकर इसी काम के लिए आ पहुँचे। अव यमराज के दूतो तथा विष्णु के दूतो मे उसके प्राणो को लेकर विवाद उठ खडा हुआ। यमराज के दूतो का कहना था कि यह व्यक्ति जीवन भर अन्याय तथा अत्याचार से समाज को पीडित करता रहा अत इसे नरक-वास करना होगा। लेकिन विष्णु के दूतो का तर्क था कि इसने भले ही कितने कुकर्म किये हो लेकिन इसके माथे पर मरते समय तिलक लगा हुआ है, अत यह स्वर्ग का अधिकारी है। कहते हैं अन्तत. विजय विष्णु के दूतो की ही हुई।

इस प्रकार की अवधारणाओ को समाज मे प्रचलित करने वाले लोगो से मेरा विनम्र निवेदन है कि कृपया धर्म को तमाशे का विषय न वनाइये अन्यथा धर्म के स्थान पर पाखण्डो की पूजा होगी। धर्म तो आत्मा का शाश्वत दर्शन है, भला उससे तिलक और चन्दन का क्या सम्बन्ध ? इससे तो दुराचारियो के मन को आश्वासन मिलेगा कि मरते समय तिलक लगा ले और सव खून माफ ! यह धर्म की उच्च मान्यताओ का उपहास है। कोई भी धर्म या समाज इन कपोल-कल्पनाओ से अपना अहित ही करेगा, उसकी उन्नति का मार्ग इससे अवरुद्ध हो जायेगा।

मानव-जीवन : एक दुर्लभ वस्तु

भगवान महावीर ने पावापुरी के अन्तिम प्रवचन मे एक वडी महत्त्वपूर्ण एव हृदयस्पर्शी वात कही थी—"माणुस्स खु सुदुल्लह" अर्थात् मनुष्य जीवन वडा दुर्लभ है।

भगवान महावीर का यह कथन मानव-जाति को प्रेरणा देता रहेगा। इसका अभिप्राय यही है कि केवल मनुष्य का शरीर प्राप्त कर लेना ही मनुष्य-जन्म को पा लेना नही है। वास्तविक जीवन तो मनुष्यता की प्राप्ति

मे है। प्रसिद्ध जैन सन्त उपाध्याय श्री अमर मुनिजी ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए कहा है—

"यह जीवन की कला इतनी महत्त्वपूर्ण है कि सारा का सारा जीवन ही उसकी प्राप्ति मे लग जाता है। क्षुद्र-जीवन ज्यो-ज्यो विशाल और विराट वनता जाता है और उसमे सत्य, अहिंसा तथा दया का विकास होता जाता है, त्यो-त्यो सोया हुआ मनुष्यता का भाव जागृत होता जाता है। अतएव शास्त्रीय शब्दो में कहा जा सकता है कि मनुष्यत्व का भाव आना ही मनुष्य होना कहलाता है।"

कैसे पवित्र होंगे ?

किसी पर्व पर गगा के किनारे स्नानार्थियो की भीड एकत्र थी। स्नानार्थी वडी कठिनाई से अजलि मे गगाजल लेकर अपने आपको पाप-मुक्त करने की चेष्टा मे लगे हुए थे। इतने मे उधर से सन्त कवीर अपना गगाजल से साफ किया हुआ लोटा लिये आ निकले। कवीर ने सोचा कि अपना लोटा इन नहाने वालो को दे दें ताकि वे आराम से स्नान कर सके। किसी के पास चूँकि लोटा नही था, अत॰ सभी को नहाने मे कष्ट हो रहा था। ज्यो ही कवीर ने लोटा देना चाहा, सभी स्नानार्थी एक स्वर से चिल्ला पड़े—"ऐ! उस लोटे को दूर ही रख, जुलाहे का लोटा छूकर हम अपवित्र क्यो वने ?" कवीर ने तुरन्त जवाब दिया—"यदि गगाजल से यह लोटा पवित्र नही हुआ, तो आप स्नानार्थी कैसे पवित्र होगे ?"

मैं समझता हूँ कि कवीर की चुनौती आज भी उन लोगो के लिए वडी कारगर सिद्ध होगी जो जाति-पाति की उच्चता और छूआछूत की भावनाओ से धर्म को तिरस्कृत करते है और थोथी उच्चता का नकाव डाले घूमते हैं।

दासानुदास क्यों बनें ?

यूनान के सुप्रसिद्ध दार्शनिक डायोजिनीस का नौकर चुपचाप वगैर अपने स्वामी को वतलाये कही भाग गया। डायोजिनीस उसकी परवाह न करके सव काम खुद अपने हाथो से करने लगे। एक दिन उनका एक मित्र उनसे मिलने आया और डायोजिनीस को स्वय अपने हाथो से कार्य करते देखकर वोला—"आप क्यो इतनी तकलीफ उठाते हैं? उस नौकर को ढूँढकर पकड लाइये और उसमे सारा काम लीजिए।"

डायोजिनीस ने उत्तर दिया—"मित्र ! क्या यह मेरे लिए लज्जा और अपमान की वात न होगी कि मेरा नौकर तो मेरे विना रह सकता है और मैं उसके विना अपना काम न चला सकूँ ? क्या मैं ऐसी हालत मे दासानुदास नही वन जाऊँगा ?"

एक कर्मयोगी के लिए इससे पवित्र सन्देश और क्या हो सकता है ? जो लोग धर्म के कार्यो को भी दूसरो से कराके यश के भागी वनना चाहते हैं उनके लिए तो डायोजिनीस का यह कथन आँखे खोल देने वाला है।

चन्दन से भी बढ़कर

अनन्त पुण्य के उदय से हमे मानव-तन की प्राप्ति हुई है। इस तन को पाने के लिए वड़े-वड़े देव और इन्द्र भी तरसते है। वे चाहते है कि हमे भी ऐसा मानव-तन मिले। इतना सुन्दर व सुलभ साधन आज आप हम सभी को प्राप्त हो चुका है। किन्तु अव सोचना यह है कि इस तन की उपयोगिता क्या है ? इसका उपयोग किस रूप मे किया जाय ? इस सम्वन्ध मे मुझे एक कहानी का स्मरण हो रहा है—

किसी नगर मे एक वडा धनाढ्य सेठ रहता था। उसने चन्दन की लकडियाँ खरीदकर अपने गोदाम भर रखे थे। वह सोचता था कि भाव ऊँचा होने पर इन्हे वेचकर भारी मुनाफा कमाऊँगा। एक वार किसी कार्यवश उसे दूसरे देश को जाना पडा, जहाँ कुछ अधिक दिन भी रुकना पड गया। इधर वर्षा आने पर सेठानी को घर मे रसोई के लिए ईंधन की कमी हुई तो सेठानी इधर-उधर लकडियो की तलाश करने लगी। खोजते-खोजते जव वह हैरान हो गई तो उसने गोदाम खोलकर देखा जहाँ सेठ ने चन्दन की लकडी एकत्र कर रखी थी। सेठानी को सेठ की बुद्धि पर वडा विश्वास था। अत. उसने सोचा कि सेठ ने शायद भविष्य का ख्याल करके ईंधन पहले से ही एकत्र कर रखा है। उसने आव देखा न ताव उन चन्दन की लकडियो को रसोई मे जलाने लगी और धीरे-धीरे सारी लकडियाँ ही जला डाली।

जव सेठ विदेश से पुन लौटे तो उस समय चन्दन का भाव काफी तेज था। सेठ को वडी प्रसन्नता हुई कि लाभ कमाने का अचूक अवसर आ गया। उन्होने वडी प्रसन्नता से गोदाम की चावी लेकर ताला खोला। लेकिन ताला खोलते ही उनके होश-हवास उड गये। उन्होने देखा कि सारा

अलग हो, लेकिन उनके मूल रूप मे कोई अन्तर नही होता। जो लोग धार्मिक मत-मतान्तरो को लेकर सघर्परत होते हैं, वे लोग अज्ञानी है। जैन-सिद्धान्त दीपिका मे लिखा है—'आत्मशुद्धि साधन धर्म.'—जिससे आत्मा की शुद्धि हो, उसे धर्म कहते हैं। अत आत्मा की शुद्धि के सारे प्रयास धर्म के अन्तर्गत परिगणित किये जा सकते है। लेकिन आज तो लोग धर्म जैसे महान तत्त्व को भी सम्प्रदायो की कँटीली झाडियो से उलझाये हुए है। इस सन्दर्भ मे एक सत का यह कथन विचारणीय है—

"धर्म एक प्रवाह है और सम्प्रदाय उसका बाँध। बाँध का पानी सिंचाई व अन्य कार्यो के लिए उपयोगी होता है, वैसे ही सम्प्रदाय से धर्म सर्वत्र प्रवाहित होता है। यदि सम्प्रदायो मे सकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता आ जाये तो वह स्वार्थसिद्धि का अग बनकर कल्याण के स्थान पर हानिकारक और आपसी सघर्ष पैदा करने वाला हो जाता है।"

धर्म

धर्म आत्मा से विकीर्ण होने वाला एक प्रकाश है। उस पर बाहर की वेशभूषा, क्रियाकाण्ड अथवा परम्परा का लेबिल चिपकाना मनुष्य की अज्ञानता है। धर्म को किसी बाह्य तराजू पर नही तौला जा सकता। वह तो सदाशयता तथा उच्चता का प्रतिमान है। धर्म का बाह्याडम्बर तो धर्म के शरीर पर उगने वाली अमरबेल की तरह होते है जो धर्म के शुद्ध रक्त से अपना पोषण करते है किन्तु धर्म का हरा-भरा शरीर कुम्हलाने लगता है।

आज तो मन्दिर मे मूर्ति के सामने एक पैसा फेंक देने से, गरीब को जीर्ण-शीर्ण वस्त्र या झूठा अन्न देने से, किसी सन्यासी को गाँजा या तम्बाकू की एक चिलम पिला देने से, गगा-यमुना मे दो-चार गोता लगा लेने से, पीपल की जडो मे लोटा भर जल डाल देने से, तुलसी की एक-आध पत्ती चढा लेने से, माथे पर चन्दन का तिलक लगा लेने से, सेरो घी अग्नि मे फूँक देने से धर्म की प्रतिष्ठा मानी जा रही है। लेकिन यह तो धर्म की प्रतिष्ठा न होकर उसका सरासर अपमान है। यदि धर्म इसी को कहते है, तब तो वह बहुत सस्ती और घटिया वस्तु कही जा सकती है।

उपाधि

आज विश्वविद्यालयो द्वारा बडी-बडी उपाधियाँ एवं डिग्रियाँ वितरित

की जा रही है, किन्तु सारी उपाधियाँ लेकर भी मनुष्य का चरित्र और धर्म स्खलित हो रहा है। मैं समझता हूँ कि इन सारी उपाधियो की अपेक्षा मानवता की उपाधि सबसे अधिक (ज्यादा) महत्त्वपूर्ण है, लेकिन यह उपाधि कही बाहर से नही बल्कि इन्सान के भीतर ही मिलती है। जिस तरह से ससार आज मानसिक असतोष, विक्षोभ तथा निराशा से परेशान है उसके लिए तो एकमात्र औषधि मानवीय गुणो का विकास ही है। यह धर्म और आचरण की पवित्रता से सलग्न है। अत: आज इन दो वस्तुओ को भली-भाँति ग्रहण करने की आवश्यकता है।

स्वतंत्रता दिवस

राष्ट्रीय स्वाधीनता सग्राम के महान् सेनानी बाल गगाधर तिलक ने एक दिन यह उद्घोषणा की थी—'स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' इस मन्त्र को अपनाकर भारतीयो ने राष्ट्र की स्वाधीनता का महान् सघर्ष झेला और राष्ट्रपिता बापू के सुयोग्य नेतृत्व ने उन्हे आजादी दिलाई। प्रतिवर्ष २६ जनवरी तथा १५ अगस्त को बडे धूमधाम से स्वतन्त्रता दिवस मनाते हैं और दिल्ली के लाल किले पर तिरगा झण्डा फहराते हैं। लेकिन स्वतन्त्रता दिवस की इतिश्री इतने मे ही मानना उचित नही है। मेरी दृष्टि मे तो यह मूल्याकन का दिवस है, खुले मस्तिष्क और ठडे दिल से यह सोचने के लिए बाध्य करता है कि हमने सामाजिक और आत्मिक उत्थान के लिए अब तक क्या किया ? और अभी क्या करना बाकी है ?

धर्म की प्रेरणा

सूत्रकृताग मे भगवान महावीर ने कहा है—

ताइणा बुइए जे धम्मे अणुत्तरे
त गिण्ह हियति उत्तम।

अर्थात्—ज्ञानियो का कहा हुआ धर्म श्रेष्ठ, हितकारी एव उत्तम है, उसे ग्रहण करना चाहिए।

धर्म की प्रेरणा हमे नित्य मिलती रहनी चाहिए। जैसे अच्छा पहलवान रोज व्यायाम करता है, अच्छा विद्यार्थी प्रतिदिन अभ्यास करता है, अच्छा सगीतकार रोज गाता है, उसी प्रकार उच्चकोटि का धार्मिक प्रतिदिन धर्म की प्रेरणा ग्रहण करता है। अपने स्वास्थ्य की रक्षा के लिए व्यक्ति

गोदाम खाली पडा है। उसने सेठानी से पूछा तो सेठानी ने जवाव दिया कि चन्दन-वन्दन तो मैं कुछ नही जानती। यहाँ जो लकडियाँ थी उनको मैंने रसोई के ईंधन के रूप मे अवश्य जला डाला है। ऐसी स्थिति मे सेठ वेचारे की क्या हालत हुई होगी ? यह कल्पना से परे है। अत मानव-जीवन के प्रति हमे भी सजगता रखना आवश्यक है। यह अमूल्य मानव-जीवन हमे मिला है तो इसका सदुपयोग चन्दन के रूप मे ही होना चाहिए। कही ऐसा न हो कि वगैर जाने-वूझे इस दुर्लभ मानव-शरीर को वासना की अग्नि मे झोक दे और फिर हमे पश्चाताप करना पडे।

पानी और विचार

जैसे पानी को छानकर पीने से दूषित कीटाणु पेट मे नही जाते, वैसे ही विचारो को भी छानकर अपनाने से दूषित विचार मन के अन्दर प्रवेश नही कर पाते।

पारसी धर्मग्रन्थ मे लिखा है कि घमण्ड से चढी हुई आँखे, झूठ वोलने वाली जीभ, निर्दोष का खून वहाने वाले हाथ, अनर्थ की कल्पना करने वाला मन, बुराई की ओर दौडने वाले पैर, झूठ वोलने वाला गवाह तथा भाई-भाई मे फूट डालने वाला आदमी—इन सातो से ईश्वर घृणा करता है।

मेरी दृष्टि मे तो इन बुराइयो से मनुष्य तभी वच सकता है जव वह सद्विचार का सहारा ले। अगर उसने अपने विचारो की पवित्रता का ध्यान नही रखा तो अवश्य ही वह दुर्गुणो के चक्रव्यूह मे फँस जायेगा और तव उसकी मुक्ति भी सम्भव नही होगी।

फूल और मानव

दिन मे देखने से रात-रानी के फूल अत्यन्त सामान्य प्रतीत होते है, किन्तु रात्रि मे जव उनकी सुवास दूर-दूर तक फैलकर वातावरण को सुगन्धित वना देती है, तव उनकी महत्ता का ज्ञान होता है। ऐसे ही बहुत से मनुष्य देखने मे साधारण होते है किन्तु हृदय मे सद्गुणो के खजाने होते हैं।

सन्त विनोवा भावे ने कही लिखा है कि ससार मे कोई भी ऐसा घर नही है जिसमे दरवाजा न हो, उसी प्रकार ससार मे ऐसा कोई भी व्यक्ति नही है, जिसमे एक न एक गुण न हो। हमे प्रयत्न यह करना चाहिए कि

हम सद्गुणो को ग्रहण करे और दुर्गुणो से अपने को मुक्त रखे। हम जिन व्यक्तियो को अत्यन्त साधारण मानकर उनकी उपेक्षा कर देते है, सम्भव है उनमे ही अनेक गुणरूपी रत्न छिपे हो। यह तो हमारी दुर्बलता है कि हम अपने दामन को पाक (पवित्र) समझते हैं और शेप लोगो को अपवित्रता अथवा वुराई का खजाना मान लेते है।

असली और नकली धर्मोपासक

एक वड़े प्रसिद्ध अजायवघर मे एक ही ढग की दो मूर्तियो को देखकर एक पर्यटक ने अपने गाइड से पूछा कि ये दोनो मूर्तियाँ एक जैसी क्यो हैं? गाइड ने कहा—श्रीमान्! यह मूर्तियाँ देखने मे एक जैसी अवश्य हैं किन्तु दोनो के काम एव मूल्य मे वडा अन्तर है। एक की कीमत पाँच सौ रुपये है जवकि दूसरी की कीमत पाँच लाख है। पर्यटक इस पहेली को न समझ सका। अत गाइड ने पर्यटक की जिज्ञासा शान्त करने के लिए दोनो मूर्तियो के कान मे दो सलाइयाँ डाली। एक की सलाई दूसरे कान से निकल गई जवकि दूसरी की सलाई अन्दर ही रह गई। दोनो का अन्तर समझाते हुए गाइड ने कहा—जो एक कान से धर्मोपासना के उपदेश अथवा मन्त्र सुनकर दूसरे कान से निकाल देता है, उसकी कीमत सिर्फ पाँच सौ है क्योकि वह असली धर्मोपासक नही है लेकिन जो भक्त या धर्मोपासक दूसरी मूर्ति की तरह उपदेश अथवा मन्त्र को अन्दर रख लेता है, वही असली उपासक है और उसकी कीमत पाँच लाख है।

आज पहले प्रकार के भक्तो की कमी नही है जो प्रभु का आदेश एक कान से सुनते हैं और दूसरे से निकाल देते है। ईसाईधर्म मे ऐसे भक्तो को चेतावनी देते हुए कहा गया है—'उन पादरियो मे सावधान रहो जिन्हे लम्वे-लम्बे चोगे पहने हुए घूमना भाता है, जिन्हे बाजारो मे नमस्कार और सभाओ मे तथा दावतो मे मुख्य स्थान अच्छे लगते हैं एव जो दिखावे के लिए घण्टो प्रार्थना करते हैं।'

एक समान

प्रकाश सव जगह प्रकाश ही कहलाता है, तत्त्व सव जगह तत्त्व ही रहते हैं। दो और दो चार ही कहे जाते हैं। इसी प्रकार सभी धर्मों का लक्ष्य मानव-उत्थान ही है। धर्म की विधियाँ और अभिव्यक्तियाँ भले ही अलग-

खाने-पीने, पहनने तथा सोने का वडा ध्यान रखते है, पुत्र-पुत्री अथवा वन्धु-वाधव के शुभ विवाह के अवसर पर यश-कीर्ति प्राप्त करने के लिए सुन्दर-तम आभूपण, खान-पान तथा स्वागत की व्यवस्था करते हैं, लेकिन धर्म की रक्षा के लिए क्या करते है ?

स्वामी रामकृष्ण परमहस का कहना था कि विवाह होने के वाद आधा प्रेम स्त्री मे, चौथाई वाल-वच्चो मे और शेप चौथाई माँ-वाप तथा धन-दौलत मे विभक्त हो जाता है। फिर धर्म के लिए क्या वचा ?

इन प्रश्नो के उत्तर तभी ईमानदारी से मिल सकते है जव व्यक्ति अपने मन मे धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा और प्रेरणा जागृत करे। यदि व्यक्ति को धर्म भी खाने-पीने तथा रहने की तरह अनिवार्य प्रतीत होने लगे तभी धर्म के कार्यों मे उनकी रुचि जागृत हो सकती है अन्यथा ऊपर-ऊपर धर्म का नाम लेने से क्या होगा ?

सत्य की आवश्यकता

भारत के प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू को असत्य और वेई-मानी से चिढ थी। वे कहा करते थे—'कमजोरी को मैं वुरा नही समझता, मूर्खता को मैं माफ कर देता हूँ, मगर वेईमानी मुझे तीर सी चुभती है।'

नेहरूजी के जीवन का ही मुझे एक प्रसग स्मरण आ रहा है। एक वार वे कार द्वारा चित्तौड से उदयपुर जा रहे थे। रास्ते मे एक रेलवे फाटक आया जो वन्द था और सिगनल भी गिरा हुआ था, अर्थात् थोडी ही देर मे उधर से गाडी गुजरने वाली थी। पडित नेहरू के अगरक्षक ने फाटक पर तैनात चपरासी से फाटक खोलने को कहा। उस नवयुवक चपरासी ने वडी दृढता से उत्तर दिया—"सिगनल गिर जाने पर फाटक खोलना नियम का उल्ल-घन है तथा जोखिम से भरा काम है, अत मैं फाटक नही खोलूँगा।"

नेहरूजी ने उस युवक चपरासी की दृढता तथा कर्त्तव्यनिष्ठा से विभोर होकर उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—"आज ऐसे ईमानदार तथा सत्यवादी नवयुवको की ही राष्ट्र को जरूरत है।"

☆

९

विश्व शान्ति के दो सूत्र : अहिंसा और तप

- जीवन-शुद्धि का मार्ग तप
- आत्मा की दिव्य-शक्ति
- आत्मा की आँखें
- ब्रह्मचर्य की साधना
- हिंसा-अहिंसा
- सजग ड्राइवर
- खोल और तकिया
- मील का पत्थर
- मारना नही साधना
- मुक्ति दूर नही
- कपाय से मुक्ति
- सच्चे राही
- अहिंसा का वरदहस्त
- अहिंसाणुवम
- आत्मभाव
- प्रार्थना का आनन्द

- ☐ विवेक-दीप
- ☐ शान्ति कहाँ ?
- ☐ अन्तर की गहराई मे
- ☐ सकल्प-विकल्प कहाँ ?
- ☐ दो पाँखें
- ☐ तप और शान्ति
- ☐ उपामना का अमृत
- ☐ मच्चा फकीर कौन ?
- ☐ अन्तर की आवाज
- ☐ मोक्ष के ममीप
- ☐ मन का नियत्रण
- ☐ तप की अग्नि
- ☐ पालना कठिन है
- ☐ सच्ची मुक्ति
- ☐ साधना कहाँ होती है ?
- ☐ आत्म-गुणो की हानि
- ☐ दिव्य प्रकाश
- ☐ सावना कैसी हो ?
- ☐ जगाने की क्या आवश्यकता ?
- ☐ आत्मा को नही देखते
- ☐ आलोचना का आदर्शरूप
- ☐ मावमरण
- ☐ मन की स्वस्थता
- ☐ कौन श्रेष्ठ है ?
- ☐ सच्ची प्रार्थना

विश्वशान्ति के दो सूत्र : अहिंसा और तप



जीवन-शुद्धि का मार्ग : तप

भारतीय दर्शन की मान्यता है—"ज्ञानम्य पराकाष्ठा वैराग्यम्" अर्थात् ज्ञान की पराकाष्ठा का नाम ही वैराग्य है। वैराग्य, योग, तप, सयम आदि शब्द साधनामूलक हैं। यदि साधक इन सोपानो पर आरूढ होता जाये तो उसकी साधना की चरम परिणति प्रत्यक्ष हो सकती है। आज हमने तपस्या का अर्थ शरीर को तपाने से ही ले लिया है जवकि यह तो तपस्या का वाह्य रूप है। साधक के लिए तो कषायो से मुक्ति पाना ही तपस्या की परम सिद्धि है। उसे जगल मे भागने की आवश्यकता नही, भागना है तो कपाय एव आसक्ति से।

श्री उत्तराध्ययनसूत्र मे कहा गया है—"विरत्ताहु न लग्गति, जहा से सुक्क गोलए," अर्थात् विरक्त साधक मिट्टी के सूखे गोले के समान कही भी नही चिपकता। वह ससार से अलग-अलग रहता है। क्योकि आसक्ति भाव ही साधना के नष्ट होने का मूल कारण है और यही आसक्ति तप-साधना मे भी वाधक वनती है। मेरी दृष्टि से अनासक्त भाव से की गई तप-साधना जीवन-शुद्धि का अनुपम व उत्तम साधन है। अत भव्यात्मा को तप की सुन्दर साधना-अराधना निरन्तर करते रहना चाहिये।

आत्मा की दिव्य-शक्ति

जैनदर्शन मे आत्मा के लक्षण एव स्वरूप के सम्वन्ध मे बडी गभीरता से विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत नवपदार्थ, सप्ततत्त्व, षड्द्रव्य और पचास्तिकाय मे जीव-आत्मा को ही प्रमुखता दी गई है। जैनदर्शन के

महान् आचार्य अमृतचन्द्र ने कहा है—आत्मज्ञान स्वय ज्ञान, ज्ञानादन्यत् करोति किम् ?—आत्मा साक्षात् ज्ञान है और ज्ञान ही साक्षात् आत्मा है। ज्ञान-प्राप्ति के अतिरिक्त आत्मा का और लक्ष्य भी क्या हो सकता है ?

आत्मा मे अनन्तशक्ति है, किन्तु हम आत्मा को विस्मृत किये हुए है। आज हमारे दु.खो का मूल कारण भी यही है। जिस दिन हमे आत्म-स्वरूप का ज्ञान हो जायेगा उस दिन हम आनन्द-वन मे विहार करने लगेंगे लेकिन आत्मा के ज्ञान का साधन तो तपस्या ही है। तपस्या से मुंह चुराकर आत्म-ज्ञान की कल्पना ववूल के पेड से सुमधुर आमो के प्राप्ति जैसी ही है। जव हमे आत्म-वैभव का साक्षात्कार हो जाता है तो सासारिक सुख स्वत. तिरस्कृत हो जाते है। अत आत्मा की दिव्य-शक्ति को पहचानना आवश्यक है।

आत्मा की आँखें

जन्मान्ध व्यक्ति भी वड़े-वड़े साधक, तपस्वी, कवि, कलाकार हुए हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि सूरदास के वारे मे यही कल्पना है कि वे जन्म से अधे थे। दूसरी ओर मिल्टन जैसे महाकवि अल्पायु मे अधे हो गये थे। किन्तु सूर और मिल्टन की प्रतिभा अन्धी नही थी। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि वाहर के नेत्र ही सव कुछ नही है, वल्कि भीतर के नेत्रो मे यदि रोशनी है तो उसे अन्धा नहीं कहा जा सकता।

आज ससार मे वाहर के नेत्र होने पर भी अन्धत्व का प्रसार हो रहा है। जहाँ विवेक का कोई मूल्य न हो, उचित-अनुचित का ज्ञान न हो, करणीय एव अकरणीय मे उचित भेद न हो वहाँ नेत्रो की क्या उपयोगिता ? ससार तो स्वार्थ की दौड मे अधा होकर दौडा चला जा रहा है। सासारिक आकर्पणो से वाहर के नेत्र चमत्कृत होकर कुछ देख नही पा रहे है। आज जरूरत तो इस वात की है कि वाहर के नेत्रो की आसक्ति से वचकर अन्तर के नेत्रो का अनुशासन स्वीकार किया जाये।

ब्रह्मचर्य की साधना

उपाध्याय अमरमुनि जी ने लिखा है कि ब्रह्मचर्य का अर्थ है—मन, वचन एव काया से समस्त इन्द्रियो का सयम करना। जव तक अपने विचारो पर इतना अधिकार न हो जाये कि अपनी धारणा एव भावना के विरुद्ध एक भी विचार न आये, तव तक वह पूर्ण ब्रह्मचर्य नही है।

ब्रह्मचर्य शब्द का निर्माण 'ब्रह्म' और 'चर्य' इन दो शब्दो के सयोग से हुआ है। गाधीजी ने इसका अर्थ किया है—ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की, सत्य की शोध मे चर्या अर्थात् तत्सवधी आचार। ब्रह्म का अर्थ है आत्मा का शुद्ध भाव और चर्या का अभिप्राय है—चलना या आचरण करना।

मैं समझता हूँ कि ब्रह्मचर्य की साधना और ब्रह्म की साधना मे कोई मूलभूत अतर नही है। सभी धर्मों ने इसीलिए ब्रह्मचर्य की साधना को सर्वोपरि माना है।

हिंसा-अहिंसा

भगवान महावीर ने अहिसा को भगवती कहा है। यह मानव की अतरात्मा को विना किसी वाहरी दवाव के, विश्व के प्राणियो के साथ भेद-भाव को छोडकर मित्रता एव वन्धुत्व का प्रेमपूर्ण व्यवहार करने की अन्त प्रेरणा देती है। इसी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए भगवान महावीर का सदेश है—'एगे आया' अर्थात् स्वरूप की दृष्टि से आत्मा एक है।

आज महान चितको तथा दार्शनिको के मूल-मत्रो को भूलकर मनुष्य हिंसा के दरवाजे खटखटा रहा है। उसे न तो मानसिक शान्ति मिल पा रही है और न कायिक ही। वैमनस्य, द्वेप, कलह, घृणा, ईर्ष्या-डाह, दुःसकल्प, दुर्वचन, क्रोध, अभिमान, शोपण, दमन आदि का सर्वत्र वोलवाला है। यह सारी ध्वसमूलक विकृतियाँ हिंसा के ही रूप हैं। इसीलिये भगवान महावीर ने कहा था—'क्रोध को क्रोध से नही, क्षमा से जीतो। अहकार को अहकार से नही, नम्रता से जीतो। दभ को दभ से नही, सरलता से जीतो। लोभ को लोभ से नही, सतोप से जीतो।'

सजग ड्राइवर

जिस समय ड्राइवर अपनी गाडी को खुली सडक पर दौडाता है, उस समय उसे पर्याप्त सजग रहना पडता है। यदि उसकी सारी इन्द्रियो मे समन्वय न हो तो आँख कही देखेगी, कान कुछ दूसरा ही सुनेंगे और ऐसी स्थिति मे दुर्घटना की पूरी सभावना वनी रहेगी। आज समाज को गाड़ी चलाने वाले सजग ड्राइवरो की नितान्त कमी है। इसीलिये वृहत् मानव-समाज किसी लक्ष्य पर पहुँचने मे असमर्थ होकर लक्ष्यविहीन हो गया है।

सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'दीघनिकाय' मे लिखा गया है—'सारथी व नेत्तानि

गहेत्वा, इन्द्रयानि रक्खन्ति पण्डिता'—जिस प्रकार सारथी लगाम पकडकर रथ के घोडो को अपने वश मे किये रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी-साधक ज्ञान के द्वारा अपनी इन्द्रियो को वश मे रखते हैं।

इन्द्रियो का दमन कर उन पर विजय की मुहर लगाना तपस्या की सर्वोत्कृष्ट विजय है। जो साधक अपनी इन्द्रियो की लगाम को वश मे नही रखता उसकी जीवन-यात्रा अधूरी और अपूर्ण होती है। उसे अपने लक्ष्य तक पहुँचने मे तभी मदद मिलेगी जब वह सजग ड्राइवर की भाँति अपने जीवन को सासारिक राजमार्ग पर सतर्कता से ले चले।

खोल और तकिया

'चाणक्यनीति' कहती है कि 'जैसे पुष्प मे गध, तिल मे तेल, काष्ठ मे अग्नि और ईख मे गुड विद्यमान है, वैसे ही देह मे आत्मा विद्यमान है। उसे विवेकपूर्वक देखो।' इसको एक-दूसरे रूपक के द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है कि शरीर आत्मा का आवरण मात्र है जैसे तकिया के ऊपर खोल रहा करता है। लेकिन यदि कोई खोल को ही तकिया समझ बैठे तो यह उसकी नादानी है। मनुष्य का अपने शरीर के प्रति जितना मोह होता है वह खोल के प्रति मोह के समान है। वस्तुतः हमे आत्मा-रूपी धन की जितनी सुरक्षा करनी चाहिए, हम उसके प्रति उतना ही असावधान रहते है। लेकिन शरीर-रक्षा के प्रति हमारी सतर्कता विस्मयकारी है। इसीलिए तो 'मुण्डकोपनिषद्' मे स्पष्ट रूप से यह बताया गया है कि शरीर के अन्दर विराजित, ज्योतिर्मय पवित्र आत्मा को सत्य, तप, सम्यग्ज्ञान और ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त किया जा सकता है।

मील का पत्थर

हम जब सुदीर्घ यात्रा पर निकलते हैं तो हमारी दृष्टि यदा-कदा रास्ते के किनारे लगे मील के पत्थरो की ओर चली जाती है। इन पत्थरो पर अकित सख्या से यह बोध होता है कि हमने कितनी दूरी तय करली है और अभी कितना चलना शेष है अर्थात् मील के पत्थर हमारे अतिम लक्ष्य न होकर लक्ष्य पर पहुँचने के बोधक सकेत हैं। इससे अधिक इनका कोई महत्त्व नही है। ठीक इसी प्रकार शरीर-रक्षा हमें निर्वाण अथवा कैवल्य की प्राप्ति के हेतु करनी चाहिए। ऐसा न हो कि हम शरीर-रक्षा को ही

अतिम लक्ष्य मान ले। जैसे पहलवान का सारा ध्यान उसके शारीरिक सौष्ठव पर लगा रहता है उसी प्रकार ना-समझ प्राणियो के मन मे शरीर के प्रति आसक्ति की प्रबलता विद्यमान होती है। शरीर का तो महत्त्व इतना ही है कि यह साधना के लक्ष्य तक पहुँचने का सोपान मात्र है। जब हम इमारत की ऊपरी मजिल पर पहुँच जाते है तो फिर सीढी की चिन्ता नही करते। इसी प्रकार सच्चा साधक जब अपनी साधना के चरमबिन्दु पर पहुँच जाता है तो उसके लिए शरीर रूपी सीढी का महत्त्व स्वत कम हो जाता है।

मारना नहीं साधना

मन के सम्बन्ध मे गीता मे कहा गया है—

"चञ्चल हि मन कृष्ण ! वायुरिव सुदुष्करम्"

अर्थात्—मन को जीतना बडा कठिन है, मन पवन जैसा चचल है। ऐसे ही विचार उत्तराध्ययनसूत्र मे भी व्यक्त किये गये हैं—"मणो साहस्सिओ भीमो दुट्ठस्सो परिधावई"—मन दुष्ट घोडे जैसा दु:साहसिक है। अत उसे सयम के द्वारा नियन्त्रित करना चाहिए।

मैं समझता हूँ कि ऐसे सक्रिय और शक्तिशाली मन को मारने की वात क्यो सोची जाये ? क्या दु साहसिक घोडे को चतुर सवार मार डालता है ? उसकी निपुणता तो घोडे को ठीक से साधकर अपनी सवारी के योग्य वना लेने मे है। अत. मन को मारने की अपेक्षा उसको साधने की जरूरत है। यदि हम मन का विधिवत् नियत्रण कर सके तो यह हमारा शत्रु न होकर परम मित्र वन सकता है।

मुक्ति दूर नहीं

कहते है कि एक वयोवृद्ध महिला सिलाई का काम कर रही थी कि इतने मे उसकी सुई हाथ से गिर गई। उसने वडी दूर तक सुई को ढूंढने का प्रयास किया किन्तु अन्धकार के कारण सारा परिश्रम निष्फल हो रहा था। अत· उसने सोचा कि इस अधकार से हटकर नगरपालिका की वत्ती के प्रकाश मे सुई को ढूंढना चाहिए। ऐसा सोचकर वह प्रकाश मे आकर सुई के ढूंढने के काम मे लग गई।

इसी वीच उस रास्ते से वुढिया का कोई परिचित व्यक्ति आ निकला

और उसने बुढिया से पूछा—"दादी ! आज क्या खोज रही हो ?" बुढिया ने उत्तर दिया—"बेटे ! मेरी सिलाई की सुई खो गयी है, अत उसी को खोज रही हूँ।" उस व्यक्ति ने सोचा कि चलो इस कार्य मे बुढिया की मदद करनी चाहिए। वह भी सुई खोजने मे लग गया। उसने इधर-उधर बहुत देर तक सुई को खोजा किन्तु जब न पाया तो पूछा कि–"दादी ! सुई कहाँ खोई थी ?" बुढिया ने कहा—"बेटा ! सुई गिरी तो अन्दर थी किन्तु अन्दर अंधेरा होने के कारण मैंने सोचा कि चलो प्रकाश मे खोज लूँ क्योकि प्रकाश मे ही कोई चीज दिखाई पड सकती है।" उस आगन्तुक व्यक्ति ने जोर का ठहाका लगाया और कहा—"दादी ! सुई जब घर मे खोई है, तो सडक पर ढूँढने से क्या फायदा ? जहाँ खोई है, वही से तो वह मिलेगी।"

आज ऐसा ही प्रयास मनुष्य मुक्ति की खोज की दिशा मे कर रहा है। मुक्ति उसके बिलकुल निकट है किन्तु वह उसे बाहर और दूर ढूँढ़ रहा है। मानव अन्दर से अशान्त है, भीतर ईर्ष्या और द्वेष का ज्वालामुखी सुलग रहा है, आसक्ति और मोह के बन्धन दिन-प्रतिदिन जटिल होते जा रहे हैं, ऐसी स्थिति मे मुक्ति को कैसे और कहाँ ढूँढा जा सकता है ? ऐसी स्थिति मे गीता का यह कथन हमे मार्ग-दर्शन देता है। 'उद्धरेदात्मनात्मान' अपने से अपना उत्थान करो। भगवान महावीर का यह कथन भी इस सन्दर्भ मे प्रकाश डाल रहा है—

अप्पाणमेव अप्पाण, जइत्ता सुहमेहए ॥

अर्थात्—आत्मा से आत्मा को जीतकर सच्चा सुख प्राप्त किया जा सकता है।

कषाय से मुक्ति

देह की मुक्ति वास्तविक मुक्ति नही है। शरीर के बन्धनों को तोड़ना उतना कठिन नही है जितना कि माया-मोह और कषाय के बन्धनो से मुक्त होना है। मनुष्य आज इन प्रबल बन्धनो से मुक्ति पाने का प्रयास नही कर रहा है बल्कि क्षणिक बन्धनो से सघर्षरत है। ऐसी स्थिति मे उसे क्षणिक सफलता ही मिल सकती है। शाश्वत मुक्ति तो माया-मोह तथा कषाय के बन्धनो को छिन्न-भिन्न कर देने से ही मिल सकेगी। कहा भी है—

कषायमुक्ति किल मुक्तिरेव ।

सच्चे राही

आजकल जहाँ देखिए साधु और सन्तो के नाम पर पापाचार करने वालो की बाढ आयी हुई है। समाचार-पत्रो मे हमेशा ऐसी खबरें प्रकाशित होती रहती हैं कि अमुक साधु ने जनता को इस प्रकार मूर्ख बना दिया। मैं सोचता हूँ कि इस प्रकार के समाचार साधु-समाज के लिए कलक के समान हैं। सच वात तो यह है कि ऐसे नामधारी साधु भटके हुए यात्री की तरह हैं जो न तो गृहस्थ-धर्म की उच्चतम मर्यादा का पालन कर पा रहे है और न साधु-जीवन की वैराग्य-सौरभ का पान कर पा रहे है। सच्चा राही तो वही होता है जो माया-मोह को चुनौती देता हुआ साधना की मजिल पर अग्रसर होता रहता है। नकली साधुओ के लिए ही यह कहावत समाज मे प्रचलित है—

नारि मुई अरु सम्पति नासी।
मूँड मुडाय भये सन्यासी।

अर्थात्—पत्नी की मृत्यु और सम्पत्ति के विनष्ट होते-ही सिर मुँडाकर सन्यासी वन गये। समाज को ऐसे सन्यासियो से वरावर खतरा वना हुआ है। वे कच्चे राही हैं जो रास्ते मे ही भटक गये है और जन-समाज को भी गुमराह कर रहे हैं।

अहिंसा का वरदहस्त

सुना जाता है कि एक वार शिव ने एक असुर की भक्ति-भावना से प्रभावित होकर यह वरदान दे दिया था कि वह जिसके सिर पर हाथ रख देगा वही भस्म हो जायगा। इस वरदान को पाकर वह शिव के मस्तक पर ही हाथ रखने के लिए दौड पडा। आखिर विष्णु ने उस असुर को अपनी माया से वश मे करके शिव के प्राणो की रक्षा की और उस असुर को ही उसके माथे पर हाथ रखवाने मे सफलता प्राप्त की जिससे वह स्वय ही भस्म हो गया।

आज विज्ञान के प्राणघातक अस्त्रो की शक्ति के वारे मे मैं जव चिन्तन करता हूँ तो मुझे उसी असुर की याद आ जाती है जो मदोन्मत्त होकर स्वय शक्ति देने वाले ईश्वर को ही भस्म करने पर तुला हुआ है। विज्ञान आज सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होकर विनाश का ताण्डव-नृत्य कर रहा

है। वेचारी मानवता इस दुर्दम दैत्य से त्रस्त है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जव तक विज्ञान के माथे पर अहिसा का वरदहस्त नही होगा तव तक विज्ञान अपनी मर्यादा भूलकर विनाश के पथ पर दौडता ही जायेगा। किन्तु यदि उसे अहिसा का मागलिक वरदान मिल गया तो वह मानव-जाति के हेतु स्वर्ग का द्वार भी खोल देगा।

अहिंसाणुबम

ईसाई धर्म के प्रवर्तक महात्मा ईसा ने कहा है—"तू अपनी तलवार म्यान मे रख ले, क्योकि जो लोग तलवार चलाते हैं, वे सव तलवार से ही विनष्ट हो जायेगे।"

आज सर्वत्र अणुवम का वोलवाला सुनायी पड रहा है। जिस देश के पास अणुवम है, वह अपने से कमजोर राष्ट्रो को अपमानित और दलित कर रहा है। उसके पास दानवी शक्ति आ गई है। यदि भूल से दो-चार अणुवमो का विस्फोट हो जाये तो शायद मानव-जाति का नामोनिशान ही मिट जायेगा। लेकिन इस अणुवम से भी ज्यादा शक्तिशाली अहिंसाणुबम है। उसके आगे तो सारी दानवी शक्ति विखर जाती है। आज मानवता यदि अहिसाणुवम तैयार करले तो उसे भयभीत होने की कोई आवश्यकता ही नही है। लेकिन इसके लिए आत्म-वल, आत्म-सयम और आत्म-दमन की वहुत जरूरत है।

आत्म-भाव

आत्मा स्वय परमात्मा तथा विशुद्ध आत्मा है, परन्तु जव तक वह मोह-माया और अज्ञानता के परदो मे छिपी है तव तक वह लाचार और वेवस है। जव वह इन भ्रमो से मुक्त हो जायेगी तो स्वत: केवलज्ञान की दिव्य ज्योति से प्रकाशित हो उठेगी।

इतिहास मे ऐसे अनेक भोगी-विलासी राजाओ, दुर्धर्ष दस्युओ तथा समूची जिन्दगी को कुकर्मो मे लगा देने वाले मनुष्यो का इतिवृत्त प्राप्त होता है जो भगवान महावीर के चरणो की छाया मे जाकर अपने कुकर्मो के प्रति सतर्क-सजग हुए और पश्चाताप की अग्नि मे जलने लगे। जीवन की आखिरी घडियों मे उनकी आत्मा का चैतन्य-भाव जागृत हुआ। इसी सन्दर्भ मे भगवान ने उन्हे धैर्य और आश्वासन देते हुए कहा था—

पच्छावि ते पयाया, खिप्पं गच्छति अमरभवणाइ ।
जेसिं पिओ तवो सजमो य, खती य बंभचेरं च ॥

अर्थात्—जीवन की सध्या मे भी जो साधना के पथ पर अग्रसर हुए है। तप, सयम और ब्रह्मचर्य जिन्हे प्रिय है। जिनके जीवन के अणु-अणु मे धर्म के प्रति श्रद्धा जाग्रत है, वे नरक और तिर्यंच की अशुभ गतियो मे नही भटकते वल्कि स्वर्ग अथवा मोक्ष को शीघ्र ही प्राप्त कर लेते है।

अत· तुम आत्मा के स्वरूप को पहचानो। आत्मस्वरूप को पहचानने के वाद वन्धन नाम की कोई चीज नही रहेगी। सिर्फ विचारो की एक अगडाई भरने की आवश्यकता है।

प्रार्थना का आनन्द

विनोवा भावे ने एक वडी महत्त्वपूर्ण वात कही है—"वह मूर्खो मे भी महामूर्ख है जो मानता है कि ससार मे सुख है। मुझे तो जो भी मिला, दु·ख की कहानी सुनाता मिला।"

कहने का अभिप्राय यह है कि ससार मे दु ख ही चिरस्थायी है, सुख की घडियाँ तो क्षणिक हैं। लेकिन जीवन मे भ्रमवश हम अनेक वस्तुओ के सग्रह मे लगे हुए है और सोचते हैं कि इनसे हमे भविष्य मे सुख मिलेगा। सच पूछिए तो सग्रह-वृत्ति मे ही दु ख का रहस्य छिपा हुआ है। यदि इससे मुक्त होकर हम थोडा समय ध्यान, प्रार्थना, जप अथवा तप मे लगाये तो वास्तविक आनन्द की प्राप्ति कर सकते है। लेकिन इसी आनन्द को कवीर ने 'गूंगे का गुड' कहा है अर्थात् यह अनिर्वचनीय है। इसको वाणी से व्यक्त नही किया जा सकता।

गाय का वछडा जव अपनी माँ का स्तन-पान करता है, उस समय उसे जो आनन्द की अनुभूति होती है, वह सिर्फ वछडे को ही प्रतीत होती है। इसी प्रकार आनन्द को तो सच्चा भक्त-हृदय ही जान सकता है। उसे वाणी से अभिव्यक्त नही किया जा सकता।

विवेक-दीप

'आचाराङ्गचूर्णि' मे कहा गया है कि—'विवेगो मोक्खो' वस्तुत विवेक ही मोक्ष है। अन्धकार को दूर भगाने के लिए यदि कोई लाठी लेकर चले तो वह उपहासास्पद है किन्तु यदि वह दीपक के प्रकाश से अन्धकार

दो पाँखें

अनन्त व्योम मे स्वच्छन्द उडान भरने के लिए जैसे पक्षी को दो स्वस्थ पाँखो की आवश्यकता होती है, वैसे ही मोक्ष-मार्ग का अनुसरण करने वाले साधक को आचार-विचार रूपी दो पखो की नितान्त आवश्यकता होती है। पक्षी कितना भी मजबूत एव स्वस्थ क्यो न हो, वह एक पख के सहारे अनन्ताकाश मे उन्मुक्त उडान भरने मे असमर्थ रहता है। इसी तरह से साधक कितना ही मनस्वी क्यो न हो यदि उसमे ज्ञान और क्रिया अर्थात् विचार एव आचार का सतुलन नही है तो वह भी मुक्ति के मार्ग पर चलने मे असमर्थता का अनुभव करेगा। जैनदर्शन की यही मान्यता भी है—'नाण किरियाहि मोक्खो' अर्थात् ज्ञान एव क्रिया (आचार) से ही मुक्ति होती है।

तप और शान्ति

राष्ट्रपिता महात्मा गाधी कहा करते थे कि तपस्या जीवन की सबसे बडी कला है। लेकिन इस कला के जानकार बहुत थोड़े है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि तपस्या का अर्थ मात्र कठोर संयम है। लेकिन जो इसकी आन्तरिक सत्ता से परिचित हैं, उनके लिए तो यह अति आनन्ददायक यात्रा के समान है।

यात्रा के हेतु तो समाज मे अनेक साधन प्रचलित हैं किन्तु सबसे सुगम एव कम खर्चीली यात्रा रेलगाडी की है जो आग और पानी के सयोग से उत्पन्न भाप के सहारे गंतव्य मार्ग पर बढती है। इसी प्रकार साधक को लक्ष्य तक पहुँचाने वाली गाडी का इन्जन तपस्या रूपी अग्नि और शाति रूपी जल के सयोग से उत्पन्न भाप के सहारे चलता है। इनमे से किसी एक का अभाव यात्रा को असभव बना देता है।

उपासना का अमृत

वासना विष है, उपासना अमृत है। जो वासना का विष-पान कर रहा है, वह भला उपासना तथा सयम का अमृत कैसे पी सकता है ? उर्दू मे एक शेर है—

वही शह सवारो में पाता है नाम।
जो काबू मे घोडे की रक्खे लगाम॥

जिसने मन पर सयम करके नियन्त्रण पा लिया है, वह ससार मे

महावली है। उसे ध्यान, तपस्या एव ब्रह्मचर्य का अमृत मिलेगा, लेकिन जो वासना के विष-सागर मे आसक्ति के थपेड़े खा रहे है, उनकी नाव तो मँझधार मे ही डूव जायेगी। अत जीवन के सुखो का केन्द्र उपासना है, वासना तो पतन का सवसे सरल तरीका है।

सच्चा फकीर कौन ?

उर्दू मे 'फकीर' शव्द को लिखने मे फे-काफ-इये-रे इन चार वर्णों की आवश्यकता होती है। वस्तुत: इन चारो वर्णो मे ही फकीर शव्द का वास्तविक अर्थ छिपा हुआ है। फे का अर्थ है फाका अर्थात् तपस्या, काफ का मतलव होता है—कनायत (तपस्या पर भरोसा) और इये का मतलब है—याद इलाही (प्रभु का पल-पल मे स्मरण)। इसी तरह रे का तात्पर्य है रियायत जिसका अर्थ होता है सयम से रहना। अत. वास्तविक फकीर वह है जो तपश्चर्या करता है, एव तपस्या पर भरोसा करता है। जो पल-पल मे प्रभु का स्मरण करता हुआ सयम का पालन करता है वही सच्चा फकीर है। मात्र फकीर के वस्त्र तथा उपाधि धारण कर लेने से कोई फकीर नही वनता। उसकी अपनी मर्यादा एव आचरण की गरिमा होती है।

अन्तर की आवाज

आज दुनिया शोर-शरावे तथा कोलाहल से वहुत परेशान नजर आ रही है और विश्व-प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिको का कथन है कि इस शोर अथवा कोलाहल ने मनुष्य-जाति के समक्ष मानसिक सतुलन के नष्ट हो जाने का खतरा पैदा कर दिया है। यदि यही हालत रही तो मनुष्य को मानसिक विकृतियो का शिकार वनना पडेगा। रूस, जापान तथा अमेरिका जैसे समृद्ध देशो के वैज्ञानिको ने कोलाहल से नष्ट होने वाली मानसिक शान्ति के विपय मे शोध-अनुसधान वडे पैमाने पर शुरू कर दिया है।

मैं सोचता हूँ कि इसके लिए वाह्य उपचारो से अधिक आतरिक सयम की जरूरत है। यदि मनुष्य अपने प्रतिदिन के चौवीस घन्टो मे से कुछ समय निकालकर वाहर की आवाज सुनने के स्थान पर अन्तर की मधुर रागिनी का श्रोता वन सके तो उसे परम-शान्ति का स्वत अनुभव होने लगेगा। वाहर के कोलाहल से ध्यान हटाकर जव तक मनुष्य का मन अन्तर की आवाज मे नही निमग्न होगा तव तक यह सकट वना ही रहेगा।

को चुनौती दे तो उसे वास्तविक यात्री अथवा साधक की संज्ञा से विभूषित किया जा सकता है।

जो व्यक्ति साधना के पथ पर प्रयाण कर रहा है उसे लाठी की आवश्यकता नही है बल्कि उसे तो विवेकरूपी दीपक की ही आवश्यकता है। जिस प्रकार अन्धकार मे बड़े-बड़े अनुभवी राही भी भटक जाते है, उसी प्रकार साधना के मार्ग पर माया-मोह-ईर्ष्या के प्रलोभन भी बिछे हैं, उनसे बचकर चलने के लिए हमे विवेक तथा ज्ञान का दीपक प्रज्ज्वलित रखना होगा। शारीरिक अथवा आंगिक शक्ति-प्रदर्शन की वहाँ कोई जरूरत नही है। वहाँ तो आत्मबल तथा जितेन्द्रियता की आवश्यकता है। इसीलिए पुराणो मे मोक्ष के साधक के विषय मे कहा गया है—"य स्नाति मानसे तीर्थे, स वै मोक्षमवाप्नुयात्"—जो सत्य, शील, क्षमा, अहिंसा आदि मानसतीर्थ मे स्नान करता है, वही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

शान्ति कहाँ ?

दिन भर अथक परिश्रम के पश्चात् जब गृहस्थ अपने घर लौटता है तब उसे मानसिक शान्ति मिलती है। सारे दिन आहार अथवा भोजन की चिन्ता मे यत्र-तत्र भटकने के बाद जब पक्षी अपने नीड मे लौटते है तो वे अवश्य ही शान्ति का अनुभव करते है। जगलो तथा बीहड वनो मे दिन भर घास चरने के बाद गाय जब अपने स्वामी के घर लौटकर अपने बछड़े से मिलती है तब उसे सन्तोष प्राप्त होता है।

आत्मा की स्थिति इससे बहुत भिन्न नही है। लम्बी अवधि तक राग-द्वेष, वासना, कषाय, मोह के बीहड वनो मे भटकने के बाद जब आत्मा चैतन्य तत्त्व को प्राप्त करती है तब उसे आत्म-जागरण के सोपान पर पहुँचने का सुयोग मिलता है। जब तक आत्मा अपने स्वरूप को नही पा लेती तब तक उसे भी शान्ति नही मिलती।

मनुष्य की मुक्तावस्था तभी आती है जब वह अपने अन्तरदेव को पहचान लेता है। अन्तरदेव को पहचानने का अर्थ है माया से मुक्त बन जाना। अत आत्मा को पर-दशा से हटाकर स्व-दशा की ओर प्रवृत्त करना ही साधक का कार्य है तभी उसे सुख और शान्ति का अनुभव हो सकता है।

अन्तर की गहराई में

किसान बडी प्रसन्नता तथा धैर्य के साथ अरहट चलाकर माला मे

बँधे घडो को पानी मे डुवाकर अपने खेत की सिचाई करता है। उसके परिश्रम का परिणाम भी उसे जल्दी ही मिलने लगता है। सारी खेती सिंचित होकर लहलहा उठती है।

इसी प्रकार साधना अथवा तपस्या की खेती तभी लहलहाती है जब साधक माला के मनको को अन्तर की गहराई से फेरता है। यदि वह ऊपर ही ऊपर मनको को घुमाता रहे तो आत्मा को तपस्या का जल कहाँ से मिलेगा ? परिणामत आत्मा कुछ ही समय मे सूखने लगेगी। अत यदि तपस्या अथवा साधना मे सफलता का मुँह हम देखना चाहते है तो अन्तर की गहराई से ही प्रभु-स्मरण करना होगा। केवल हाथ मे माला तथा मुँह मे जिह्वा फेरने से काम नही चलेगा। कवीर ने इसीलिए मन की माला घुमाने का सन्देश देते हुये कहा था—

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका छाँडकर, मन का मनका फेर ॥

अर्थात्—माला फेरते-फेरते तो जमाना वीत गया किन्तु मन का फेर (सासारिक आकर्पण) अव तव नही मिट सका। इसीलिए हाथ की माला को फेंक कर मन की माला को घुमाना चाहिए।

संकल्प-विकल्प कहाँ ?

जल मे ककड डालने से असख्य तरगे वर्तुलाकार होकर सारे तालाव मे फैल जाती है। किन्तु जव वही जल जमकर वर्फ का आकार ग्रहण कर लेता है, तो उसमे तरगे उठने की जरा भी सभावना नही रहती है।

यदि इस तथ्य को हम एक रूपक के सहारे समझना चाहे तो आत्मा के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पड सकता है। आत्मा को यदि हम सरोवर माने तो उसमे पडने वाले माया-मोह तथा वासना के ककड उसे क्षुब्ध कर देते है, तरगायित करते है अथवा सकल्प-विकल्प की स्थिति मे डाल देते है। किन्तु जव यही आत्मा स्थिर होकर तथा सारी कालिमा से मुक्त होकर वर्फ के समान अपने रूप मे स्थिर हो जाती है तब उसमे कितने भी ककड फेंके जाये वह क्षुब्ध नही होती और सकल्प-विकल्प की द्विधाभरी स्थिति से नही गुजरती है। वस्तुत तप और अहिंसा के जो साधक है उनमे सकल्प-विकल्प की त्रुटियाँ नही होती।

मोक्ष के समीप

छोटे-छोटे पल समय की सुदीर्घ शृ खला को काट देते है। लक्ष्य तक अभियान करने वाले चरण न जाने कितने योजन की कष्टकारक यात्रा को समाप्त कर देते है। जल की एक-एक बूंद सूखती हुई विशाल सरोवर को भी सुखा देती है। उसी प्रकार साधना के दृढ सकल्प से पूर्ण साधक शनै -शनै मोक्ष के समीप पहुँच जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि आलस्य-प्रमाद को छोडकर यदि मनुष्य साहस एव सकल्प से काम ले तो उसकी साधना सिद्धि को अवश्य प्राप्त कर लेती है। लेकिन इसके लिए हिम्मत हारने की आवश्यकता नही है। कठिन से कठिन कार्य को सम्पन्न करने मे दृढ मनोवल की आवश्यकता है। बड़े कामो के लिए वडी साधना का सवल लेना पडता है। अत साधक के लिए अथवा तपस्वी के लिए आलस्य एव प्रमाद मृत्यु के समान है।

मन का नियन्त्रण

यह मन एक समुद्र के समान है। जैसे समुद्र मे तूफान आने की सभावना प्रकट होते ही सारे जल-जन्तु समुद्र के तल मे जा बैठते हैं, जहाँ तूफान का वेग उनका कुछ विगाड नही सकता। उसी प्रकार मन मे जब वासना के तूफान आने की सभावना हो तो साधक को आत्म ध्यान मे लीन हो जाना चाहिए।

मन के भीतर ही न जाने कितने सकल्प-विकल्पो का खजाना भरा हुआ है। यदि मनोनिग्रह अथवा तप के द्वारा हम इन सकल्प-विकल्पो पर विजय प्राप्त करले तो ससार की कोई भी वस्तु दुर्लभ नही रह सकती। लेकिन इसके लिए कठिन आत्म-नियन्त्रण होना चाहिए। इस सन्दर्भ मे एक लघु कथा वडी प्रेरणादायक है। एक वार एक सन्यासी घोड़े पर चढकर कही जा रहा था। मार्ग मे एक पथिक ने सन्यासी से घोड़े की कीमत जाननी चाही। सन्यासी ने कहा—"वेटा! कोई भी सकल्प-विकल्प किये विना यदि तुम राम-नाम का जप करते हुए मेरे साथ ढाई कोस चल सकते हो तो मैं यह घोडा उपहारस्वरूप तुम्हे दे दूंगा। पथिक ने समझा यह तो वडी आसान शर्त है। वह तुरन्त राजी हो गया। लेकिन कुछ दूर चलने पर उसके मन मे घोड़े से सम्वन्धित कई प्रश्न उठ खडे हुए। उसने सन्यासी से

पूछा—"वावा ! आप घोड़े के साथ लगाम देगे या नही ?" वावा ने उसके मन की अधीरता जान ली। अत उसे फटकारते हुए उन्होने कहा—"रे अज्ञानी पथिक ! अव तो तुम्हे मैं घोडा भी नही दूँगा।"

तात्पर्य यह है कि जिसने मन को नियन्त्रित कर लिया है, उसने विश्व की महान विभूति प्राप्त करली है।

तप की अग्नि

साधारण अग्नि लकडी को तो जलाकर राख कर देती है किन्तु यदि उसमे लोहे को तपाया जाये और फिर उससे किसी यन्त्र या औजार का निर्माण हो तो वह वडा मजबूत और दृढ होता है। इसी प्रकार तपस्या की अग्नि शरीर को तो जलाती या सुखाती है किन्तु आत्म-तत्त्व को मजबूत और पुष्ट बनाती है। अत· योगियो का वाह्य शरीर बहुत दुवला-पतला होने पर भी आत्म-बल से सम्पन्न रहता है। तपस्या की अग्नि उनकी शारीरिक स्निग्धता को तो समाप्त कर देती है लेकिन मन को प्रचण्ड शक्ति से भर देती है।

पालना कठिन है

दीक्षा ग्रहण करना तो सरल है किन्तु सयम के आदर्शो का मनोयोग पूर्वक पालन करना कठिन है। वडी-वडी ज्ञान की वाते कहकर शेखी वघारना और वात है किन्तु उनको आचरण मे उतारना टेढी खीर है। इस प्रसंग मे गाधीजी के जीवन मे घटित एक घटना वडी महत्त्वपूर्ण है—

गाधीजी जिन दिनो लन्दन मे रहते थे उनका एक ईसाई पादरी परिवार से वडा घनिष्ट सम्वन्ध हो गया। ईसाई पादरी ने सोचा कि यदि गाधीजी को भी हिन्दू धर्म से हटाकर ईसाई धर्म की ओर प्रवृत्त कर दिया जाये तो अति उत्तम हो। यही सोचकर वह उन्हे भोजन के लिए आमन्त्रित करता और गाधीजी के लिए अलग से शाकाहारी भोजन तैयार कराता। जव गाधीजी उसके घर जाते तो वह ईसाई धर्म की भूरि-भूरि प्रशसा करता और हिन्दू धर्म की आलोचना करता। एक दिन पादरी के वच्चो ने अपने पिता से पूछा कि—"पिताजी आप गाधीजी के लिए अलग से भोजन क्यो तैयार करवाते है ?" पादरी ने उत्तर दिया—"वेटे ! गाँधीजी अहिंसावादी हैं, ये मासाहार नही करते। इसलिए इनके लिए खाना अलग से वनाया

जाता है।" तब बच्चो ने उत्सुकतापूर्वक अपने पादरी-पिता से पूछा—"गाधीजी मास क्यो नही खाते ?" पिता ने गाधीजी की जीवनचर्या पर वडा गम्भीर प्रवचन दिया और मासाहार की निन्दा की। इससे बच्चे बड़े प्रभावित हुए और वे अपने पिता से कहने लगे कि तब तो हमे भी मास नही खाना चाहिए क्योकि इसमे वडी बुराई है। अब पादरी घबडाया क्योकि उसकी जिह्वा पर तो माँस का स्वाद चढ चुका था। अत उसने दूसरे दिन से गाधीजी को अपने घर मे भोजन के हेतु आमन्त्रित करना ही बन्द कर दिया।

सच्ची मुक्ति

किसी भी वस्तु के प्रति आसक्ति, इच्छा अथवा मोह रखना सबसे वडा बन्धन है। जो लोग इस बन्धन से मुक्त नही होते वे कभी भी मोक्ष के द्वार मे प्रवेश नही पा सकते। अत· सब प्रकार की इच्छाओ से मुक्त हो जाना ही सच्ची मुक्ति है। गीता मे श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म के प्रति सजग रहने का उद्बोधन दिया है, न कि उसके फल के प्रति। जो सयम-दीक्षा अथवा तपस्या के कठोर अनुशासन का पालन करते हुए भी इच्छाओ के वात्याचक्र मे घूम रहे हैं, वे सच्ची मुक्ति के अधिकारी नही है। वस्तुत. कामनाओ का अन्त ही सच्ची मुक्ति है।

साधना कहाँ होती है ?

वैभवशाली राज-प्रासादो की तुलना मे घास-फूस की झोपडियाँ साधना के हेतु अधिक उत्तम-स्थल हैं क्योकि जीवन की अखण्ड साधना जितने विस्तृत रूप मे झोपडी मे हो सकती है, उतनी राज-महल के सुखद वातावरण नही। महलो का जीवन आनन्द और विलास का जीवन है जबकि तपस्या मे और सयम का जीवन विलास से मेल नही खाता। अत· साधक को महलो के आकर्षण से बचकर झोपडियो के वैराग्यपूर्ण जीवन की उपासना करनी चाहिए।

आत्मगुणों की हानि

शरीर के छोटे से छोटे हिस्से अथवा अंग मे यदि कोई पीडा या गडबडी पैदा हो जाये तो मनुष्य बेचैन हो उठता है। यहाँ तक कि शरीर की

एक नस की पीडा भी हृदय को उद्वेलित कर देती है और मनुष्य करवटे बदलते-बदलते सारी रात बिता देता है।

किन्तु यहाँ एक दूसरा प्रश्न है। आज हम सर्वत्र देखते है कि मनुष्य की आत्मा वासना, भोग और विलास के प्रहारो से जर्जर होती जा रही है, उसके आत्मगुणो का दिवाला निकलता जा रहा है, मानवीय गरिमा और व्यक्तित्व की महिमा पद-तल के नीचे चूर-चूर होती जा रही है, फिर भी हमारी बेचैनी का कही पता नही है। यह युग आत्मा के ऊपर आये हुए सकटो का युग है। लेकिन मनुष्य इन चीजो के प्रति असावधान होकर सुख की नीद सो रहा है। उसको जितनी बेचैनी का अनुभव करना चाहिए उसका शताश भी परिलक्षित नही होता। क्या इसका यह अर्थ तो नही है कि मनुष्य की आत्मा ही जडवत् होती जा रही है?

दिव्य-प्रकाश

अमावस्या की घोर काल-रात्रि हो, सघन अन्धकार का चतुर्दिक साम्राज्य व्याप्त हो, जगली जीव-जन्तुओ का भय पग-पग पर चुनौती दे रहा हो, आसमान मे तारो की ज्योति मन्द पड गयी हो उस समय यदि दिग्भ्रमित यात्री को प्रकाश की एक किरण दृष्टिगोचर हो जाये तो वह अपने गतव्य मार्ग पर धैर्य के साथ बढता चला जाता है।

उसी प्रकार साधना के पथ पर पूर्वजन्मो के भयकर अन्धकार तथा वासना के कीटाणुओ को चुनौती देता हुआ साधक अपनी मजिल की ओर बढता जाता है, यदि उसके पास त्याग, सयम, तपस्या तथा वीतरागता का दिव्य-प्रकाश हो। बाहर के अन्धकार तथा भयानक कष्टो से साधना को उतनी क्षति नही पहुँचती जितनी अन्तरात्मा के अन्धकार तथा मायावी प्रलोभनो से प्राप्त होती है। अत आत्मा मे दिव्यप्रकाश को जागृत करने का निरन्तर प्रयास करना चाहिए।

साधना कैसी हो ?

अज्ञानता की स्थिति मे रहकर लाखो वर्षो की साधना की अपेक्षा सज्ञान दशा मे एक पल की साधना कही ज्यादा महत्त्वपूर्ण और फलवती है। जो साधना के मार्ग पर अन्धे की तरह दौडते चले जा रहे हैं, किन्तु जिन्हे अपनी मजिल का कोई पता नही है, उन्ही साधको के लिए भगवान

हो रही है, उसी को ज्ञानियो ने भाव-मरण कहा है। द्रव्य-मरण से तो परिवार को दुःख होना है किन्तु भाव-मरण से नही। यही तो ससार की विचित्रता है।

मन की स्वस्थता

शरीर की सुख-शाति के लिए आज मानव जितना अथक परिश्रम कर रहा है, उतना ही उसे मन की शाति तथा स्वास्थ्य के लिये प्रयत्नशील होना चाहिए। शरीर सुन्दर हो, वह सुवासित हो, इसके लिये हमने अनेक सौन्दर्य प्रसाधनो का निर्माण कर डाला है। किन्तु मन सुवासित हो, इसके लिए तो कुछ नही किया है।

शारीरिक स्वास्थ्य अनुकूल न होने पर व्यक्ति डॉक्टर या वैद्य की शरण मे जाकर औषधि-सेवन करता है लेकिन मन का स्वास्थ्य विगड़ जाने पर वह कौन से डॉक्टर या वैद्य की शरण ले?

जीवन मे छोटी-छोटी वातो के प्रति हम वहुत सावधानी रखते हैं। उदाहरणार्थ, गृहिणी वरावर इस वात का ध्यान रखती है कि उसके घर का अचार-चटनी खराव न हो। अत: वह वरावर अचार के वर्तन को धूप मे रखती है और उसमे दुर्गन्ध या सड़न न पैदा हो इस वात को ध्यान मे रखती है। इसी तरह सासारिक व्यक्ति वरावर अपने कपडो के प्रति सतर्क रहता है कि कही उस पर दाग न लग जाये।

लेकिन मन की शुद्धता पर किसी का ध्यान नही। संस्कृत मे कहा गया है—

'मनः शुद्धयैव शुद्धिः स्याद् देहिनां नात्र सशय.।'

अर्थात्—इसमे कोई सदेह नही कि मन की शुद्धि ही वास्तविक शुद्धि है। उसके विना केवल शरीर को कष्ट देना व्यर्थ है।

यदि मन निर्विकार है तो आप भले ही राज-महल या वगले मे रहे आपका सतत्व कायम रहेगा। लेकिन अशुद्ध मन से तो झोपडी मे रहकर भी साधु-वृत्ति जागृत नही हो सकती।

कौन श्रेष्ठ ?

वन्दर को वडा चचल माना जाता है। यदि किसी की चचलता की तुलना करनी होती है तो हम वन्दर का दृष्टात प्रस्तुत कर देते है।

लेकिन मैं समझता हूँ कि मनुष्य की अपेक्षा बन्दर मे सयम की मात्रा कही अधिक होती है। आज मनुष्य ने जिस तरह से सयम एव तपस्या के आदर्शो को तिलाजलि दे रखी है, उसकी तुलना मे बन्दर कही सयमित है।

वन्दर चाहे कितना ही भूखा क्यो न हो लेकिन वह रामफल व सीताफल नही खाता। कारण यह है कि इन फलो के साथ उसके आराध्य देव का नाम जुडा हुआ है।

अपने आराध्य देव के प्रति इतनी आदर-भक्ति और जीभ के प्रति इतना सयम तो विरले व्यक्तियो मे ही होता है। मनुष्य तो रस-लोलुप है, वह स्वाद के पीछे कहाँ-कहाँ नही भागता ? कुछ लोग तो धर्मादा अथवा धर्म-स्थानक की सम्पत्ति का भी दुरुपयोग करने मे नही हिचकते। यह कैसा सयम है ? क्या सयम के प्रश्न पर बन्दर मनुष्य से श्रेष्ठ नही है ?

यदि वन्दर से अपनी श्रेष्ठता दर्शानी है तो मनुष्य को और ज्यादा सयमित और आचारवान वनना होगा। जिसके जीवन मे सयम का अभाव है, नियमो तथा आचरणो के प्रति सजगता नही है, वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी भी नही है।

सच्ची प्रार्थना

प्रार्थना एक विश्राम-भवन है, जहाँ कोई उत्तेजना या अशाति नही। जहाँ मन की सारी शक्तियाँ एकाग्र हो गई हो और अपने आत्म-बोध को छोड कर अपना सम्पूर्ण किसी आराध्यदेव के आगे समर्पित कर दिया गया हो, वही सच्ची प्रार्थना होती है। सर्वस्व-समर्पण मे न तो कोई लेन-देन होता है, न कुछ माँग होती है और न कोई प्रतिदान की भावना होती है।

इस प्रसग मे स्वामी रामकृष्ण तथा विवेकानन्द का एक वार्तालाप स्मरण आ रहा है जिसमे प्रार्थना की उच्चतम अनुभूति का रहस्य छिपा हुआ है।

एक वार स्वामी रामकृष्ण ने विवेकानन्द से कहा था—"तुम जाकर देवी से सव कुछ माँग क्यो नही लेते ? आखिर इतनी परेशानी की क्या जरूरत है ?" लेकिन विवेकानन्द घटो मदिर मे आराधना करने के वाद भी खाली हाथ वापस लौटते। एक दिन मदिर से प्रार्थना करके वापस लौटने पर उन्होने रामकृष्ण से कहा—"क्या वताऊँ ? वहाँ पहुँचते ही भूल

महावीर के चिन्तन मे यह निर्देश दिया गया है कि वे जन्म-जन्मान्तरो मे साधु का बाना (वेशभूषा) इतनी वार ले चुके है कि यदि उन सब बानो को एकत्र किया जाये तो मेरु पर्वत के समान एक गगनचुम्वी ढेर लग सकता है, परन्तु उनकी आत्मा मे एक इच भी परिवर्तन सम्भव नही हुआ।

इस प्रकार की अध-साधना तो निरर्थक और दिग्भ्रमित करने वाली है। ऐसे साधक की अपेक्षा तो वह सद्गृहस्थ अच्छा है जो दया, करुणा, अहिंसा और मैत्री की उच्चतम भावनाओ से प्रेरित होकर जीवन के सम्पूर्ण उत्तरदायित्वो को स्वीकार कर रहा है। भगवान महावीर ने साधना का मानदड वेशभूषा को न मानकर भावना को माना है। अत साधु हो या गृहस्थ, यदि प्रामाणिकता और ईमानदारी से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है तो ठीक है, अन्यथा दोनो मे कोई मूलभूत अतर नही है।

जगाने की क्या आवश्यकता ?

एक वालक ने सोने की तैयारी करते हुए अपनी माँ से कहा—"माँ! मुझे जब भूख लगे तब तुम जगा देना।" माँ ने अपनी वाणी मे वात्सल्यरस उँड़ेलते हुए कहा—"बेटा! यह कहने की क्या आवश्यकता है? तुझे जब भूख लगेगी तो तू स्वय उठ बैठेगा और मुझसे भोजन माँग लेगा। अत: तुझे जगाने की कोई आवश्यकता ही नही है। भला, भूखे को कभी नीद आती है।"

मोक्ष-सुख के अभिलाषी के लिए यह दृष्टात आँखे खोल देने वाला है। जिसे सचमुच मोक्ष का सुख प्राप्त करना हो तो वह भला भवनिद्रा मे खर्राटे भरेगा? उसके लिए किसी को जगाने की जरूरत नही है। जिस दिन साधक या तपस्वी के मन मे मोक्ष की सच्ची भूख लगेगी वह स्वयं साधना के पथ पर अविकल भाव से दौड पडेगा।

आत्मा को नहीं देखते

आज के वैज्ञानिको ने दूर-सचार-केन्द्रो की स्थापना करके लाखो मील की दूरी से सदेश प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त कर ली है। टेलीफोन तथा वेतार के तार द्वारा विदेशो मे बसे हुए अपने हितैषियो तथा सम्वन्धियो से वार्तालाप करने मे व्यक्ति ने सफलता अर्जित कर ली है। टेलीविजन पर घर बैठे मनोरजनार्थ अनेक प्रकार के कार्यक्रमो को प्रस्तुत करके मानव-

जाति का वडा हित किया है। किन्तु वह आज तक अपनी आत्मा का दर्शन नही कर पा रहा है, जो उसके अत्यधिक निकट है। यह उसकी कितनी वडी असफलता है? वस्तुत. आत्म-दर्शन के लिए आज तक विज्ञान कोई टेलीविजन नही वना पाया है। इसके लिए तो तपस्या और सयम का टेलीविजन ही उपयुक्त है, जिसकी ओर मनुष्य का मन सहज रूप से अग्रसर नही होता।

आलोचना का आदर्श रूप

सामान्य जन आलोचना को अधिकतर बुरे अर्थ मे ही ग्रहण करते है। लेकिन यह उनकी भूल है। आलोचना तो आत्मशुद्धि का एक सुन्दर मार्ग है। जो साधक अपने गुरुजनो के समक्ष मन के समस्त दुर्गुणो को निकाल कर आत्मालोचन करता है, उसकी आत्मा का वोझ वैसे ही हलका हो जाता है जैसे भारवाहक के सिर से भारी वोझ उतार लेने से उसे शाति मिलती है।

इसीलिए 'भगवती सूत्र की टीका' मे कहा गया है कि मर्यादा मे रहकर निष्कपटभाव से अपने सभी दोपो को गुरु के आगे प्रकट कर देने का नाम आलोचना है। आज तो आलोचना का विकृत रूप ही समाज मे फैलता जा रहा है और आलोचना को पर-निन्दा का उपकरण-मात्र बना दिया गया है। जहाँ चार लोग एकत्र होगे वही एक-दूसरे की आलोचना-प्रत्यालोचना मे रस लेकर राग और द्वेष का वीज वोते है। जो साधक है अथवा जिनके मन मे परस्पर-वैर को कोई महत्त्व नही है वे तो पश्चाताप की अग्नि मे आत्मा को परिष्कृत कर कुन्दन बना डालते हैं। ऐसे लोग आत्मालोचन से मुँह नही चुराते वलिक वड़े साहस के साथ अपने दुर्गुणो का पर्दाफाश कर देते है।

भाव-मरण

एक उक्ति है कि सोते समय मौत को सिरहाने एव जागते समय सामने खडी समझकर काम करो। इसका तात्पर्य यही है कि मृत्यु का सकट सदैव निकट ही मँडराया करता है लेकिन मनुष्य गाफिल होकर सयम एव तपस्या को छोड कर वासना के गर्त मे गिरता है।

मानव जव से गर्भ मे आता है, उसकी आयु क्षय होने लगती है, वह दिन-प्रतिदिन मृत्यु के निकट पहुँचता जाता है। प्रत्येक पल जो आयु क्षय

हो रही है, उसी को ज्ञानियो ने भाव-मरण कहा है। द्रव्य-मरण से तो परिवार को दुःख होना है किन्तु भाव-मरण से नही। यही तो संसार की विचित्रता है।

मन की स्वस्थता

शरीर की सुख-शाति के लिए आज मानव जितना अथक परिश्रम कर रहा है, उतना ही उसे मन की शाति तथा स्वास्थ्य के लिये प्रयत्नशील होना चाहिए। शरीर सुन्दर हो, वह सुवासित हो, इसके लिये हमने अनेक सौन्दर्य प्रसाधनो का निर्माण कर डाला है। किन्तु मन सुवासित हो, इसके लिए तो कुछ नही किया है।

शारीरिक स्वास्थ्य अनुकूल न होने पर व्यक्ति डॉक्टर या वैद्य की शरण मे जाकर औषधि-सेवन करता है लेकिन मन का स्वास्थ्य विगड़ जाने पर वह कौन से डॉक्टर या वैद्य की शरण ले ?

जीवन मे छोटी-छोटी वातो के प्रति हम वहुत सावधानी रखते हैं। उदाहरणार्थ, गृहिणी वरावर इस वात का ध्यान रखती है कि उसके घर का अचार-चटनी खराव न हो। अत वह वरावर अचार के वर्तन को धूप मे रखती है और उसमे दुर्गन्ध या सडन न पैदा हो इस वात को ध्यान मे रखती है। इसी तरह सासारिक व्यक्ति वरावर अपने कपडो के प्रति सतर्क रहता है कि कही उस पर दाग न लग जाये।

लेकिन मन की शुद्धता पर किसी का ध्यान नही। सस्कृत मे कहा गया है—

'मनः शुद्धयैव शुद्धिः स्याद् देहिनां नात्र संशयः।'

अर्थात्—इसमे कोई सदेह नही कि मन की शुद्धि ही वास्तविक शुद्धि है। उसके विना केवल शरीर को कष्ट देना व्यर्थ है।

यदि मन निर्विकार है तो आप भले ही राज-महल या वगले मे रहे आपका सतत्व कायम रहेगा। लेकिन अशुद्ध मन से तो झोपडी मे रहकर भी साधु-वृत्ति जागृत नही हो सकती।

कौन श्रेष्ठ ?

वन्दर को वडा चचल माना जाता है। यदि किसी की चचलता की तुलना करनी होती है तो हम वन्दर का दृष्टात प्रस्तुत कर देते है।

लेकिन मैं समझता हूँ कि मनुष्य की अपेक्षा बन्दर मे सयम की मात्रा कही अधिक होती है। आज मनुष्य ने जिस तरह से सयम एव तपस्या के आदर्शो को तिलाजलि दे रखी है, उसकी तुलना मे बन्दर कही सयमित है।

बन्दर चाहे कितना ही भूखा क्यो न हो लेकिन वह रामफल व सीताफल नही खाता। कारण यह है कि इन फलो के साथ उसके आराध्य देव का नाम जुड़ा हुआ है।

अपने आराध्य देव के प्रति इतनी आदर-भक्ति और जीभ के प्रति इतना सयम तो विरले व्यक्तियो मे ही होता है। मनुष्य तो रस-लोलुप है, वह स्वाद के पीछे कहाँ-कहाँ नही भागता ? कुछ लोग तो धर्मादा अथवा धर्म-स्थानक की सम्पत्ति का भी दुरुपयोग करने मे नही हिचकते। यह कैसा सयम है ? क्या सयम के प्रश्न पर बन्दर मनुष्य से श्रेष्ठ नही है ?

यदि बन्दर से अपनी श्रेष्ठता दर्शानी है तो मनुष्य को और ज्यादा सयमित और आचारवान बनना होगा। जिसके जीवन मे सयम का अभाव है, नियमो तथा आचरणो के प्रति सजगता नही है, वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी भी नही है।

सच्ची प्रार्थना

प्रार्थना एक विश्राम-भवन है, जहाँ कोई उत्तेजना या अशाति नही। जहाँ मन की सारी शक्तियाँ एकाग्र हो गई हो और अपने आत्म-बोध को छोड कर अपना सम्पूर्ण किसी आराध्यदेव के आगे समर्पित कर दिया गया हो, वही सच्ची प्रार्थना होती है। सर्वस्व-समर्पण मे न तो कोई लेन-देन होता है, न कुछ माँग होती है और न कोई प्रतिदान की भावना होती है।

इस प्रसग मे स्वामी रामकृष्ण तथा विवेकानन्द का एक वार्तालाप स्मरण आ रहा है जिसमे प्रार्थना की उच्चतम अनुभूति का रहस्य छिपा हुआ है।

एक बार स्वामी रामकृष्ण ने विवेकानन्द से कहा था—"तुम जाकर देवी से सब कुछ माँग क्यो नही लेते ? आखिर इतनी परेशानी की क्या जरूरत है ?" लेकिन विवेकानन्द घटो मदिर मे आराधना करने के बाद भी खाली हाथ वापस लौटते। एक दिन मदिर से प्रार्थना करके वापस लौटने पर उन्होने रामकृष्ण से कहा—"क्या बताऊँ ? वहाँ पहुँचते ही भूल

जाता हूँ कि मेरी कोई माँग भी है अथवा मुझे किसी चीज की आवश्यकता भी है ?" रामकृष्ण ने उस समय कहा था—"विवेकानन्द अब सब कुछ पा गया है। यदि प्रार्थना के क्षणो मे भी उसके मन मे कुछ माँगने की इच्छा बनी रहती तो मैं समझता कि वह प्रार्थना की कला से अनभिज्ञ है।"

यह बात बहुत विचारणीय है। आज मदिरो मे प्रार्थना करने वालो की तो भीड लगी है किन्तु प्रार्थना की वास्तविक कला किसे आती है ? प्रार्थना कोई व्यापार नही है, जहाँ लेन-देन की सम्भावना हो, अधिकाधिक मुनाफे अथवा लाभ की चिन्ता हो। यदि मन मे इस प्रकार की भावनाये लेकर प्रार्थना की गई है तो वह निष्फल और निरर्थक है।



१०

क्रोध की हार : क्षमा की जीत

- क्रोध कहाँ ?
- गुण-दोष-ग्राही
- अपनी-अपनी दृष्टि
- कौन कहाँ ?
- अहंकार
- व्यर्थ अभिमान
- क्रोध और स्वार्थ
- अपनत्व की भावना
- क्रोध से मन फेरिये
- लक्ष्मी का निवास-स्थान
- सुधार से चिढ़ क्यों ?
- क्षमा ज्ञान का भूषण
- छोटा इलाज
- क्षमा की महानता
- आलोचना
- तीन प्रकार की अग्नि

- ☐ क्रोध का उपचार—प्रेम
- ☐ वाद विवाद नही, स्नेह !
- ☐ बडप्पन की लडाई
- ☐ क्रोध महाचाण्डाल
- ☐ खाली लिफाफा !
- ☐ एक और फेंकिये
- ☐ क्षमावान
- ☐ सहन-शक्ति
- ☐ सत्त्ववान की क्षमा
- ☐ नही गिरने दूंगी
- ☐ कोई गम नही

क्रोध की हार : क्षमा की जीत

क्रोध कहाँ ?

क्रोध मानव के हृदय मे ही है, कही बाहर नही। बाहर का निमित्त पाकर वह उद्‌बुद्ध हो जाता है। सुप्रसिद्ध सत और भूदान-विचारक विनोबा भावे ने लिखा है—"हम कहते है गुस्सा आ गया, किन्तु आ कहाँ से गया ? अन्दर ही तो था—पानी मे पत्थर डालने से गदगी ऊपर आ गई।"

किसी प्रसगवश एक व्यक्ति को क्रोध आ गया। वह वहुत उत्तेजित हो गया और आँखे नीली-पीली करने लगा। उसके बगल मे बैठे मित्र ने कहा—"पधारिये ! पधारिये ! कैसे आना हुआ ?"

उस व्यक्ति ने अगल-बगल देखा तो कही कोई न था। उसने मित्र से पूछा—"अरे ! किसको बुला रहे हो ?"

मित्र ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"क्रोधराज पधारे है न आपके शरीर मे। उन्ही को बुला रहा हूँ।"

यह सुनते ही दोनो मित्र हँस पडे। अब क्रोध का पारा नीचे उतरने लगा और पश्चाताप की भावना जागृत होने लगी।

गुण-दोष-ग्राही

श्री उत्तराध्ययनसूत्र मे कहा गया—न सिया तोत्तगवेसए—अर्थात् दूसरो के छलछिद्र नही देखना चाहिए। लेकिन जो मनुष्य स्वभाव से दोष-ग्राही होता है वह तो गुणो का परित्याग कर दोषो को ही ढूँढता रहता है। उदाहरणार्थ, जल से भरे सरोवर मे जहाँ कमल प्रफुल्लित होते है वहाँ भ्रमर स्वत पराग की खोज मे आकर मँडराने लगते है। किन्तु कमल के पास रात-दिन रहने वाले मेढक तो उस पराग से तटस्थ रहकर टर्र-टर्र ही

वोलते रहते है। गाय के थनो के पास लगने वाली जोक गाय के रक्त का ही पान करती है, दुग्ध का नही। उसे दूध से ज्यादा रक्त ही स्वादिष्ट लगता है। इसी प्रकार दोष-ग्राही व्यक्ति की दृष्टि हमेशा अवगुणो पर जाती है, वे गुणो से अपने को सदैव विलग रखते हैं।

इस कुसस्कार से वचने के लिये गाधीजी के पास वन्दरो की तीन मूर्तियाँ थी। पहले वन्दर ने अपनी आँखे वन्द कर रखी थी, दूसरे ने अपना मुँह तथा तीसरे ने अपने कानो को वन्द कर लिया था। गाधीजी इन मूर्तियो की व्याख्या वड़े सुन्दर ढग से किया करते थे। उनका कहना था कि पहला वन्दर अपने नेत्रो को वन्द करके यही सन्देश दे रहा है कि किसी को वुरी निगाह से मत देखो। दूसरा वन्दर मुँह वन्द करके यह शिक्षा दे रहा है कि किसी के प्रति अपशब्द मत वोलो और तीसरा कानो मे उँगली इसलिए लगाये हुए है कि किसी की निन्दा मत सुनो।

मैं समझता हूँ कि जीवन उत्थान के लिए यह तीनो ही महामत्र है। यदि हम अपने दोपो को परित्याग करने का निर्णय ले ले तो महापुरुष वनने मे कुछ भी देर नही लगेगी।

अपनी-अपनी दृष्टि

'प्रसग रत्नावली' मे एक वडी सुन्दर वात कही गयी है—

गुणेषु क्रियतां यत्न, किमाटोपै प्रयोजनम्।
विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गाव. क्षीर-विर्वाजता· ॥

अर्थात्—गुणो के लिए प्रयत्न करो, आडम्वर मे क्या है ? दूध न देने वाली गाये केवल घंटियाँ वाँधने से नही बिका करती ?

आजकल मैं देखता हूँ कि जन-सामान्य की दृष्टि जितनी जल्दी दूसरो के दोपो के प्रति रहती है उतनी अपने प्रति नही। सागर के तट पर हस मुक्ता के अनुसधान मे व्यस्त रहता है, उसे सागर के किनारे पर पड़े हुए ककड अथवा सीपियाँ जरा भी आकृष्ट नही करती। जव मुक्ता मिलती है तभी वह आहार करता है। लेकिन कौवे तथा वगुले मोती की परवाह न करके मछली की ही खोज मे लीन रहते हैं। अत· जो गुणग्राही सज्जन होते है वे तो गुणो पर ही अपनी दृष्टि रखते है जवकि दोषदर्शी हमेशा दूसरो की दुर्वलता पर दृष्टि केन्द्रित करते हैं।

कौन कहाँ ?

एक मनुष्य किसी जंगल से होकर अपने गाँव जा रहा था। रास्ते मे उसे चार स्त्रियाँ मिली। परिचय पूछने पर उन चारो ने अपना नाम क्रमश बुद्धि, लज्जा, हिम्मत और तन्दुरुस्ती वतलाया। उस यात्री को उनके निवास-स्थान की जानकारी चाहिए थी। अत पूछने पर उन चारो ने अपने अपने निवास-स्थान वतलाये। बुद्धि ने कहा—"मेरा निवास तो दिमाग मे है, मैं वही रहती हूँ।"

अव लज्जा की वारी थी। उस व्यक्ति ने लज्जा से भी यही प्रश्न पूछा। लज्जा ने वड़े सकोच के साथ उत्तर दिया—"वन्धु ! मैं तो लोगो के नेत्रो मे निवास करती हूँ। आवश्यकता पडने पर आती-जाती हूँ।"

हिम्मत ने गर्व से सीना तानकर उस व्यक्ति के प्रश्न का उत्तर दिया—"मेरा घर तो हृदय मे है। मेरे कारण ही लोग असम्भव को सम्भव वना देते है।"

अन्त मे तन्दुरुस्ती की वारी आई। उसके अग-प्रत्यग मे सौष्ठव झलक रहा था। वडे सयत स्वर मे उसने कहा—"भाई मैं तो लोगो के पेट मे रहती हूँ। यदि मनुष्य मेरा कहा माने तो उसे डॉक्टर या वैद्य की शरण मे जाने की जरूरत ही न पडे।"

अपना-अपना परिचय देकर उन चारो नारियो ने उस मनुष्य से विदा ली और भविष्य मे काम पडने पर विना किसी सकोच से मिलने का आग्रह किया। यात्री ने फिर अपनी राह पकड ली।

अभी वह कुछ ही दूर गया था कि उसको अपने आगे चार पुरुष दिखाई दिये, चारो से परिचय एव निवास-स्थान पूछने पर पता चला कि उनके नाम क्रमश क्रोध, लोभ, भय एव रोग है। उन चारो ने भी अपने निवास-स्थान क्रमश दिमाग, आँख, हृदय और पेट वतलाये। उस यात्री को वडा आश्चर्य हुआ कि अभी चारो स्त्रियो ने भी अपने निवास-स्थान यही वतलाये थे। उसने विस्मित होकर कहा—"वहाँ तो बुद्धि, लज्जा आदि रहती है।" तव क्रोध ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—"हमारे आने पर वे (क्रोध से बुद्धि, लोभ से लज्जा, भय से हिम्मत और रोग से तन्दुरुस्ती) घर छोडकर भाग जाती हैं।"

इस दृष्टात अथवा रूपक से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि क्रोध आदि दुर्गुण सभी सद्‌गुणो का विनाश करने मे समर्थ है।

अहंकार

ईर्ष्या और अहकार क्रोध के दाये-बाये चलने वाले सहयोगी है। इनमे मे एक के जागृत होते ही अवशेष दोनो भी क्रियाशील हो उठते हैं। अत इन तीनो से वचकर चलना ज्ञानी पुरुषो के लिए सर्वथा अनिवार्य है।

अग्रेजी के सुप्रसिद्ध लेखक और विचारक मार्क ट्वेन ने व्यर्थ अभिमान करने वालो पर व्यग्य कसते हुए लिखा है—"अक्सर मुर्गी जिसने सिर्फ अण्डे को जन्म दिया है ऐसे फडफडाती है जैसे किसी नक्षत्र को जन्म दिया हो।"

आज हम समाज मे ऐसे व्यर्थ अभिमान के दृश्य प्राय. प्रतिदिन देखते है। धर्म और समाज का थोडा-सा कार्य करने के वाद अपने को धर्मराज और दानवीर की उपाधि से सुशोभित होने की उतावली अनेक लोगो मे है। उनकी इच्छा के विरुद्ध यदि किसी ने जरा भी कोई वात कह दी तो वे आग-ववूला हो उठते है।

अत व्यर्थ अभिमान की गतिविधियो से मुक्त होकर जितनी जल्दी हम विनम्रता और सौजन्य के निर्मल जल से अपनी आत्मा को पवित्र कर सके वही अत्युत्तम है। इसीलिए तो कहा गया है—

अकडने से नाहक ही टूटेगा सर।
अगर दर है नीचा तो झुककर गुजर॥

व्यर्थ अभिमान

व्यर्थ अभिमान के उदाहरण तो आये दिन देखने को मिलते हैं लेकिन स्वाभिमान एव आत्म-सम्मान की झलकियाँ आज जन-समाज में वहुत कम उपलब्ध होती है।

कहते है कि एक सेठ ने अपनी पहली पत्नी के स्वर्गवास के वाद दूसरा विवाह किया। नयी नवेली पत्नी जरा अहकारिणी थी। वह समझती थी कि उसे गृह-कार्य एव अतिथि-सत्कार का वडा सुन्दर ज्ञान है। इसलिए यदि कोई उसे नयी वात भी सिखलाता तो वह कह देती कि यह तो मैं पहले

से जानती हूँ। सेठ भी उसके इस व्यवहार से तग आ गया। लेकिन करता क्या ?

एक दिन सयोग से सेठ के दो-चार पुराने मित्र आ धमके। सेठ ने पत्नी से भली-भाँति स्वादिष्ट व्यजन वनाने को कहा। सेठानी ने सोचा कि आज सेठ के मित्रो को खीर वनाकर खिलायी जाय लेकिन खीर मे हर चीज की उचित मात्रा का उसे ज्ञान न था।

सेठ के पडोस मे एक वडी अनुभवी वुढिया रहा करती थी जो सेठानी के व्यर्थ अभिमान से परिचित थी। वह हमेशा सोचती रहती थी कि कोई ऐसा मौका मिले कि सेठानी की इस भावना का तिरस्कार किया जा सके। उधर सेठानी ने खीर वनाने के लिए बुढिया से निर्देशन प्राप्त करना चाहा। जैसे ही सेठानी ने बुढिया के सामने खीर वनाने का प्रस्ताव रक्खा कि बुढिया ने उसे वताया कि चार सेर दूध मे एक पाव नमक, थोडी हलदी-मिरच और इमली डालकर राई का वघार दे देना।

सेठानी ने वुढिया की सारी वाते सुनकर अभिमान से कहा—"वस! वस! यह तो मैं भी जानती हूँ।" घर आकर उसने वुढिया के वताये ढग से खीर तैयार कर दी। सेठ जव मित्रो के साथ खाने वैठे तो इस अनोखी खीर का स्वाद लेते ही सिर पीटने लगे।

आज अधिकतर व्यक्तियो की यही दशा है। वे सेठानी की भाँति ही ज्ञान की नूतन वातो को न सीखने का हठ कर रहे है और उन्होने अपने मन-मन्दिर के दरवाजे व्यर्थ अभिमान के कारण वन्द कर लिये है। अभिमान तो शुद्ध ज्ञान का परम शत्रु है। यदि ज्ञान प्राप्त करना है तो अभिमान के शिखर से नीचे उतरकर ज्ञान की गगा मे डुवकी लगानी चाहिए।

क्रोध और स्वार्थ

एक वार कुत्तो की सभा हुई और यह प्रस्ताव विचारार्थ आया कि हम लोग आपस मे फैली हुई दुश्मनी को छोडकर गले मिले और मानव-समाज जो भी हमे देता है, उसे वाँटकर खायें। प्रस्ताव वडा सुन्दर था अत· सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया।

अभी सभा समाप्त भी न हुई थी कि आकाश मे उडती हुई चील के मुँह से एक हड्डी उसी सभा-स्थल मे गिर पडी। वस, फिर क्या पूछना था ?

प्रस्ताव को ठुकराकर सभी कुत्ते एक साथ उस हड्डी को पाने के लिए लपके। आपस मे कहा-सुनी आरम्भ हो गयी और भौ-भौ के स्वर से भयानक कोलाहल मच गया। गाँव के रहने वाले इस शोर से परेशान होकर डडे लेकर दौड़े और कुत्तो की अच्छी आवभगत की।

कहने का मतलव यह है कि स्वार्थ की एक छोटी वस्तु ने प्रस्ताव पर पानी फेर दिया और आपसी सघर्ष का वडा प्रवल कारण उपस्थित कर दिया। कुत्ता हो या मनुष्य, सब जगह स्वार्थ के लिए मैत्री के दृढ स्तम्भ भी भग्न कर दिये जा रहे हैं। आज जीवन में जो सर्वत्र अशान्ति और कोलाहल छाया है, उसके मूल कारण मे स्वार्थ की दुर्गन्ध है। स्वार्थ के कारण कुत्ते आपस मे लड पड़े और उसी हाहाकार से उत्तेजित होकर ग्रामीण क्रोध मे आकर डडे और लाठी लेकर दौड़े। इससे कुत्तों की आपसी मैत्री भग्न हो गई और क्रोध के कारण मानव-समाज अपनी शान्ति खो बैठा।

अत कहा जा सकता है कि स्वार्थ और क्रोध दोनो सगे भाई है। एक के विना दूसरे का काम नही चलता और दोनो ही समाज मे वड़े से वडा उत्पात मचाने मे समर्थ हैं।

अपनत्व की भावना

क्रोध का परिशमन अपनत्व की भावना से ही सम्भव है। भागवत मे कहा गया है—

जिह्वां क्वचित् संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायाः कतमाय कुप्यते।

अर्थात्—अपने दाँतो से ही कभी अपनी जिह्वा के कट जाने पर जो पीडा होती है, उसके लिए मनुष्य किस पर क्रोध करे? यदि ससार को अपनत्व की भावना से देखा जाये तो किसी भी अपराधी पर क्रोध उत्पन्न न हो। प्रतिदिन हम देखते हैं कि दाँतो से जीभ कट जाती है। पैर से अपने पैर को ही ठोकर लग जाती है, कपड़े या हाथ कभी-कभी आँख में चुभ जाते हैं, फिर भी दाँत, पैर, हाथ पर क्रोध नही आता। क्यो? इसीलिए न कि ये सारे आपके शरीर के ही अग हैं।

इसी प्रकार संसार के लोगो को आत्मवत् देखने की आदत डालनी चाहिए। जव सभी अपने हैं तो क्रोध किस पर किया जाय? क्रोध पर विजय प्राप्त करने का यह सवसे सुन्दर व सहज उपाय है।

क्रोध से मन फेरिये

किसी व्यक्ति ने एक अनुभवी साधु से वडी विनम्रता से पूछा—"महाराज ! शान्ति का रास्ता वतलाइये।" साधु ने अपना मुँह फेर लिया। उस व्यक्ति को बड़ा आश्चर्य हुआ कि महाराज ने तो कोई उत्तर ही नही दिया। आखिर वात क्या है ? उसने साधु से पुन· अपना प्रश्न दुहराया। इस वार साधु ने फिर विना उत्तर दिये मुँह फेर लिया और दो-चार कदम दूर जाकर खड़ा हो गया।

अव वह व्यक्ति साधु के चरणो पर गिर पडा और उसने अपनी शका के समाधान का निवेदन किया। साधु ने उसे समझाते हुए कहा—"वत्स ! मैंने तो तुम्हारी शका का समाधान पहले ही कर दिया था। जव मैं मुँह फेर कर खडा हो गया तो इसका यही आशय था कि भौतिक सुखो से मुँह फेरने पर ही शान्ति का रास्ता मिल सकता है। लेकिन जव तुमने वही प्रश्न फिर से दुहराया तो मैं दो-चार कदम और हटकर खडा हो गया। इसका तात्पर्य यही था कि मुँह फेरना ही पर्याप्त नही है, बल्कि उस भौतिक सुख से दो-चार कदम हटकर खडा होना भी आवश्यक है।"

साधु के कथन मे जीवन की वहुत वडी सचाई छिपी हुई है। यदि हम अपने जीवन मे शान्ति और सुखो का स्वागत करना चाहते हैं तो पहले क्रोध से मुँह फेरना चाहिए। क्रोध के रहते हुए शान्ति की कामना आकाश-कुसुम की तरह दुर्लभ वस्तु है।

लक्ष्मी का निवास-स्थान

एक लोक कथा वहुत प्रचलित है। एक वार इन्द्र कही जा रहे थे कि रास्ते मे उनकी भेंट लक्ष्मी से हो गई। इन्द्र ने लक्ष्मी को रास्ते मे बैठा देखकर पूछा—"आजकल आपका निवास-स्थान कहाँ है ?"

लक्ष्मी ने वडी शालीनता से उत्तर दिया—"देवराज इन्द्र ! आपने यह विचित्र प्रश्न क्यों पूछा ? क्या आप समझते है कि मैं अपना निवास-स्थान हमेशा वदलती रहती हूँ ? मैं इस तरह की भगोडी नही हूँ कि आज यहाँ और कल वहाँ भागती फिरूँ। मेरा तो निवास वही है जहाँ—

गुरवो यत्र पूज्यन्ते, वाणी यत्र सुसंस्कृता।
अदन्तकलहो यत्र, तत्र शक्र ! वसाम्यहम् ॥

अर्थात्—जहाँ गुरुजनो की पूजा होती है तथा वाणी सुशीतल एव सुसस्कृत रूप मे प्रयुक्त होती है, जहाँ प्रेम की जीवन-दायिनी धाराये प्रवाहित रहती हैं तथा कलह, घृणा और द्वेष का जहाँ लेशमात्र भी अस्तित्व नही है, मैं वही निवास करती हूँ। लक्ष्मी का यह उत्तर सामाजिक जीवन की सम्पन्नता तथा समृद्धि का अमोघ मन्त्र है। आज सभी लक्ष्मी की पूजा मे व्यस्त हैं, किन्तु उन्हे यही पता नही है कि लक्ष्मी का वास्तविक निवास कहाँ होता है ? स्वार्थ एव विश्वासघात के द्वारा जो लोग लक्ष्मी का सग्रह करना चाहते हैं उन्हे इस कथन की गरिमा को अगीकार करना चाहिए।

सुधार से चिढ़ क्यों ?

आज नवयुवको मे बडी हलचल है। जहाँ देखिये वही आन्दोलन का वाजार गरम है। लोग कहते हैं कि हमारे देश के नवयुवक नाराज हैं और अमेरिका तथा पश्चिमी देशों के आधार पर यहाँ भी 'भूखी और नाराज पीढी' का उदय हो चुका है।

वस्तुत. यह नाराजगी अथवा क्रोध न्यायोचित है। समाज की सडी-गली मान्यताओ, अंधविश्वासो, साम्प्रदायिक विभिन्नता पर जितना भी नाराज हुआ जाय, हितकर है। समाज की वे परम्पराये जो अस्वस्थ हैं, किन्तु जो अमरवेल की तरह हमारे जीवन का स्वस्थ रक्त चूस रही हैं, उनको तो नाराज होकर उखाड फेकना ही चाहिए। उनके प्रति किसी प्रकार की ममता अथवा सरक्षण की आवश्यकता नही है।

किन्तु इस सन्दर्भ मे हमे भगवान महावीर की यह चेतावनी भी नही भूलनी चाहिए—'कोहो पीइ पणासेइ'—अर्थात् 'क्रोध प्रेम की हत्या कर डालता है।' अगर क्रोध के द्वारा प्रेम के सम्बन्धो के टूटने का खतरा है, परिवार एवं समाज की सर्वोत्तम निधियो के नष्ट हो जाने का भय है तो इस क्रोध रूपी ज्वाला से अपने को दूर रखना ही चाहिए।

कुछ लोगो का विचार है कि हम अपने पुराने समाज की भित्तियों को चूर-चूर कर देंगे। कोई भी समझदार आदमी ऐसे पुराने मकान मे नही रहना चाहेगा जिसके प्रतिक्षण गिर जाने का भय हो। भले ही इस मकान को उसके बाप-दादो ने अथवा पुरखो ने बडे श्रम एवं यत्न से बनवाया हो। यदि समाज रूपी मकान इतना पुराना हो गया है कि उसके भहराकर गिर जाने

का खतरा है तो उसे अवश्य छोड देना चाहिए अथवा उसका जीर्णोद्धार करना चाहिए। लेकिन जब आप पुराने मकान को तोडकर नया वनवाना चाहते है तो उसके सबसे खतरनाक हिस्से को पहले तोडते हैं और जैसे-जैसे मकान वनता जाता है आप उसका दूसरा हिस्सा तोडते जाते है। कही ऐसा तो नही होता कि आप सारे मकान को एक साथ गिराकर साफ मैदान मे वैठ जाये। तोड़ने के पूर्व नव-निर्माण की योजना आवश्यक है। सिर्फ तोडना ही जीवन का लक्ष्य नही है। इसीलिए भारतीय जीवन-दर्शन मे यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है—"यदि क्रोध करना है तो उसको निकालने के लिए क्रोध पर ही क्रोध करो। क्रोध के अतिरिक्त और किसी पर क्रोध मत करो।"

इस सिद्धान्त को गाँठ वाँध लेना चाहिए। जीवन का यह वडा मार्ग-दर्शक सूत्र है। यदि मन मे अकारण क्रोध हो तो स्वयं को पश्चाताप की पवित्र गगा मे डुवकी लगाने को प्रेरित करना चाहिए। वह क्रोध वड़ा ही खतरनाक है जो अपना ही अहित करने को तत्पर हो। अत: क्रोध की उस दावाग्नि से स्वय को सुरक्षित रखने का प्रयत्न आवश्यक है।

क्षमा : ज्ञान का भूषण

आचार्य क्षेमेन्द्र ने लिखा है—

नरस्य भूषणं रूपं, रूपस्याभूषणं गुणः।
गुणस्य भूषणं ज्ञान, ज्ञानस्याभूषणं क्षमा ॥

अर्थात्—नर का भूषण रूप है, रूप का भूपण गुण है, गुण का भूपण ज्ञान है और ज्ञान का भूषण क्षमा है।

इसीलिए सन्तो, ज्ञानियो और महापुरुषो ने अपने जीवन मे क्षमा को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। प्रकृति ने भी क्षमा को ही जीवन का मूल-मन्त्र माना है। कहा जाता है कि काशी मे कबीर एक दिन नगे सिर तालाव मे स्नान करने जा रहे थे। इतने मे उनके दर्शनार्थ आता हुआ एक जमीदार रास्ते मे मिल गया। उसने कवीर के बारे मे केवल सुन रक्खा था, कभी उनसे भेंट नही हुई थी। उसने कवीर को नही पहचाना, वल्कि वह सोचने लगा कि इस साधु ने नगा शीश दिखलाकर यात्रा को अशुभ कर दिया और अपशकुन उपस्थित कर दिया। अत उसने कवीर को वड़ी भद्दी गालियाँ

दी और उनका अपमान किया। कवीर विना बोले सव कुछ सहते गये। किसी प्रकार उससे मुक्ति पाकर कवीर तालाव की ओर स्नान के लिए वढे।

इधर जमीदार कवीर के घर का पता पूछते-पूछते आया और यह जानकर कि कवीर स्नान के लिए गये हैं, उनका इतजार करने लगा। थोडी देर मे देखा कि यह तो वही साधु है, जिसका उसने रास्ते मे अपमान किया है। अव तो वह बड़े असमजस मे पड़ा और कबीर के पैरो पर गिरकर क्षमा माँगने लगा। कवीर ने हँसते हुए उसे गले लगा लिया और कहा—"मेरे भाई! अकारण क्रोध मनुष्य की आत्मा का महाशत्रु है, अत: उससे वचो!"

छोटा इलाज

कभी-कभी हम छोटी गलतियो से भी वहुत उत्तेजित होकर मानसिक सन्तुलन विगाड देते है। मैंने ऐसे लोगो को देखा है कि जो क्रोध मे तमतमाने लगते है, उनका शरीर पीपल के पत्ते की भाँति काँपने लगता है और चेहरा विद्रूप हो जाता है।

सुयोग्य डाक्टर या वैद्य छोटी वीमारियो का छोटा इलाज करते हैं। कही ऐसा नही होता कि वुखार के लिए यक्ष्मा का टीका लगा दिया जाये। लेकिन हम जीवन मे इस सिद्धान्त का पालन नही करते। यदि किसी ने थोडा भी इधर-उधर कर दिया तो आग-ववूला हो जाते हैं और बड़े से वडा दण्ड देने का प्रयत्न करने लगते हैं। भला यह कहाँ की रीति है?

अमेरिका मे क्षमा-मूर्ति रैले साहव की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि एक वार किसी ने क्रोध मे आकर उनके हाथ पर थूक दिया। इस पर रैले साहव के अधीनस्थ कर्मचारी को वडा क्रोध आया और उसने पिस्तौल निकालकर उस व्यक्ति पर गोली चलाने का इरादा किया। रैले साहव ने उस कर्मचारी को शीघ्रता से रोकते हुए कहा—"इसका इलाज तो कपड़े से भी हो सकता है।" यह कहकर उन्होने अपने रूमाल से थूक को पोछ डाला।

यह एक क्षमाशील व्यक्ति का सुन्दर उदाहरण है। प्रतिदिन जीवन मे ऐसे प्रसग उपस्थित होते है जव हम-आप रैले साहव का उदाहरण सामने रखकर मानसिक सतुलन का परिचय दे सकते हैं।

क्षमा की महानता

प्रत्येक धर्म और समाज मे क्षमा की महानता को स्वीकृति प्राप्त है। ससार का चाहे कोई भी धर्म-ग्रन्थ हो अथवा महापुरुष हो, सभी ने एक स्वर से क्षमा की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है।

कुरान मे पैगम्वर मुहम्मद साहव ने साफ-साफ कहा है—"जो गुस्सा पी जाते हैं और लोगो को माफ कर देते हैं, अल्लाह ऐसी नेकी करने वाले को प्यार करता है।"

तथागत ने इसी प्रकार अपने प्रिय भिक्षुओ को सम्बोधित करते हुए कहा था—"भिक्षुओ! तुम्हे मृदु अथवा कठोर, शत्रुभाव से अथवा मित्र भाव से, समय-असमय तथा सच्चा-झूठा कोई कुछ भी कहे, तुम क्षमा मूर्ति वन जाना। पृथ्वी के समान धैर्यशाली, आकाश के समान विशाल, गगा नदी के समान निर्मल वन जाना। तुम्हे कोई काट भी डाले तो भी क्रोध मत करना।" गौतम बुद्ध की इस वाणी मे क्षमा की कितनी शीतलता है।

जैनधर्म मे तो प्रारम्भ से ही अहिसा, औदार्य तथा क्षमा की महिमा को सर्वोपरि घोषित किया गया है। जो सम्पूर्ण चराचर जगत के प्रति अहिसा भाव की प्रतिष्ठा करता है, वह धर्म भला क्रोध, ईर्ष्या अथवा मत्सर को स्वीकृति कैसे दे सकता है? तीर्थंकर महावीर को सगम देव ने कितने भीषण उपसर्ग दिये, किन्तु उनमे जरा भी क्रोध अथवा अशान्ति की भावना जागृत नही हुई। एक दिन सगम देव ने उनसे प्रश्न किया—

"आप मुझे कैसा समझते हैं?"

प्रभु ने बडी सहज मुस्कान के साथ उत्तर दिया—"मैं आपको मुनाफे से माल विकवाने वाले दलाल के समान महान् उपकारी मानता हूँ।" यह है जैन-धर्म के प्रेरणा-स्रोत भगवान महावीर की हार्दिक विशालता।

इसी प्रकार से ईसाई-धर्म के प्रवर्तक ईसा के मन मे भी क्षमा का अपार सागर लहरा रहा था। जव उन्हे फाँसी देने के लिए शूली पर चढाया गया, तव उन्होने परमात्मा प्रभु से प्रार्थना की—

"Forgive them Father! They know not what they do"

अर्थात्—"हे पिता! उन्हे क्षमा करो। क्योकि वे स्वय यह नही जानते कि वे क्या कर रहे हैं?"

ईसाई धर्म के विशाल भवन मे ईसा की यह पवित्र वाणी आज भी गूँज रही है।

वैष्णव धर्म मे तो ऐसी अनेक कथाये परम्परा से प्रचलित हैं जिनमे उनके देवी-देवताओ की शान्तिप्रियता तथा क्षमा के अलौकिक गुणो की महिमा गाई गयी है। कहते हैं कि एक वार विष्णु के वक्षस्थल पर भृगुमुनि ने पदाघात कर दिया था। क्रोध मे आकर किये गये इस कार्य की विष्णु ने निन्दा नही की, अपितु मुनि के चरणो को ही सहलाने लगे कि कही वज्र जैसे कठोर वक्षस्थल पर पाद-प्रहार करने से मुनि के कमलवत् कोमल चरणो मे आघात न लगा हो।

विष्णु ने मुनि के पद-प्रहार को वडी सहजता से स्वीकार कर लिया। इस घटना से विष्णु की क्षमाशीलता का उत्कृष्ट मानदण्ड स्थापित होता है।

आलोचना

एक वडी पुरानी कहानी सुन रखी है कि किसी देश मे एक बड़ा सुदक्ष कलाकार था। उसे मूर्तियाँ बनाने मे अपूर्व सफलता प्राप्त थी। जिसे एक वार वह भरपूर निगाह से देख लेता उसकी वैसी ही अनुकृति वह पत्थर की मूर्ति मे कर डालता।

जब मूर्तिकार के मरने का समय करीब आने लगा तो उसने अपनी ही जैसी सौ पत्थर की मूर्तियाँ बना डाली और जिस दिन यमराज के दूत उसे लेने आये वह मूर्तियों के बीच मे बैठ गया ताकि यमराज के दूत उसे पहचान न सके।

दूतो ने बहुत देर तक मूर्तियो का निरीक्षण किया ताकि वे मूर्तियो के बीच छिपे कलाकार को पहचान सके, किन्तु उन्हे सफलता न मिली। सारी मूर्तियाँ समान रूप से सुसज्जित और कलापूर्ण हाथो से निर्मित थी। जब वे निराश होने लगे तो उनके मस्तिष्क मे एक नयी तरकीब सूझी। उन्होने मूर्तियो के बीच छिपे कलाकार को सबोधित करते हुए कहा—"धन्य है कलाकार! तुम्हारी प्रतिभा की जितनी प्रशसा की जाये, वह थोडी है। अपनी कला के अपूर्व चमत्कार से तो तुमने हमे भी धोखे मे डाल दिया है! लेकिन इस कला मे एक बहुत बडी त्रुटि रह गयी है।"

कला मे त्रुटि की वात सुनकर कलाकार तिलमिला उठा। उसने सोचा कि यह तो मेरी प्रतिभा का अपमान है। अत आवेश मे आकर वह वोल पड़ा—"महाराज! कृपया आप हमारी कला की त्रुटि वतलाइये।"

दूत ने हँसते हुए उत्तर दिया—"कलाकार! तुम्हारी कला तो सर्वोपरि है। किन्तु तुममे सवसे वड़ी कमी यही है कि तुम अपनी आलोचना नही सुन सकते।" वस अव क्या था? कलाकार यमराज के मृत्यु वन्धन मे फँस ही गया।

वैसे तो कहानी देखने मे वडी छोटी है, किन्तु इसके अन्तर मे निहित अर्थ वडा महत्त्वपूर्ण है। हम भी जीवन के सुदक्ष कलाकार होकर यदि अपनी आलोचना अथवा कटु-निन्दा सुनने मे अक्षम है तो यमराज के मृत्यु-पाश का निरन्तर आह्वान करते हैं। जीवन की सारी कलाये अधूरी और अपूर्ण है यदि हममे अपनी निन्दा के सुनने का सामर्थ्य नही है। हम भी अपनी निन्दा सुनकर क्रोध से तिलमिला उठते है और अनजाने ही भयानक सकट का शिकार वन जाते है। अत. आवेश से बचने का अभ्यास करना चाहिये, अन्यथा हम जीवन की विपम परिस्थितियो की चुनौती से जर्जर हो जायेंगे।

तीन प्रकार की अग्नि

महात्मा बुद्ध ने अपने भिक्षुओ को सम्वोधित करते हुए कहा था—

तिविहा भिक्खवे अग्गी—

रागग्गी दोसग्गी मोहग्गी।

भिक्षुओ! तीन अग्नियाँ है—एक राग की दूसरी द्वेष की और तीसरी मोह की।

ससार इन अग्नियो मे बुरी तरह झुलस रहा है। कोई राग की अग्नि मे चिता के समान जल रहा है, तो कोई द्वेपाग्नि की अन्तर्ज्वाला से दग्ध है। क्रोध और अहकार तो इन अग्नियो के लिए घी के समान हैं जो इन्हे और प्रज्ज्वलित होने मे सहायक हैं। इनमे कौन कम घातक या दु सहनीय है—कहा नही जा सकता।

सभा के मच पर आसीन होकर विश्व-मैत्री, विश्व-वन्धुत्व तथा विश्व-करुणा की वड़े जोर-शोर से दुहाई दी जाती है। किन्तु इन्सान-इन्सान

के वीच का रिश्ता टूटता जा रहा है। मुख मे राम वगल मे छुरी—वाली कहावत सर्वत्र चरितार्थ होती जा रही है। अगर हम वास्तविक रूप से वैमनस्य एव कटुता का निवारण करना चाहते हैं तो हमे सवसे पहले अपने और पराये के दुर्भाव से मुक्ति लेनी होगी। यह हमारा है और यह तुम्हारा है, यही सिद्धान्त तो जीवन मे करुणा तथा मैत्री की जड़ो को खोखला कर रहा है। इसलिए एक उर्दू-शायर ने वड़े सुन्दर ढंग से कहा है—

कहने को तो कहता हूँ कि कोई गैर नही है।
पर दिल से मेरे अपना-पराया नही जाता॥

क्रोध का उपचार : प्रेम

यदाकदा मेरे पास ऐसे लोग आते है जो अपनी असमर्थता जतलाते हुए कहते हैं कि क्या करूँ ? क्रोध तो मेरे स्वभाव का अपरिहार्य अग वन गया है। पर मैं सोचता हूँ कि इसमे निराश होने की क्या वात है ? कम से कम आपमे यह तो चेतना बनी हुई है कि क्रोध एक बुरी वस्तु है और उससे वचना आवश्यक है। इसी चेतना को अधिकाधिक जागृत करना चाहिए और क्रोध तथा वैर-भाव को त्यागकर प्रेम की वृद्धि करना चाहिए। प्रेम ही क्रोध की रामवाण औषधि है।

अच्छे शिक्षक नटखट विद्यार्थी को स्नेह से जीतते है, अच्छी माताएँ दुर्विनीत पुत्र को प्रेम से रास्ते पर ले आती है, सुहृदय गृहणियाँ कुमार्गी पति को भी जीवनोत्थान का प्रेम से भरा सन्देश सुना देती हैं। तो फिर आपमे ऐसी कौन सी कमी है जो प्रेम से क्रोध को पराजित नही कर पाते।

ईसामसीह का कथन है कि "जो तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मारे उसके सामने दूसरा गाल भी घुमा दो कि भाई इस पर भी मार दो।" मारने वाला स्वय ही लज्जित होकर पानी-पानी हो जायेगा। यह तो स्नेह के द्वारा ही मन मे पश्चाताप की भावना जागृत करने का अमोघ मन्त्र है। मुझे इस अवसर पर एक प्रसिद्ध कविता की कुछ पक्तियाँ स्मरण आ रही है—

कली को जीतना है तो मधुर मनुहार से जीतो,
हिरन-मन जीतना है तो मधुर झकार से जीतो।
किसी को जीतना है ? खड्ग से तोप से वम से।
किसी को जीतना है तो हृदय के प्यार से जीतो॥

वाद-विवाद नहीं, स्नेह

एक राजस्थानी कहावत है—'एक घर मे सात मता, भलो कठै सु होय'—अर्थात् एक घर मे सात प्रकार के मत-मतान्तर हो तो भला अच्छा कैसे होगा ? यह वात विचारणीय है कि आपस मे वाद-विवाद से आज तक किसका भला हो सका है ? मै यह नही कहता कि आप तर्क अथवा चिंतन को तिलाजलि देकर अन्ध-भक्ति अथवा अन्ध-विश्वास की आँधी मे उड जाइये। लेकिन वाद-विवाद को ही जीवन का लक्ष्य मत मानिये। तथागत ने तो अपने अनुयायियो को स्पष्ट निर्देश दिया था कि—'वाद जात नो उपेति'—अर्थात् जहाँ वाद-विवाद हो रहा हो, वहाँ नही जाना चाहिए।

आज दुनिया को बुद्धि का रोग लग गया है। जहाँ देखिये वही बुद्धिमानो की भीड जमा है—वाद-विवाद का मजमा लगा हुआ है। बड़े-बड़े बुद्धिमान कह रहे हैं कि हर चीज को तर्क की कसौटी पर कस कर परखो। मैं भी यही कहता हूँ कि आप प्रत्येक वस्तु, जीवन-दर्शन अथवा विचार-धारा को भली-भाँति परखिये और उसमे जो चिन्तन का नवनीत है, उसे ग्रहण कीजिये। ऐसा न हो कि वाद-विवाद का आप पर नशा चढ जाये और आप दिन-रात इसी चिन्ता मे दुवले बने रहे कि क्या बताऊँ अन्ज कोई विवाद के लिए ही नही मिला ? यह विवाद नही पागलपन है।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का दुश्मनो के साथ दोस्ती का व्यवहार करते देखकर उनके साथियो ने कहा—"जिनको हमे खत्म करना है, आप उनकी ओर दोस्ती का हाथ बढा रहे हैं, भला यह कहाँ की राजनीति है ?" लिंकन ने ओठो पर मुस्कान लाते हुए कहा—"दोस्ती करके इनको खत्म ही तो कर रहा हूँ।"

आप जरा इस बात पर गौर कीजिये, इसमे कितनी वडी राजनीति छिपी है। दुश्मनो अथवा विरोधियो के साथ वाद-विवाद करके हम उन्हे नही खत्म कर सकते वल्कि स्नेह के द्वारा ही हम उनके दिल को जीत सकते हैं। तभी तो कहा गया है—

करूँ मैं दुश्मनी किससे, अगर दुश्मन भी हो अपना।
मुहब्बत ने नही दिल मे, जगह छोडी अदावत की।

बड़प्पन की लड़ाई

वडप्पन भी आपस मे वाँटने की चीज है, अपने मे छिपाकर रखने

की नही। जो अपने वड़प्पन को समाज मे वितरित करता है, उसे और भी महत्ता मिलती है। यदि आप अपने को ही सवसे वड़ा मानते है तो दुनिया आपको कभी वडप्पन नही देगी। अत विनम्रता एव अन्य मानवीय गुणो से ही महानता अर्जित की जा सकती है।

एक लघु कथा मे इस वडप्पन का वडा सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है। एक राजा के दरवार मे नवयुवको का दल आया जो सेना मे भर्ती होकर राज्य की सेवा करना चाहता था। राजा ने उनकी परीक्षा लेने का निश्चय किया। अत: उसने पूरे दल को राजभवन के एक वड़े कमरे में रहने का निर्देश दिया। रात मे जव सोने का समय आया तव राजा ने एक पलग देते हुए कहा—"आप लोगो मे जो सवसे वड़ा हो, वह पलग पर सो जाये। वाकी लोग जमीन पर ही सोने की व्यवस्था करे।" राजा के जाते ही उस दल मे तू-तू, मैं-मैं मच गयी क्योकि सभी अपने को वडा कह रहे थे और पलग पर सोने का अधिकार वता रहे थे। रात भर आपस मे वडप्पन का विवाद होता रहा और इसी विवाद में रात वीत गयी। सुवह होने पर जव राजा ने उनके समाचार जाने तो विना किसी कारण के वताये सवको विदाई दे दी गयी।

अभी इस घटना को घटित हुए कुछ ही दिन वीते थे कि उसी राजा के दरवार मे नवजवानो का एक दूसरा दल सेना मे भर्ती होने के लिए आया। राजा ने उनकी भी परीक्षा लेने के लिए भी उसी प्रकार की व्यवस्था कराई और एक पलंग देकर यह घोषणा दुहरा दी कि जो सवसे वड़ा हो वही पलग पर सोने का अधिकारी है। सोने के समय सभी एक-दूसरे से 'आप वडे हैं' कहकर मनुहार करने लगे, लेकिन कोई भी पलग पर सोने के लिए तैयार न हुआ। अन्त मे सभी पलंग की ओर अपना-अपना सिर करके फर्श पर ही सो गये। सुवह राजा को जव सारी स्थिति का पता चला तो उसने सभी नौजवानों को सेना मे भर्ती करके सम्मानित किया।

काश ! यह वड़प्पन की वुद्धि पहले आने वाले नवयुवको के दल को भी मिली होती तो वे सव रात भर सुख की नीद सोते और सुवह ही उनको सम्मानित किया जाता।

क्रोध : महाचाण्डाल

प्लूटार्क ने कहा है—"क्रोध समझदारी को वाहर निकालकर वुद्धि के

दरवाजे पर चटखनी लगा देता है।" यह उक्ति जीवन के अनुभवो से बराबर सत्य उतरती है। क्रोध के आते ही सबसे पहले मनुष्य का विवेक आहत होता है तब उसका अपनी इन्द्रियो कर नियन्त्रण समाप्त हो जाता है।

काशी मे छुआछूत की भावना से ग्रस्त एक ब्राह्मण गगा नदी मे स्नान कर रहा था। उससे थोडी ही दूर एक भगी अपने कपड़े धो रहा था। कपड़ा धोते समय भूल से पानी के कुछ छीटे ब्राह्मण के लग गये। ब्राह्मण क्रोध मे आकर भगी को मारने लगा। जब मारते-मारते थक गया तो उसे छोडकर फिर से स्नान करने मे तत्पर हो गया।

थोडी देर मे ब्राह्मण ने देखा कि वह भगी भी फिर से नहा रहा है। ब्राह्मण ने पूछा—'अरे! तू क्यों नहा रहा है?'

भगी ने उत्तर दिया—"हे ब्राह्मण देवता! आपके हृदय के क्रोध रूपी महाचाण्डाल ने मुझे छू लिया है। अत: अपवित्र हो जाने के कारण फिर से स्नान कर रहा हूँ।"

अब आप ही सोचिये कि इससे किसकी महानता सिद्ध होती है—भगी की या ब्राह्मण की? अगर ब्राह्मण ने समझदारी से काम लिया होता तो शायद उसे लज्जित न होना पडता। लेकिन क्रोध ने समझदारी का तो पहले ही सफाया कर दिया था।

खाली लिफाफा

अमरीका के एक प्रोफेसर स्वभाव से बड़े क्रोधी और जिद्दी थे। बात बात पर वे नाक-भौह सिकोडने लगते थे। यद्यपि वे यह जानते थे कि क्रोध उनके स्वभाव की दुर्बलता है, किन्तु वे इसे रोकने मे अपने को असमर्थ पाते थे। कई दिनो के सोच-विचार के पश्चात् उन्होने अपने क्रोध पर काबू पाने के लिए एक नया तरीका खोज निकाला। यह तरीका भी उनके दोस्त की सलाह पर आधारित था।

प्रोफेसर साहब ने अपने नौकर को यह आदेश दिया—"भविष्य मे जब मुझे क्रोधित होते देखो तो मेरे हाथ मे एक खाली लिफाफा दे दिया करो।" मालिक की इस बात से नौकर को कम आश्चर्य नही हुआ किन्तु उसे तो स्वामी की आज्ञा का पालन करना ही था।

एक दिन किसी बात पर प्रोफेसर साहब को जबर्दस्त गुस्सा आ

गया । नौकर ने उनके आदेश का पालन करते हुए उनके हाथ में एक खाली लिफाफा पकड़ा दिया । बस फिर क्या था । प्रोफेसर साहब का क्रोध ऐसे गायब हो गया जैसे गर्दभ के सिर से सींग । तब से धीरे-धीरे उनका क्रोध जाता रहा और उनके स्वभाव मे बडा परिवर्तन आ गया ।

जब मैं इस बात पर विचार करने लगता हूँ तो मुझे भी कम आश्चर्य नही होता कि आखिर उस खाली लिफाफे का रहस्य क्या है ? लेकिन धीरे-धीरे मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि उस खाली लिफाफे का अवश्य ही कोई प्रतीकात्मक अर्थ था जिससे प्रेरित होकर प्रोफेसर साहब मे क्रोध की मात्रा कम हो जाती थी ।

खाली लिफाफा शायद उन्हे इस बात की चेतावनी देता रहा होगा कि क्रोध की स्थिति मे तुम भी इसी तरह खाली और अर्थहीन हो जाते हो । खाली लिफाफा जैसे महत्त्वहीन होता है, वैसे ही मनुष्य भी क्रोध आने पर आत्मबल से क्षीण हो जाता है ।

एक और फेंकिये

सुप्रसिद्ध स्वतत्रता-सेनानी एव राष्ट्रभक्त सुभाषचन्द्र बोस एक बार एक बडी भीड को सम्बोधित कर रहे थे कि इतने मे किसी व्यक्ति ने उन पर एक जूता फेका । सुभाषबाबू ने बिना विचलित हुए मंच से अपना भाषण जारी रखते हुए कहा—"जिस सज्जन ने एक जूता मेरी ओर फेका है वे कृपया दूसरा जूता भी फेकने का कष्ट करें ताकि मेरे पहनने के काम आ जाये ।"

वैसे तो यह घटना देखने मे बडी साधारण-सी लगती है किन्तु जरा आप इस पर ध्यान से विचार करे तो आपको इसका वास्तविक अर्थ पता चलेगा । सुभाष बाबू जैसा क्रातिकारी और वीर पुरुष जब अपने अपमान को इस सीमा तक बर्दाश्त कर सकता है अथवा अपनी क्षमा-भावना का सुन्दर परिचय दे सकता है, तो साधारण व्यक्ति को इस घटना से प्रेरणा ग्रहण करने का अवसर नही चूकना चाहिये ।

यह भी विचारणीय है कि जब आप सामाजिक जीवन मे किसी महत्त्वपूर्ण पद पर कार्य कर रहे हैं तो विरोध और निन्दा की सभावना से अस्वीकार नही किया जा सकता । इन क्षणो मे आप कटुता अथवा प्रति-

शोध की भावना का परिचय न देकर हृदय की सरलता और उन्मुक्तता का प्रदर्शन कर वृहत् जन-समाज को आकृष्ट कर सकते हैं।

क्षमावान

आज जीवन मे सर्वत्र असतोष, हिंसा और कटुता का वातावरण छाया देखकर कभी कभी सोचता हूँ कि इस देश को क्या हो गया है ? यह किस पथ पर जा रहा है ? आज मजदूर और मालिक, गुरु और शिष्य, नेता और जनता सवके वीच मधुर सम्वन्धों का अभाव है—जुलूस, आदोलन, प्रतिवाद, अनशन की भापा ही लोगों के गले के नीचे उतरती है, सामान्य जीवन की शब्दावली का तिरस्कार हो रहा है।

हमारे देश मे तो सस्कृति और सभ्यता के इतने ऊँचे मानदंड स्थापित किये गये हैं कि यदि उनको सुचारु रूप से ग्रहण करे तो जन-जीवन मे व्याप्त निराशा और असतोष का कोई कारण नही रहे। राज पुरुषो से लेकर महात्माओ तथा सिद्धो की ऐसी महान परम्परा इस देश मे रही है जिसने सहिष्णुता तथा क्षमा जैसे मानव-मूल्यो की प्रतिष्ठा मे अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया है।

पंजाव के वीर राजा रणजीतसिह मे शूरता तथा सहिष्णुता का अद्भुत् समन्वय था। कहा जाता है कि एक वार किसी वालक के हाथ से उनके सिर पर पत्थर आ लगा। राजा के सिपाहियो को वालक की इस धृष्टता पर वडा क्रोध आया। वे सव वालक को पकड़ लाये और उसे प्रताडित करने लगे। इस पर राजा रणजीतसिह ने उस बच्चे को मोती का एक हार भेंट करते हुए कहा—"मैंने तो यह सुन रखा है कि वृक्ष भी पत्थर मारने के वदले मनुष्यो को फल-फूल देते है और मैं तो स्वय मनुष्य हूँ, वल्कि मनुष्यो में भी राजा हूँ। तो क्या मैं इसे उपहार स्वरूप यह मोती का हार नही दे सकता ?"

यह सहिष्णुता और उदारता की अमर निशानी है। इन प्रेरक-प्रसगो मे जीवन की वहुत मूल्यवान निधियाँ छिपी हैं। हम और आप इन महापुरुषो के जीवन के उच्चादर्शों को ग्रहण करने मे आगा-पीछा क्यो कर रहे है ?

सहनशक्ति

मेरे पास कभी-कभी ऐसे लोग भी आते है जिनके चेहरे पर निराशा

की कालिमा छायी रहती है, जो देखने मे बड़े निरीह और लाचार नजर आते है। मैं उत्सुकतावश पूछता हूँ कि भाई ! तुमने ऐसी सूरत क्यो वना रक्खी है ? दुनिया के गुलशन मे थोडी देर तो मुस्कराओ।

मेरे इस कथन पर उनका चेहरा और लटक जाता है तथा दयनीय सूरत वना कर जबाव देते है कि—"क्या करूँ महाराज ! गृह-कलह से वहुत पीडित हूँ। घरवाली का स्वभाव इतना कटु है और वच्चे इतने उद्दण्ड हैं कि कुछ मत पूछिये ? जरा देर भी सुख की साँस नही ले पाता हूँ।"

मैं पूछता हूँ कि—"सुख की साँस कही वाजार मे या दुकान में मिलती हो तो खरीद लो, या विदेशो से प्राप्त करलो। अरे भाई ! तुम सुखी जीवन का वडा सीधा मत्र भूल गये हो।"

आप किसी के वारे में जव जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं तो सवसे पहला प्रश्न यही पूछते है कि उसका रहन-सहन कैसा है ? इसमे 'सहन' शब्द पर आपने कभी गंभीरता से विचार किया है ? रहन तो जानवरो मे भी होता है, क्योकि सभी कही न कही रहते तो अवश्य हैं। लेकिन 'सहन' तो सिर्फ मनुष्यो का आभूषण है। आप उस आभूषण को ही विस्मृत किये वैठे हैं तो भला गृह-कलह क्यो न हो ? यही सुखी जीवन का सबसे अमोघ मंत्र है। आप अपने भीतर थोडी सहनशक्ति पैदा करेंगे, थोडा क्षमाशील वनेंगे तो देखेंगे कि सारे सुख का खजाना आपके चरणो पर पडा है।

इस सन्दर्भ मे मुझे एक पादरी का कथन स्मरण आ रहा है। किसी भक्त ने अपने पादरी के समक्ष वडा टेढा प्रश्न उपस्थित कर दिया—"आप मे सहन शक्ति कैसे आई ?"

उस पादरी ने मुस्कराते हुए कहा—"मैं जव ऊपर की ओर देखकर सोचता हूँ कि मुझे तो वहाँ जाना ही है, तो फिर यहाँ के व्यवहारो से मन क्यो विगाडूं ? नीचे की तरफ देखकर विचार करता हूँ कि सोने-उठने-वैठने के लिए मुझे कितनी जमीन चाहिए ? आस-पास देखने पर मन मे आता है कि लोग मुझ से भी अधिक दु:ख सहन कर रहे हैं। तो क्या मैं अपनी थोडी सहनशक्ति का परिचय नही दे सकता ?"

सत्त्ववान की क्षमा

'वाल्मीकि रामायण' मे लिखा है—कोप न गच्छन्ति हि सत्त्ववन्त:' अर्थात् सत्त्ववान मनुष्य क्रोध नही किया करते। यह उक्ति ससार के सभी धर्मो के सस्थापको, प्रवर्त्तको तथा प्रचारको के जीवन मे चरितार्थ होती है। भगवान महावीर हो, या महात्मा बुद्ध, राम हो या ईसा अथवा इस्लाम के प्रवर्तक मुहम्मद साहब हो—सभी ने अपने जीवन की कटुतम परिस्थितियो मे भी क्रोध के दावानल से स्वय को सुरक्षित रक्खा है।

हम जीवन मे थोडी-थोडी बातो से रुष्ट हो जाते है। जरा भी हमारे मन का चाहा काम, व्यवहार, आचरण या खाना न हो तो बडी जल्दी क्रोध मे तमतमा उठते है। लेकिन यही सारी मुसीबतो की जड है। यदि आप आत्मबली और आत्म-सयमी हैं तो क्रोध के पिशाच पर आप हमेशा विजय प्राप्त कर सकते है।

मुहम्मद साहब के जीवन का एक बडा प्रेरक प्रसग है। वे प्रतिदिन नमाज पढने के लिए मस्जिद जाया करते थे। रास्ते मे एक ऐसी बुढिया का घर पडता था जो रोज उनके सिर पर कूड़े से भरी बाल्टी उलट दिया करती थी। मुहम्मद साहब बिना कुछ प्रतिवाद किये नमाज पढने चले जाते, यहाँ तक कि वे ऊपर भी न देखते कि कौन उन पर कूडा फेंक रहा है। यह क्रम बहुत दिनो तक चलता रहा।

एक दिन जब वे अपने प्रतिदिन के मार्ग से गुजर रहे थे तो उनके सिर पर कही से भी कूडा नही गिरा। वे चिन्तित हो गये कि अवश्य ही उस व्यक्ति को कोई कष्ट होगा जिस कारण कि उसने आज कूडा नही फेंका। लोगो से पूछते हुए जब वे मकान की ऊपरी मजिल पर पहुँचे तो पता चला कि यह कार्य रोज एक बुढिया किया करती थी जो आज बीमार है। मुहम्मद साहब उस बुढिया के पास गये और उससे तबियत के समाचार पूछे। बुढिया शर्म से पानी-पानी हो गयी और उसने मुहम्मद साहब के चरणो पर गिरकर माफी माँगी।

नहीं गिरने दूंगी !

महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध सत एकनाथ महाराज अद्भुत क्षमावान थे। गोदावरी नदी के किनारे स्थित पैठण गाँव मे उनका निवासस्थान था।

उसी गाँव के एक गरीव ब्राह्मण ने धनिको से कर्जस्वरूप कुछ रुपये माँगे। धनिको मे से एक मसखरे ने कहा कि यदि एकनाथ महाराज को क्रोधित कर सको तो तुम्हे रुपये मिल जायेगे। ब्राह्मण वेचारा जरूरत का मारा था अत उसने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

जव वह ब्राह्मण एकनाथ जी महाराज के घर पहुँचा तव वे भजन कर रहे थे। वह दौडकर उनकी गोद मे वैठ गया ताकि उन्हे गुस्सा आ जाये। लेकिन महाराज पर इसका कुछ भी असर न हुआ। वे तो पूरी तरह शान्त वने रहे।

भोजन के समय जव एकनाथ जी की पत्नी गिरिजावाई घी परोसने आई तो वह ब्राह्मण उछलकर उनके कधो पर जा चढा। एकनाथ महाराज ने पत्नी को सवोधित करते हुए कहा—"अरे हरिमित्र की माँ! जरा ध्यान रखना कही मेहमान कधे से गिर न जाये!" पत्नी ने उत्तर दिया—"मुझे पूरा ध्यान है। आप निश्चिन्त रहिये। मैं इसे नही गिरने दूँगी। हरिमित्र भी कई बार कधे पर चढ जाया करता है।" अव ब्राह्मण के समक्ष पश्चाताप प्रकट करने के अतिरिक्त मार्ग ही क्या था? वह गिरिजावाई के कधो से उतरकर एकनाथ जी के चरणो पर गिर पडा और रोते हुए क्षमायाचना करने लगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि क्षमा तो सत-स्वभाव का सर्वोत्तम अग है। यदि सतो के मन मे क्रोध की दावाग्नि प्रज्वलित हो रही हो तो उनके सतत्व मे वाधा पहुँचती है। क्षमा के आगे मनुष्य तो क्या वड़े-वड़े फणिधरो को झुकता देखा गया है। भगवान महावीर की क्षमा के आगे तो चण्ड-कौशिक जैसा महा भयकर सर्प भी आत्म-समर्पित हो गया था!

कोई गम नहीं!

'उत्तराध्ययनसूत्र' मे कहा गया है—"पियमप्पियं सव्वतितिक्खएज्जा"—अर्थात् प्रिय-अप्रिय सव शातिपूर्वक सहन करो। प्रिय को सहन करना तो वड़ा आसान है किन्तु अप्रिय अथवा कटु को वर्दाश्त करने के लिए वहुत वड़े हृदय की आवश्यकता होती है।

दक्षिण भारत के महान् सत तिरुवल्लुवर का दैनिक जीवन लगभग कवीर जैसा ही था। वे भी वड़े परिश्रम से धोतियाँ बुनते और वाजार मे

बेचकर अपनी जीविका अर्जित करते। एक बार बाजार मे जव वे अपने कठोर परिश्रम से बुनी हुई सुन्दर साडी वेच रहे थे तो एक उद्दड युवक आकर उनसे पूछने लगा—"इसकी कीमत क्या है ?" तिरुवल्लुवर ने उत्तर दिया—"दो रुपया।"

युवक ने साड़ी के दो टुकड़े कर डाले और पूछा—"अब इसकी कीमत क्या है ?

तिरुवल्लुवर ने वडी शांत मुद्रा मे कहा—"एक रुपया।"

इसके बाद भी युवक साडी के टुकडे-टुकड़े करता गया लेकिन तिरुवल्लुवर की मुद्रा मे कोई परिवर्तन नही आया। वे निर्विकार बैठे रहे।

अन्त मे युवक ने सत तिरुवल्लुवर के पैरो पर गिरकर क्षमा मागी। काश ! इतनी सहनशक्ति हम सब मे होती !



☆ ज्ञान के वृक्ष पर शान्ति का फल लगता है।

☆ मौन के वृक्ष पर शान्ति का फल लगता है।

☆ मनुष्य की शान्ति की कसौटी समाज मे ही हो सकती है, हिमालय की चोटी पर नही।

☆ क्षमा प्रसन्नता की जननी है।

☆ क्रोध अग्नि है, क्षमा पानी है।
क्रोध जहर है, क्षमा अमृत है।
क्रोध राक्षस है, क्षमा देवता है।

११

विष बनाम विषय-वासना

- वासना
- वासना जल से मुक्ति
- साधुता
- आमन्त्रण
- सयम का कॉर्क
- फिसलन
- मानव-तन
- आज और कल
- मुर्दा और कब्र
- काल-डण्डा
- विष और विषय
- कितनी आसक्ति ?
- काम-सर्प
- सूर्य ग्रहण
- चूहा और मानव
- दावानल

- ☐ विषय-कषाय की आग
- ☐ पक्के और कच्चे फल
- ☐ आत्म-धन की रक्षा
- ☐ वासना के बछड़े
- ☐ भोग-स्वरूप
- ☐ वासना की शृङ्खला
- ☐ नारी
- ☐ विलास की मदिरा
- ☐ चरित्रहीन मानव
- ☐ भटकन
- ☐ पवित्रता कहाँ है ?
- ☐ जीवन की पावनता
- ☐ इन्द्रियो का दुरुपयोग
- ☐ दो प्रकार की स्टीमर
- ☐ विषय की आग
- ☐ आत्म-धन
- ☐ पानी और विषय
- ☐ नौकर नही, मालिक बनो
- ☐ स्वाद फीका
- ☐ किसको क्या समझायें
- ☐ मन को समझायें
- ☐ मानव की दशा
- ☐ वासना का आवरण
- ☐ लोहा और हृदय

विष बनाम विषय-वासना



वासना

धम्मपद मे एक प्रसङ्ग आया है जिसमे साधुओ को लक्षित करके कहा गया है—

चित्तस्स दमनं साधु चित्त दमनं सुखावहम्

हे साधुओ ! चित्त का दमन करो। दमन किया हुआ चित्त सुख देने वाला होता है। वासना पर विजय प्राप्त करने का अस्त्र दमन ही है। वासना एक भयङ्कर गर्त के समान है, जिसमे गिरना तो आसान है किन्तु उससे निकलना वहुत कठिन है। यह गर्त वहुत रपटीला है, जहाँ पैर टिकना आसान नही है। अत· वासना के गह्वर से बचकर चलना साधना की सबसे वडी पहचान है।

वासना-जल से मुक्ति

वर्षा की फुहारो से कुत्ते का शरीर जव भीग जाता है तव वह बरा-मदे मे आकर अपने शरीर के जल को अङ्गडाई लेकर झटक देता है और पुन· उसका शरीर सूखकर स्वाभाविक स्थिति मे आ जाता है। मैं सोचता हूँ कि क्या कुत्ते की क्रिया से मनुष्य को प्रेरणा नही लेनी चाहिये ? जव हमारे मन पर वासना के विचारो की फुहार पड गई हो तो हम भी विवेक एव संयम का सहारा लेकर उसे झटक दे। वासना के झटक देने से मन स्वस्थ हो जायेगा और वह पुन. अपने कर्त्तव्य के क्षेत्र मे क्रियाशील हो उठेगा। इसलिये तो विचारको ने कहा है—

अरे सुधारक ! जगत की चिन्ता मत कर यार।
तेरा मन ही जगत है, पहले इसे सुधार ॥

साधुता

भोग की तृष्णा कभी शान्त नही होती। जो इस तृष्णा पर विजय प्राप्त कर लेते हैं वे ही योगी एवं सच्चे साधु है। सिर्फ वेष वदलने से ही यदि साधुता की प्राप्ति हो जाये तो सारा ससार साधु वन सकता है। लेकिन ऐसा कभी होता नही। भीतर हृदय मे तृष्णा की ज्वाला जल रही हो, और ऊपर से "ओम् शान्ति, ओम् शान्ति" की पुकार की जाय तो उससे क्या लाभ ? पहले तृष्णा पर विजय प्राप्त करें तव फिर शान्ति की कामना करें। जव तृष्णा शान्त हो जायेगी तो शान्ति स्वत. चरण चूमने हेतु दौड पड़ेगी।

आमन्त्रण

जव कोई व्यक्ति अपने घर पर किसी महान् पुरुप अथवा विशिष्ट आत्मा को आमन्त्रित करता है तो उसका ध्यान सवसे पहले अपने घर की सफाई की ओर जाता है। वह घर मे से कूड़े को निकालकर वाहर फेकता है और स्वच्छता का वातावरण निर्मित करता है। सुगन्धित पुष्पो तथा चन्दनादि पदार्थो का उपयोग कर घर का कायाकल्प कर डालता है। इसी तरह यदि भगवान को ही हमे अपने मन-मदिर मे आमत्रित करना है तो पहले भीतर एकत्र वासना के कचरे को साफ करना होगा और सुविचारो की सुगध से मन को पवित्र बनाना होगा। सुकर्मो का आसन तैयार रखिये नही तो भगवान कहाँ बैठेगे ?

संयम का कॉर्क

कुछ सेंट (इत्र) ऐसे होते है जो पवन का स्पर्श पाकर उड जाते हैं। ऐसे सेंट की शीशी को कॉर्क लगाकर ठीक से वन्द रखना पडता है। जरा-सी असावधानी से गध के उड जाने का भय वना रहता है। उसी प्रकार साधक के जीवन मे सयम का कॉर्क लग जाने से उसकी साधना सुरक्षित रह सकती है, नही तो वासना का पवन लगते ही उसे उडा ले जायेगा। दशवैकालिकसूत्र मे इसीलिये तो कहा गया है—"जाइ सद्धाइ निक्खतो, परियायठ्ठाणमुत्तम, तमेव अणुपालिज्जा" अर्थात् जिस श्रद्धा के साथ ससार से निकलकर उत्तम सयम का मार्ग ग्रहण किया है उसी श्रद्धा के साथ उसका पालन करना चाहिए।

फिसलन

केले का फल वैसे तो बडा शक्तिवर्द्धक एव पुष्टिकारक होता है, किन्तु उसका छिलका बड़ा फिसलन भरा होता है। भूल से यदि उस पर पैर पड जाये तो अग-भग होने का खतरा मौजूद रहता है। यही हालत वासना की है। वासना की तृप्ति मे तो क्षणिक सुख की झलक अवश्य मिलती है, किन्तु वह केले के छिलके की भाँति फिसलन भरी है। उस कुपथ पर पैर पडते ही मनुष्य की अधोगति के सारे द्वार खुल जाते है।

मानव-तन

बाइविल मे कहा गया है—"यह तुम्हारा शरीर पवित्र-आत्मा का मदिर है। इसका दुरुपयोग नही होना चाहिए।" भला चदन की लकडी जलाकर रोटी पकाना कहाँ की वुद्धिमत्ता है? रोटी पकाने का कार्य तो साधारण लकडी से भी सभव है। उसके लिए अमूल्य चन्दन को जलाना तो उसका दुरुपयोग ही है। मानव-शरीर भी इसी तरह चन्दन की तरह मूल्यवान है। इसके द्वारा मुक्तिपद की प्राप्ति हो सकती है। लेकिन जो लोग इसे विषय-कपायादि की ज्वाला मे जलाकर भस्मीभूत कर रहे है, उनकी अज्ञानता पर किसे तरस न आयेगा?

आज और कल

आचारागसूत्र मे ऐसा उल्लेख आया है कि आहार से पुष्ट किया हुआ शरीर परिपहो (कष्टो) के सम्मुख क्षण-भगुर हो जाता है—"आहारोपचया देहा, परिसहव भगुरा"। आज का यह रसमय जीवन कल नीरसता मे परिर्वातित हो जायेगा। आज की मादकता कल अनत-वेदना का शिकार वन जायेगी। आज की यह कोमल-काया कल निष्प्राण हो जायेगी और आज के यौवन की चचलता कल वृद्धावस्था की स्थिरता मे परिणत हो जायेगी। अतः जो सत्कार्य करते हैं, उन्हे आज ही पूर्ण कर लेना है, कल की अनिश्चित स्थिति पर भरोसा नही किया जा सकता।

मुर्दा और कब्र

मुर्दे को कब्र मे गाड़कर उस पर मिट्टी की पर्त विछा दी जाती है और भारी शिला रखकर उसे दवा दिया जाता है ताकि वह मुर्दा पुन. जमीन पर न आ सके। इसी प्रकार मोह तथा अज्ञान के कारण जिसकी

विचार-शक्ति नष्ट हो गई है, उस व्यक्ति को ससार रूपी कब्र मे गाड दिया जाता है और फिर उसके ऊपर स्त्री, पुत्र तथा धन के पत्थर रख दिये जाते हैं जिससे वह जीवन-पर्यन्त आत्म-तत्त्व पर विचार न कर सके। इनका वोझ इतना प्रवल होता है कि मनुष्य जीवन-पर्यन्त कराहता रहता है लेकिन इस वोझ को उठाकर फेक नही सकता क्योकि इतना सामर्थ्य उसमे नही होता।

काल-डंडा

विल्ली का सवसे मनचाहा आहार दूध है। वह जव दूध पीने लगती है तव आँखे वन्द कर लेती है और सोचती है कि उसे कोई नही देख रहा है। लेकिन सजग गृहस्थ को किसी न किसी तरह इस वात का पता चल जाता है और वह विल्ली को त्रस्त करने के लिये डडा लेकर दौडता है। इसी प्रकार ससार की आसक्ति मे आकण्ठ डूवा प्राणी विल्ली की तरह अपने ज्ञान-चक्षुओ को वन्द करके वड़े आसक्ति-भाव से सासारिक वासनाओ को भोगता है और अनुमान लगाता है कि उसे कोई देख नही रहा है। लेकिन काल वडा सजग है, वह अपने डडे से उस प्राणी की कमर एक न एक दिन तोड ही देता है।

विष और विषय

विप और विषय मे वडा अन्तर है। विष को पास रखने या देखने से मनुष्य मरता नही, जव तक कि वह उसे खा न ले। किन्तु विषय वडा भयानक है। इसका स्पर्श करना और भोगना तो दूर केवल स्मरण-मात्र से आत्मा का अध.पतन हो जाता है। अत· विप से अधिक विपय से सावधानी की आवश्यकता है।

कितनी आसक्ति ?

एक अत्यन्त विनीत पुत्र ने मृत्यु-शय्या पर लेटे हुए गभीर रूप से वीमार अपने पिता से पूछा—"पिताजी ! आपकी अतिम इच्छा क्या है ?" पिता ने वडी चिन्ता के साथ कहा—"चिरंजीव ! रामलाल, शाक-भाजी वाले से एक रुपया लेना वाकी है, अत. उससे नौ आने की मिर्ची और सात आने की धनिया लेकर दाल मे डाल देना। इससे रुपया भी वसूल हो जायेगा और दाल के स्वाद के साथ-साथ मेरा उधार भी साफ हो जायेगा।"

आसन्न-मृत्यु होने पर भी उधारी की चिन्ता से मानव-मन परेशान है। जिस समय जीवन के वड़े लेन-देन पर गौर करना चाहिए, उस समय छोटी-मोटी उधारी परेशान किये रहती है। ठीक ही कहा गया है—

सेठ जी को फिक्र थी एक-एक के दस-दस कीजिए।
मौत आ पहुँची कि हजरत ! जान वापस कीजिए ॥

काम-सर्प

कहा जाता है कि दृष्टिविष सर्प अत्यन्त भयकर होता है। जिस किसी पर उसकी विषैली दृष्टि पड जाती है, वह वही समाप्त हो जाता है। किन्तु काम-सर्प तो इससे भी भयानक है। उसकी दृष्टि पडते ही कई भवो का विनाश हो जाता है। कवीर ने नारी-सेवी व्यक्ति के सन्दर्भ मे इसी तथ्य को जरा दूसरे ढंग से रखने की कोशिश की है। ऐसी मान्यता है कि गर्भ-वती नारी को देखकर सर्प अन्धा हो जाता है। लेकिन जो प्रतिदिन नारी की सेवा मे सलग्न हैं उनकी क्या हालत होगी ? वे कहते है—

नारी की झाईं पडत, अधा होत भुजग।
कबिरा तिनकी कौन गति, जे नित नारी के सग ॥

सूर्य-ग्रहण

हिन्दुओ मे ऐसी धारणा है कि सूर्य-ग्रहण के समय याचको को भिक्षा या दान देने से राहु और केतु द्वारा ग्रसित सूर्य को सात्वना मिलती है और वे कष्ट से मुक्ति पा जाते हैं। इसी मान्यता के आधार पर हिन्दू उस समय सारा कार्य छोड कर गगा-स्नान करते है और याचको को यथा-शक्ति दान देते है। परिणामस्वरूप सूर्य को कष्टो से मुक्ति मिल जाती है। मैं सोचता हूँ कि अनत-काल से आत्मा-रूपी सूर्य को विपय-कषाय के राहु-केतु ने ग्रसित कर रक्खा है। किन्तु मानव-समाज उसे मुक्ति देने का कोई प्रयत्न नही कर रहा है। यह नादानी नही तो और क्या है ?

चूहा और मानव

चूहा बेचारा वडे कठिन श्रम से रात-दिन एक करके पृथ्वी मे अपने रहने के हेतु विल वनाता है, किन्तु विल पूरा होते ही सर्प उसमे आसन जमा लेता है। चूहा अपने ही वनाये हुए विल का उपयोग नही कर पाता। इसी प्रकार मनुष्य भी अनेक पाप-कर्मो का सचय कर अपने

लिए भोग-विलास के साधन एकत्र करता है। लेकिन मृत्यु रूपी सर्प आकर उसे डस लेता है। उसे अपनी अतृप्त आकांक्षाओ के साथ मृत्यु-पथ पर अग्रसर हो जाना पडता है। यह कैसी विवशता है ?

दावानल

'उत्तराध्ययनसूत्र' मे कपाय—अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभ को जाज्वल्यमान अग्नि की उपमा दी गई है—"कसाया अग्गिणो वुत्ता।" जैसे भूकप के प्रलयकारी झटके से वड़े-वड़े नगर ध्वस्त और वीरान हो जाते हैं, झझावात से सुन्दर उपवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाते है, उसी प्रकार वर्षो की साधना को विपय-कषाय का दावानल जलाकर भस्म कर देता है। साधु के चित्त मे इसीलिये कपाय का उत्पन्न होना अत्यन्त हानिकारक है।

विषय-कषाय की आग

एक गृहस्थ का घर यदि जलकर खाक हो जाये तो वह अपार दुःख का अनुभव करते हुए वडी करुणा-जनक चीत्कार करता है। जिस घर की एक-एक ई ट से उसकी ममता रही, वही घर अग्नि को भेट हो गया। किन्तु आत्मा-रूपी-घर तो विषय-कपाय की अग्नि मे निरतर जल रहा है। उसकी ओर किसी का ध्यान नही जाता। उस ज्वाला की तीव्रता का अनुभव तो वे ही करते है जो प्रज्ञावान् हैं अन्यथा पूरा घर जल जाने पर भी बोध नही होता।

पक्के और कच्चे फल

पूर्णत परिपक्व फल जरा-सी डाल हिलाते ही डाली से सबध विच्छेद कर भूमि पर गिर पडते हैं किन्तु कच्चे फलो को पत्थर मारने पर भी कोई असर नही पडता। वे तो डालियो के मोह-पाश से आबद्ध रहते हैं। इसी प्रकार मुमुक्षु आत्माये जो ससार के विषयो से उदासीन और अनासक्त है, उन्हे अधिक प्रेरणा देने की आवश्यकता नही होती। वे तो जरा से सत्सग से ही प्रभावित होकर अपना जीवन-लक्ष्य परिवर्तित कर देती है। लेकिन जो आत्माये दुराग्रही हैं और सासारिक विपयो मे पूर्णतः लिप्त है वे कच्चे फल की तरह हैं जिन्हे कितना ही वचनरूपी पत्थर मारा जाये फिर भी सन्मार्ग की ओर कदम नही बढाती।

आत्म-धन की रक्षा

धन-दौलत और बहुमूल्य सम्पत्ति को हम तिजोरी मे बद करके ठीक से ताला लगा देते हैं। चावी को भी यथासम्भव छिपाकर रखते है ताकि घर के नौकर-चाकरो अथवा बच्चो की दृष्टि उस पर न पड़े। इसी तरह से आत्मारूपी बहुमूल्य सम्पत्ति को वासनारूपी चोरो से सुरक्षित रखने के लिये इन्द्रियरूपी तिजोरी को सयम के ताले से वन्द रखना पडता है। जरा सी भी गफलत हुई कि चोर आत्म-धन को लूट ले जाते हैं और मनुष्य को पता भी नही चलता।

वासना के बछड़े

"चरणगुण विप्पहीणो, वुड्डई सुवहुपि जाणतो"—जो साधक चारित्र गुण से हीन है, वह वहुत से शास्त्र पढ लेने पर भी ससार सागर मे डूव जाता है। यही वात गृहस्थ जीवन में भी है। एक वृद्ध पुरुष रस्सी वट रहे थे, और बट जाने पर अपने पीछे डालते जा रहे थे। इतने मे उधर से दो वछड़े निकले और उस वटी हुई रस्सी को चबाते गये। वृद्ध ने सोचा कि आज तो वहुत रस्सी बट ली अव कल देखेंगे। लेकिन जव पीछे घूमकर देखा तो रस्सी का नाम-निशान भी नही। उनकी सारी मेहनत वेकार गयी। रस्सी तो वछड़े खा गये। आज के कुछ साधको की स्थिति तो इससे भी दयनीय है। वे एक ओर तो माला-जप-तप आदि पर बल दे रहे हैं और दूसरी ओर विषय-कषाय के बछडे उसे साफ किये जा रहे है।

भोग-स्वरूप

हम कभी-कभी देखते है कि कुत्ता रास्ते मे पडी हुई हड्डी को पाकर वडी प्रसन्नता का अनुभव करता है। वह उसे बैठकर चवाने लगता है और इतना मग्न हो जाता है कि हड्डी से छिल जाने कारण के स्वय अपने मुँह से निकले रक्त का स्वाद ही उसे मिलने लगता है। वह यह नही समझ पाता कि वस्तुत हड्डी के रस का नही अपितु अपने रक्त का ही वह स्वाद ले रहा है। यही हालत ससार के भोगानुरक्त तथा विपयासक्त प्राणियो की है। ये अपने तन और मन का क्षय करके भी उस वासना से आनदित होते हैं। यदि उन्हे यह ज्ञान हो जाये कि क्षणिक आनद के लिये वे कितना

वडा दुःख का वोझ उठा रहे हैं तो उससे मुक्त होने मे वे किंचित् विलम्ब नही लायेगे।

वासना की शृंखला

गीता के छठे अध्याय मे अर्जुन ने श्री कृष्ण से एक प्रश्न पूछा "हे कृष्ण ! मन वडा चचल है, हैरान करने वाला है एव दृढ शक्तिवान है। उसका निग्रह वायु की तरह अत्यन्त दुष्कर है।" कृष्ण ने उसका समाधान करते हुए कहा—"हे अर्जुन ! नि सदेह यह मन चचल एव दुर्निवार है किन्तु इसे अभ्यास तथा वैराग्य से वश मे किया जा सकता है।"

सच तो यह है कि शरीर पर पडी हुई लोह शृ खला को तो शक्ति से विच्छिन्न किया जा सकता है, लेकिन वासना की शृ खला को शारीरिक वल या अन्य किसी अस्त्र से काटना तो सर्वथा असभव है। उसके लिये तो वैराग्य अथवा मनोनिग्रहरूपी अस्त्र का प्रयोग किया जा सकता है और उसी से मुक्ति पाई जा सकती है।

नारी

नारी प्रेम और प्रेरणा की प्रतिमूर्ति है। वह विलास का साधन मात्र नही है। जो नारी को केवल भोग का साधन-मात्र मानते हैं, वे सच-मुच नारी के साथ अन्याय करते है। महर्षि रमण का कहना है कि "पति के लिये चरित्र, सतान के लिये ममता, समाज के लिये शील, विश्व के लिये दया तथा जीव-मात्र के लिये करुणा सजोने वाली महाप्रकृति का नाम ही नारी है।"

विलास की मदिरा

यह कैसे सभव है कि आग मे हाथ डालें और वह जले नही। यह तो अग्नि के स्वभाव के विपरीत वात है। शराव पीकर नशे से वचने की कल्पना भी हास्यास्पद है ? विलास की मदिरा का पानकर भव-भ्रमण से प्राणी का वचना भी सर्वथा असभव है।

चरित्रहीन मानव

आचार्यो ने कहा है कि चरित्रहीन पुरुष को वहुत से शास्त्रो का अध्ययन भी क्या लाभ दे सकता है ? क्या लाखो दीपको का जलना भी

कही अधे को दीखने में सहायक हो सकता है ? चरित्रहीन मानव की कीडे पड़े हुए कुत्ते से तुलना की जाती है। जैसे दुर्गन्धयुक्त कुत्ते को कोई घर मे नही आने देता, उसी तरह चरित्रहीन व्यक्ति को कोई अपने पास नही फट-कने देता।

भटकन

एक राजस्थानी कहावत है–"एक जोवन दूजो धन पल्लै, साहिब करै तो सीधो चल्लै।" वन की भटकन यौवन की भटकन की अपेक्षा कम दु ख-दायी है, क्योकि वन मे तो सयोगवश मार्गदर्शक मिल भी सकता है लेकिन यौवनकाल मे भटकने पर मार्गदर्शक का मिलना कठिन है। यदि मार्गदर्शक मिल भी जाय तो भला मार्गदर्शक की वात पर विश्वास कौन करेगा ? यौवन की आँधी बडी जोरदार होती है, वह तो हर वस्तु को उखाडकर फेक देती है।

पवित्रता कहाँ है ?

पानी मे जन्म लेकर और जीवन-पर्यन्त पानी मे ही रहकर भी जल-चर पवित्र नही होते। इसी प्रकार तीर्थो मे जाकर मात्र स्नान कर लेने से मनुष्य के पाप कभी धुलते नही। जब तक हृदय मे काम-क्रोध की भावना विद्यमान है, तव तक मन की पवित्रता का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

जीवन की पावनता

एक अनुभवी ने कहा है—"चरित्र एक श्वेत कागज है जो एक वार कलकित हो जाय तो उसका पूर्ववत् उज्ज्वल होना कठिन है।" शरीर का कोई भी भाग यदि गदा है तो वह दूपित ही कहलायेगा। वस्त्र का कोई भी अश यदि दाग वाला है तो वह मैला ही कहलायेगा। घर के किसी भी कोने मे यदि थोडा भी कचरा है तो उसे स्वच्छता की सज्ञा कौन देगा ? इसी प्रकार जो मनुष्य जीवन की पावनता का इच्छुक है उसको जीवन का कोई भी भाग दूषित नही होने देना चाहिये। एक वार भी यदि जीवन अथवा चरित्र पर कलक लग गया तो उससे सारी साधना व्यर्थ हो जाती है। इसीलिये जीवन को विशुद्ध रखने के लिए वडी सावधानी की आव-श्यकता है।

इन्द्रियों का दुरुपयोग

कुरान मे कहा गया है—'कद अल्फ हमन् जक्का हा'—अर्थात् निश्चय ही उस आदमी का जन्म सफल हुआ, जिसने अपनी इन्द्रियो को पवित्र किया।" इन्द्रियो का दुरुपयोग करने वाले इन्द्रियो को अपवित्र कर देते हैं। एक पैसे मे मिलने वाली पचास सुइयो मे से यदि एक भी खो जाये तो आप उसको ढूढते है, अक्षरो को सुखाने के लिये उपयोग मे आने वाली रेती को एक डिविया मे सुरक्षित रखते है। इसी प्रकार चन्द पैसो मे मिलने वाली सैकडो दीपशलाकाओ मे से एक भी व्यर्थ जल जाय तो दु खी होते है। किन्तु अनत पुण्योदय से प्राप्त होने वाले मानव-जीवन का तथा इन्द्रियों का दुरुपयोग करके भी आप जरा भी चिन्ता नही करते। यह कितनी विचित्र स्थिति है?

दो प्रकार के स्टीमर

समुद्र के किनारे दो स्टीमर खड़े हैं। एक स्टीमर ऐसा है जिसमे रेडियो का सुमधुर सगीत है, विजली के पखे है, नृत्य की झकार है, खाने के लिये स्वादिष्ट व्यजन हैं, आराम करने के लिये सुखद शय्या है। किन्तु इस स्टीमर के मध्य मे एक छिद्र है, जिसके कारण इसके मझधार मे डूब जाने का खतरा है।

दूसरा स्टीमर ऐसा है जिसमे सुख-सुविधाओ का पूर्णतया अभाव है, खाने के लिये रूखा-सूखा भोजन है, विश्राम के लिये लकड़ी का पट्टा है, रेडियो का मधुर सगीत नही है। किन्तु यह स्टीमर खूब मजबूत है। इसके डूवने का कोई खतरा नही है और इस कारण यात्रा सुरक्षित है। आप इनमे से भवसागर को पार करने के लिये कौनसे स्टीमर पर चढना पसन्द करेगे? अर्थात् ससार-यात्रा मे भी दो प्रकार की जीवन-पद्धतियाँ है। एक मे भोग-विलास तथा आनन्द-प्रमोद की महत्ता है और दूसरे मे त्याग, वैराग्य एव सयम की। पहली पद्धति सुखद स्टीमर की तरह है जिसमे एक बडा पाप-रूपी छिद्र है। दूसरी प्रणाली का ढग दूसरे स्टीमर की तरह है जिसमे सुख तो कम है पर सुरक्षा अधिक है। अब आपको स्वय निर्णय करना है कि आप किस जीवन-पद्धति के स्टीमर मे वैठना पसन्द करेगे?

विषय की आग

'योगवसिष्ठ' मे वासना को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि आगे-पीछे का विचार छोडकर भावना के तीव्र आवेग से जो पदार्थो का ग्रहण होता है, उसे वासना कहते हैं। जैसे शलभ दीपक की ज्वाला को मृत्यु का कारण नही समझता और आवेग मे आकर उसकी लपट मे प्राणाहुति चढा देता है, वैसे ही मनुष्य भी विषय की आग को सुखो का अक्षय भण्डार समझकर आकठ उसमे डूब जाता है। फिर भला उद्धार कैसे हो ?

आत्म-धन

ज्ञानी पुरुषो ने इन्द्रियो को अत्यन्त खतरनाक चोर की उपमा दी है। साधारणत: चोर जिस घर मे रहता है, उस घर मे चोरी करने की मूर्खता नही करता। किन्तु इन्द्रियाँ तो आत्मा से सचालित होकर भी उसी के घर का विवेकरूपी धन लूट लेती है और उसे नष्ट कर देती है। अत इन्द्रियों से सतत जागरूकता अनिवार्य है, नही तो मनुष्य बहुत बड़े धोखे मे पड सकता है। 'प्रकरण रत्नाकर' मे इसीलिये तो कहा गया है—

सुच्चिय सूरो सो चेव पडिओ, तं पसंसिमो निच्चं।
इंदिय चोरेंहि सया न लुट्टियो जस्स चरणघनं॥

अर्थात्—वही शूर है, वही पडित है, हम सदा उसी की प्रशसा करते है, जिसका चारित्रधन इन्द्रियरूपी चोरो द्वारा नही लूटा गया।

पानी और विषय

पानी को चाहे जितने ऊपर से छोडा जाये, वह सदैव नीचे की ओर ही प्रवाहित होता है। यही उसका स्वभाव है। मन की भी गति लगभग ऐसी ही है। तप और सयम के द्वारा साधना के उच्चतर सोपान पर पहुँचकर भी जरा-सा असावधान होने पर विषयो मे आसक्त होकर वह पतन के मार्ग पर ही जाना पसन्द करता है।

नौकर नहीं, मालिक बनो

एक सद्गृहस्थ जैसे अपने नौकरो को अनुशासन मे रखकर उनसे भली-भाँति घर का कार्य सम्पन्न कराता है, उसी प्रकार इन्द्रियो के रथ की लगाम को मनरूपी सारथी विधिवत् नियन्त्रण मे रखता है। यदि घर मे

मालिक की अपेक्षा नौकर की इच्छा सर्वोपरि हो जाये तो अव्यवस्था का होना अवश्यम्भावी है।

अत मनुष्य को चाहिए कि वह इन्द्रियो को लाड न लडाये। जो इन्द्रियाँ माँगे वह उन्हे न मिलना चाहिए। यदि वे कुछ पाने का आग्रह करे तो उनसे साफ-साफ कह दिया जाये कि मैं तुम्हारा नौकर नही मालिक हूँ।

स्वाद फीका

वरफी खाने के वाद यदि कोई चाय पीता है तो उसका स्वाद फीका-फीका लगता है। कारण यह है कि वरफी मे चाय की अपेक्षा अधिक मिठास होती है।

यही हाल इन्द्रियो का भी है। यदि इन्द्रियो को ठीक तरह से आत्मिक सुख की प्राप्ति हो जाये तो फिर उनके लिये जगत् के नाना विषय-रस फीके लगेगे। इस प्रकार इन्द्रियाँ स्वत: विपय-वासना के चगुल से छुटकारा पा जायेगी। अत प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह इन्द्रियो को अधोमुख न होने दे, उन्हे निरन्तर तप-सयम के मार्ग पर ही अग्रसर करे।

किसको क्या समझायें ?

इन्द्रियो को भली-भाँति समझाये कि वे कुमार्ग से हटकर अविनाशी वीतराग की शरण में जाये ताकि उन्हे जन्म-जन्मातर तक नारकीय पीडाओ का अनुभव न हो। इसके लिये—

आँखो से कहे कि वे जगत् के रूप-रस के प्रति लोलुप-दृष्टि न रक्खे वल्कि अन्तर्मु खी होकर आत्म-स्वरूप का दर्शन करे। यही उनकी सार्थकता है।

कानो से कहे कि वे निंदा-वचन सुनने के अभ्यास का परित्याग कर वीतराग की वाणी को सुनने के लिये आतुर हो।

जिह्वा से कहे कि स्वादिष्ट व्यजनो के आहार को ही सर्वोपरि मानकर रस-लोलुप न वने। उसे वीतराग देव के सुमधुर गुणो का यथाशक्ति गायन कर आत्मशुद्धि का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए।

किसी ज्ञानी ने जिह्वा को उपदेश देते हुए कहा भी है—

रे जिह्वे ! कुरु मर्यादां, वचने भोजने तथा।
वचने प्राणसंदेहो, भोजने स्यादजीर्णता ॥

अर्थात्—हे जीभ ! बोलने एव खाने की मर्यादा कर। अमर्यादित बोलने से प्राणो के जाने का सन्देह रहता है और अमर्यादित खाने से अजीर्ण हो जाता है।

मन को समझायें

यह मन एक चलती हुई चक्की है। जैसे चक्की का काम अनाज को पीसना होता है, उसी प्रकार यह मन भी शुभ विचार रूपी धान्य न पीसकर कुविचार रूपी कुअन्न पीसने लगता है। जैसे चक्की बिना विश्राम किये अन्न पीसती रहती है, वैसे ही मन मे वगैर किसी रुकावट के शुभ-अशुभ विचार आते-जाते रहते है। इसलिये हमेशा प्रयत्न करना चाहिए कि मन रूपी चक्की पर कोई अशुभ विचारो का अन्न न ले आये अन्यथा उसे भी पीसना पडेगा। अग्रेजी मे एक कहावत है कि 'खाली मस्तिष्क शैतान की कर्मशाला है।' अत इसे खाली न छोडे, नही तो यह इन्द्रियो के वश मे होकर कुमार्ग पर पैर रख देगा।

आप किसी के घर भोजन करने के लिये आमत्रित है। उसने आपकी थाली मे वडे सुन्दर लड्डू लाकर रख दिये है। किन्तु किसी हितैपी ने आपको पहले से यह सूचित कर दिया है कि इन लड्डुओ मे विष है। ऐसी स्थिति मे आपका मन कितना भी लड्डू खाने को करे किन्तु आप लड्डू का स्पर्श भी न करेगे।

इसी प्रकार मन को भी समझाना होगा कि मीठी और मधुर वासनाओं को हाथ भी न लगाये क्योकि ये जहरीली हैं। यदि मन को यह समझा सके तो वेडा पार है।

मानव की दशा

गोस्वामी तुलसीदास ने शरीर की तुलना खेत से और मन की तुलना किसान से की है। जिस प्रकार किसान अपने खेत मे वीज डालता है और समय पूरा होने पर उसे खेती का फल मिलता है उसी प्रकार शरीर रूपी खेत मे मन रूपी किसान पाप और पुण्य के वीज डालता है। यह शरीर तो क्षणभगुर है। इसकी स्थिति तो सर्प के मुँह मे फँसे हुए मेढक की भाँति है। जैसे सर्प के मुँह मे मेंढक की मृत्यु सुनिश्चित है उसी प्रकार मृत्यु के मुँह मे शरीर का भी विनाश निश्चित है। फिर भी मेढक की जिह्वा की भाँति शरीर वासनाओ की मक्षिका को पकडने के हेतु आतुर है।

पचास-पचपन वर्ष की आयु वीतने पर मनुष्य को यह आभास होता है कि उसका अधिकाश समय तो विषय-सेवन मे ही वीत गया और अव मृत्यु दरवाजे पर खडी होकर अपना हिसाव माँग रही है। ऐसी स्थिति मे पाप का वैलेस तो वहुत मिलता है लेकिन पुण्य के खाते मे तो घाटा ही घाटा अर्थात् नुकसान ही नुकसान है। यदि मानव पहले से सतर्क रहे तो वह केवल पुण्य के ही वीज-वपन कर सकता है, नही तो पाप की फसल काटनी पडेगी।

वासना का आवरण

जैसे शरीर का आवरण वस्त्र है, और सूर्य के प्रखर प्रकाश का आवरण वादल है, उसी प्रकार आत्म-सूर्य का आवरण वासना है। आवरण का कार्य ही मूल रूप को आवृत्त करना है। इसीलिये आत्मा का प्रदीप्त अश वासना ढक लेती है।

ससार मे ऐसा कोई स्थान नही है, जहाँ आत्म सत्ता का निवास न हो, किन्तु वासना का आवरण आत्मा के उस विशुद्ध स्वरूप के निकट पहुँचने मे सर्वाधिक वाधक है। अत. वासना के उस आवरण को हटा देने पर ही साधक को आत्म-दर्शन सुलभ हो सकता है।

लोहा और हृदय

ऐसा व्यावहारिक अनुभव वताता है कि तेल लगा देने पर लोहे को जंग नहीं लगता। फिर उस लोहे पर कितना ही पानी डालिये किन्तु तेल की चिकनाई से उस पर कोई असर नही पड़ता।

आपके हृदय को वासना का जंग न लगे, उस पर पाप-विकारो की छाया भी न पड़े, इसके लिये हृदय को सात्त्विक भावनाओ के तेल मे डुवा कर रखे। यदि आप इस कार्य मे सफलता अर्जित कर लेते है तो आपका हृदय सदैव निर्मल और स्वच्छ वना रहेगा।

☆

१२

मोह-माया का जाल

- प्यास
- चीख
- स्थिरता
- मोह-मदिरा
- किसके लिए ?
- सम्यक्त्व के बीज कैसे उगे ?
- स्वर्ण-पिंजर
- कठघरे के कबूतर
- माया का रीछ
- मोक्ष की प्राप्ति
- माया-जाल
- कौन तपाता ?
- लक्ष्मी की चाल
- धन और नाखून
- जागते को क्या जगाना ?
- आपकी कौनसी वस्तु है ?

☐ मोम और पत्थर
☐ अपना और पराया
☐ शुभाशुभ फल
☐ कम त्यागो   ज्यादा पाओ
☐ असली आभूषण की चाह
☐ मोह-दशा
☐ मोह का क्लोरोफॉर्म
☐ घर का त्याग नही, आसक्ति का त्याग
☐ मौत की तैयारी कहाँ ?
☐ सत और ससारी
☐ नारायण के दर्शन
☐ पूजा की भूख
☐ उपवास
☐ आत्म-स्वरूप को पहचानो
☐ प्रभु का उपकार

मोह-माया का जाल



प्यास

मोह और माया की तृष्णा वडी प्रवल होती है। जैन-सिद्धान्त दीपिका मे मोह की व्याख्या इस प्रकार की गयी है—"राग-द्वेष परिणति-र्मोह."—राग-द्वेष के परिणाम को मोह कहते हैं। मोहग्रस्त प्राणी की सासारिक आसक्ति वडी छटपटाहट पूर्ण होती है। हिन्दी मे इसीलिए कहावत वनी है—"भई गति साँप छछूँदर केरी। लीलत उगलत पीर घनेरी।" अर्थात् साँप यदि छछूँदर को निगलता है तो वह मृत्यु को प्राप्त होता है और यदि उसे छोडता है तो अन्धा हो जाता है। यही स्थिति सासारिक प्राणियो की है। वे न तो मोह से सम्वन्ध विच्छेद कर पाते है, और न उससे सुख ही प्राप्त कर पाते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि मछली जब तक उलटी होकर पानी नही पीती तव तक उसकी प्यास शान्त नही होती। वैसे ही ससार के कामो से विपरीत होने पर ही मोह-माया के वन्धन से मुक्ति मिल सकती है।

चीख

मैंने देखा एक जगह ग्रामोफोन के आस-पास जन-समुदाय एकत्र होकर मधुर स्वर-लहरी का आनन्द ले रहा था। इसी वीच एक सज्जन ने आकर रिकार्ड पर से सुई को जरा-सा ऊपर उठा दिया। परिणामस्वरूप स्वरधारा भग हो गई और जन-समुदाय भी तितर-वितर हो गया। तव मैंने सोचा कि यदि मनुष्य ग्रामोफोन की सुई की भाँति माया-मोह से वचकर रहे तो उसे भी सासारिक चीख-पुकार से थोडा विश्राम मिल सकता है और उसके साथ ही उसे कर्म-वन्धन से मुक्ति भी मिल सकती है।

स्थिरता

श्री आचाराङ्गसूत्र मे उल्लेख है कि "मोहेण गब्भ मरणाइ एइ"— अर्थात् मोह से जीव बारम्बार जन्म-मरण को प्राप्त होता है। इसीलिए मनुष्य को यदि जीवन मे स्थिरता लानी है तो उसे मोहान्ध होकर ससार मे नही चलना चाहिए। इसका बडा सुन्दर उदाहरण हमे व्यावहारिक स्तर पर प्राप्त होता है। यदि कोई व्यक्ति सिनेमा देखने जाये और अपने निश्चित स्थान पर न बैठकर इधर-उधर बैठ जाये तो थोड़ी ही देर के बाद सिनेमा-घर का चपरासी उस स्थान से उसे उठने के लिए अवश्य विवश कर देगा और यह अस्थिरता तब तक बनी रहेगी जब तक कि वह अपने निश्चित स्थान पर नही बैठ जाता। इसी प्रकार मनुष्य की आत्मा जब तक अपने नियत स्वरूप को प्राप्त नही कर लेती तब तक वह भी मोहग्रस्त होकर आवागमन की अस्थिरता भोगती रहती है।

मोह-मदिरा

भर्तृहरि ने अपने 'वैराग्यशतक' मे लिखा है, "परिणाम को नही जानता हुआ पतग दीपक की तीव्र अग्नि में गिरता है। मछली भी अज्ञानता-वश काँटे सहित माँस को निगल जाती है। लेकिन सांसारिक आत्मा काम-भोगो को दुःखदायी जानते हुए भी नही छोड पाती। अहो ! मोह की महिमा कितनी भयकर है।"

जैसे मदिरा पीने वाला व्यक्ति अपने और पराये का भेद नही समझ पाता और दुराचरण कर बैठता है, वैसे ही मोह-मदिरा के उन्माद से मनुष्य कर्म के स्वरूप को समझने मे असमर्थ होता है।

किसके लिए ?

सासारिक जीवन मे बहुत बुरी तरह से व्यस्त प्राणी को देखकर मन मे आता है कि उससे एक प्रश्न पूछ लूँ कि भाई इतनी दौड-धूप तुम किसके लिए कर रहे हो ? सभव है वह बड़े असमजस के साथ मेरे प्रश्न का उत्तर दे दे कि मैं अपने और परिवार की सुख-सुविधा के लिए इतना परिश्रम कर रहा हूँ। उस समय मेरा दूसरा प्रश्न होगा कि तुम कैसे जानते हो कि इतना परिश्रम करके तुम सारे परिवार की सुख-सुविधा देने मे सफल हो जाओगे ? क्योकि सुख-सुविधा की परिभाषा वैयक्तिक होती है। संभव है

जो आपके लिए सुख और सुविधा है, वही परिवार के किसी व्यक्ति के लिए दु.ख और असुविधा हो।

यह प्रसग मेरे मस्तिष्क मे अपने कार्य मे सर्वथा तल्लीन मधु-मक्षिका को देखकर जागृत हुआ। कोई व्यक्ति मधु-मक्षिका से पूछे कि तुम यह मधु बड़े मनोयोग से किसके लिए सचय कर रही हो, तो इसका उत्तर उसके पास क्या होगा ? मोहग्रस्त प्राणी और मधु-मक्षिका दोनों ही निरुत्तर रहेगे।

सम्यक्त्व के बीज कैसे उगे ?

जैसे किसी वनस्थली मे वृक्षारोपण करना हो तो पहले उसे खाद पानी देकर मुलायम और उर्वर बनाते हैं ताकि वृक्ष के विकास अथवा बीज वपन मे कोई कठिनाई न हो। यदि दग्ध जमीन पर हम स्वस्थ बीज भी डाल दे तो परिणाम अभिलाषा के विपरीत ही होगा अर्थात् वह बीज सूखकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देगा। इसी तरह जिस प्राणी का मन मोह-ज्वाला से ग्रस्त हो वहाँ ज्ञान-दर्शन और चारित्र रूपी बीज कैसे अकुरित हो सकते है ?

स्वर्ण-पिंजर

बहुत पहले हिन्दी के सुविख्यात कवि श्री शिव मगलसिह 'सुमन' की एक कविता पढी थी जिसका भाव यह था कि अनन्त व्योम मे उन्मुक्त उडान भरने वाला एक सुआ बहेलिये के बहकाव मे आकर पिंजरबद्ध हो गया। वह सुआ बड़ी दयनीय स्थिति मे पिंजरे मे पडा-पडा अपनी स्वतन्त्रता के स्वप्न देखने लगा। उसे यद्यपि खाने-पीने के लिए सोने की कटोरी मे मेवा दिया जाने लगा किन्तु स्वतत्रता-प्रेमी-हृदय होने के कारण उसे वह रुचिकर नही लगता। उसे तो नीम के कड़ुवे फलो के स्वाद की तृष्णा सताती। उसे ऐसा प्रतीत होता कि पिंजरबद्ध होकर सोने की कटोरी मे दिया गया मेवा और पानी का स्वाद नदी, तलाव और नाले के जल के स्वाद की अपेक्षा तुच्छ है। तब वह कहता है—

हम बहता जल पीने वाले, मर जायेंगे भूखे-प्यासे।
कही भली है कटुक निबौरी स्वर्ण-कटोरी के मेवा से ॥

इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि-जीव इस प्रकार वैभव से पूर्ण ससार को

स्वर्ण-पिंजर के रूप मे बधन ही मानता है। इसमे उसे जरा भी आनन्द की प्राप्ति नही होती। यह तो मोह-माया से ग्रस्त व्यक्ति के लिए ही सुखदायक स्थान है, स्वतत्रता के प्रेमी के लिए नही।

कठघरे के कबूतर

शुभचन्द्राचार्य ने लिखा है कि 'अलं मायाप्रपञ्चेन, लोकद्वय-विरोधिना'—दोनो लोको को बिगाडने वाले माया-प्रपच से दूर रहो। आचार्य की यह सूक्ति व्यावहारिक जीवन के लिए तो वरदान-स्वरूप है। मैं आज चारो ओर ऐसे लोगो को देखता हूँ जो नित्य-प्रति माया और प्रपच की मुँहभर निंदा करते हैं किन्तु स्वय माया के जाल मे आबद्ध है। जैसे पालतू कबूतर कठघरे को छोडकर नही जाते। उन्हे चाहे जितनी स्वतत्रता और मुक्ति का अवसर प्राप्त हो, वे आकाश मे थोड़ी देर पंख फडफडाने के पश्चात् पुन अपने कठघरे मे लौट आते हैं। उसी प्रकार आज देखता हूँ कि कई ऐसे गृहस्थ है जो साधु-सत्सग मे जाकर माया के दुर्गुणो का प्रवचन सुनते हैं और घर मे आकर पुनः मायावी दुनिया के सदस्य बन जाते है। वे मेरी दृष्टि मे तो कठघरे के कबूतर ही हैं जो स्वतत्रता एव मुक्ति का लाभ लेने मे असमर्थ हैं।

माया का रीछ

सरिता के अजस्र प्रवाह के साथ तीव्रगति से एक रीछ बहा जा रहा था। उसी सरिता के घाट पर एक सन्यासी स्नान कर रहा था। उसने समझा कि यह तो बडा सुन्दर काला कम्बल बहा जा रहा है। यदि मैं इसे पकड लूँ तो जाडे मे मुझे पर्याप्त सुविधा हो जायेगी। उसने मोहवश नदी मे तैरकर उस कम्बल को पकडना चाहा। जब वह निकट पहुँचा तो रीछ ने अपनी जीवन-रक्षा हेतु स्वय ही उसे पकड़ लिया। अब तो 'आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास' वाली कहावत चरितार्थ हो गयी।

नदी के किनारे खडे एक सज्जन पुरुष ने चेतावनी देते हुए सन्यासी से रीछ को छोड़ देने के लिए कहा। सन्यासी मँझधार से ही चिल्लाया—"अरे भाई, मैं तो रीछ को कब से छोड़ना चाहता हूँ, किन्तु यह रीछ ही मेरा पीछा नही छोड़ रहा है।" यही हाल सांसारिक प्राणियो का है। वे भी माया रूपी रीछ के चगुल मे बुरी तरह फँस गये है। यदि वे माया को

छोड़ना भी चाहे तो माया उन्हे नही छोडती। अत माया के रीछ के निकट जाने का दुष्परिणाम वे भोग रहे है।

मोक्ष की प्राप्ति

दर्पण की ओर मुँह करके फूँकने से उसका स्वरूप धुंधला हो जाता है। उसी प्रकार मोह-माया के निकट जाने से अपना आत्म-भाव आवृत हो जाता है। कीचड का साथ छोडे विना कमल जल से ऊपर नही उठ सकता। वह कीचड मे जन्म लेकर भी उससे हमेशा ऊपर उठा रहता है। इसी प्रकार से मोक्ष के अभिलाषी साधक को मोह-रूपी कीचड से हमेशा ऊपर उठना चाहिये। उसको त्यागे विना वह सासारिक सीमाओ का अतिक्रमण नही कर सकता।

माया-जाल

'माया महाठगिनि मैं जानी'—ऐसा कहकर क्रान्तिकारी कबीर ने मानव-समाज को वहुत पहले सचेत किया था किन्तु मैं देखता हूँ कि आज भी मानव माया के जाल मे बुरी तरह से उलझा हुआ है। उससे मुक्ति की कौन कहे, दिन-प्रतिदिन वह माया के सुनहले जाल मे घिरता जा रहा है। जैसे मकडी स्वय के द्वारा निर्मित जाल मे फँसकर अन्तिम साँस ले लेती है, उसी तरह मानव भी अपने द्वारा बनाये गये मायावी जाल मे ही उलझकर अपना दम तोड देता है। लेकिन इस माया के जाल का निर्माता वह स्वय है, इसे कौन समझाये ? उसकी अज्ञानता उस मकडी से कम नही है जो स्वय के बनाये जाल मे ही स्वयं को विसर्जित कर देती है।

कौन तपाता ?

जब जलते हुए चूल्हे पर बर्तन मे जल भरकर रखा जाता है तो अग्नि की ताप से बर्तन गर्म होकर जल को गरम करने लगता है। अज्ञानतावश कोई यह सोच बैठे कि सीधे अग्नि जल को गर्म कर रही है तो यह वडा भ्रम है। वस्तुत बर्तन का आवरण ही पानी को तपाता है। उसी तरह शरीर का ममत्व ही आत्मा को विविध प्रकार की कष्टाग्नि मे झुलसा रहा है। यदि शरीर का ममत्व छूट जाये तो आत्मा की अनेक वाधाये भी छूट सकती है। शरीर आत्मा का आवरण-मात्र ही तो है। लेकिन हम आवरण को अधिक महत्त्व देकर भूल से आत्मा को कष्ट मे डालते हैं।

लक्ष्मी की चाल

एक जनश्रुति के अनुसार एक भोला किसान प्रातः भ्रमण हेतु पश्चिम दिशा की ओर उन्मुख होकर वन में जा रहा था। उसकी छाया उसके आगे-आगे चल रही थी। यह देखकर किसान ने समझा कि कोई भूत उसके आगे-आगे चल रहा है। भय के वशीभूत होकर वह उस भूत से बचने के लिए दौड़ने लगा। लेकिन दौड़ते-दौड़ते परेशान हो गया फिर भी भूत उसके आगे-आगे ही चल रहा था। रास्ते में एक सिद्ध महात्मा ने उसकी परेशानी को समझकर उसका मुँह घुमाकर पूर्व की ओर कर दिया। अब उसका परिछाया रूपी भूत उसके पीछे-पीछे चलने लगा। उससे किसान का भय दूर हो गया।

इसी प्रकार संसार मे लक्ष्मी की चाल भी बडी विचित्र है। जो उसकी ओर मुँह करके पकडने के लिए दौडता है, उससे यह कोसों दूर भागती है। लेकिन जो व्यक्ति इससे विमुख होकर उससे दूर रहता है उसके साथ यह स्वय दौडी आती है।

धन और नाखून

एक चिंतक ने धन को वढे हुए नाखून की उपमा दी है। शरीर में वढे हुए नाखूनो को न काटने से जिस प्रकार मैल भर जाता है, और उससे अनेक प्रकार के रोगो की अभिवृद्धि की सभावना रहती है। उसी प्रकार वढी हुई धन-दौलत का समय पर सदुपयोग न करने से वह भी समाज रूपी शरीर मे अनेक विकृतियाँ पैदा करने वाली वन जाती है। इसीलिये सतो ने लक्ष्मी या धन के आने पर उसे सदुपयोग मे लगाने की सत्प्रेरणा दी है। उदाहरणार्थ, कवीरदास ने लिखा है—

ज्यौ जल वाढै नाव मे, घर मे वाढै दाम।
दोनो हाथ उलीचिये, यही सयानौ काम॥

यदि समुद्री-यात्रा मे नाव मे छिद्र हो जाये तो सारे नाविक दोनों हाथो से उस छिद्र से आने वाले जल को वाहर फेकते है। यही हालत सज्जन पुरुषो की है। यदि लक्ष्मी ने उन पर अपार कृपा की है तो वे भी उसकी माया मे न बँधकर उसे मुक्तहस्त से सामाजिक कार्यो मे दान देते है।

जागते को क्या जगाना ?

एक राजस्थानी कहावत प्रचलित है—"सूता नै जगावै पण जागता नै कांई जगावै"—यदि कोई सोया हुआ हो तो उसे जगाया जा सकता है किन्तु जागते को क्या जगाना ? मैं सोचता हूँ कि जिस व्यक्ति ने यह कहावत वनाई, वह वडा वुद्धिमान था। क्योकि सोये हुए को जगाना सरल है, किन्तु जागते हुए को जगाना वड़ा कठिन है। मोहासक्त ससारी आत्माओ की प्राय यही दशा है। वे जागते हुए भी सुषुप्त है।

आपकी कौन-सी वस्तु है ?

एक उर्दू शेर है—

क्या तवगर क्या गुनी, क्या पीर और क्या वालका।
सवके दिल मे फिक्र है, दिन-रात आटे-दाल का॥

इस शेर के सदर्भ मे मुझे एक घटना याद आ गई। एक वार एक भाई मेरे पास आया और कहने लगा—'मैं इस जीवन मे कुछ कर दिखाना चाहता हूँ।' मैंने सहजता से पूछा—'आप क्या कर दिखाना चाहते हैं ?' उसने उत्तर दिया—'यही वस, कुछ धन-सग्रह कर परिवार के लिये आजीविका का प्रवन्ध कर लेना चाहता हूँ और जमीन-मकान आदि लेकर परिवार को संतुष्ट कर देना चाहता हूँ।'

मैं इस वात को सुनकर थोडी देर सोचता रहा। मेरे मन मे आया कि सचमुच यह इन्सान कितने वड़े मोहान्धकार मे भटक रहा है। इसे यह भी पता नही है कि आज तक सवको कौन सतुष्ट कर सका है। मैंने मुस्कराते हुए कहा—'आप यह क्यो नही सोचते कि जव आप इस दुनिया मे नही होगे तव इन सगृहीत वस्तुओ मे कौन-सी वस्तु आपकी होगी ?' मैंने देखा कि उसके नेत्रो मे पश्चात्ताप के आँसू तैर रहे थे।

मोम और पत्थर

ससार मे दो प्रकार के जीव होते हैं—भव्य और अभव्य। भव्यात्मा मोम सदृश होते है जिन पर उपदेश की जरा-सी ताप लगते ही प्रतिक्रिया होती है, अर्थात् वे पिघलने लगते हैं। सासारिक मोह और माया से अपने को तटस्थ कर लेते हैं और कल्याण-मार्ग के पथिक वनकर साधनाभिमुख हो जाते हैं। किन्तु अभव्य आत्माये पत्थर के समान होती हैं, उन पर उप-

है, अथवा उसका इन्जेक्शन दे देते हैं जिससे रोगी को शरीर की चीर-फाड़ करते समय कोई पता न चले। रोगी अचेतावस्था में पड़ा रहता है और उसे पता ही नही चलता कि उसके शरीर के किसी भाग का ऑपरेशन हो रहा है। सासारिक जीवन मे यह कार्य मोह का क्लोरोफॉर्म करता है। बड़े-बड़े ज्ञानियो को भी इस इन्जेक्शन ने वेसुध कर दिया है। इससे मनुष्य को पता भी नही चलता कि किस प्रकार उसके आत्म-तत्त्वो की हानि हो रही है और वह अचेतावस्था की भाँति चुपचाप निष्क्रिय पड़ा रह जाता है।

घर का त्याग नहीं, आसक्ति का त्याग

ऐसा कहा जाता है कि एक पक्षी अपनी चोंच मे मांस का एक टुकडा लेकर उड़ा। उस पर कौवे की दृष्टि पडी और वह पक्षी का पीछा करने लगा। पहले तो पक्षी वहुत देर तक कौवे से अपनी रक्षा करता रहा किन्तु अन्त मे हारकर उस मास के टुकड़े को छोडकर शाति से एक पेड की शाखा पर जा बैठा। सुप्रसिद्ध सन्त दत्तात्रेयजी ने जब इस दृश्य को देखा तो उन्होने उस पक्षी को गुरु मानते हुए कहा—"जहाँ तक आसक्ति रूपी मास का टुकडा नही छूटेगा, वहाँ तक क्रोध रूपी कौवे पीछा नही छोड़ेगे।"

इसी प्रकार कोई भी धर्म या मजहव यह नही सिखाता कि घर को छोडने पर ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। धर्म तो यह कहता है कि मुक्ति प्राप्ति के हेतु घर छोडने की अपेक्षा घर के प्रति आसक्ति छोडने की जरूरत है।

घर यदि छोड भी दिया किन्तु घर के प्रति आसक्ति न छूटी तो दूसरा घर वनाने मे कितना समय लगेगा ? फिर इस घर मे और उस घर में अन्तर ही क्या है ?

मौत की तैयारी कहाँ ?

एक वार ब्रह्मलोक मे नारद को अकेला भटकता हुआ देखकर ब्रह्मा ने पूछा—"कहो नारद! अकेले कैसे आये ?" नारद ने तत्काल उत्तर दिया—"पूज्यवर ! क्या करूँ ? यहाँ कोई आना ही नही चाहता। मैंने कुछ दिन पहले एक वृद्ध व्यक्ति से यहाँ चलने को कहा तो कहने लगा कैसे चलूँ, मुझे तो वेटी व्याहनी है, खेत काटने हैं, मुकदमा लडना है। ऐसा ही वहाना वनाते-वनाते वह एक दिन मर गया और अपने ही घर मे कुत्ते के रूप मे पुन-

जन्म पा गया। मैंने फिर उससे एक दिन ब्रह्मलोक मे चलने को कहा। उत्तर मिला—कैसे चलूं ? घर मे पहरा लगाना है। एक दिन किसी ने उस कुत्ते के सिर पर लाठी से प्रहार किया जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। इस वार वह सर्प योनि मे आ गया। मैंने चलते-चलते फिर उससे पूछा कि भाई अव तो भगवान के दरवार मे चलो। उसने वड़े कटु स्वर मे कहा—"मेरे ही पीछे क्यो आप हाथ धोकर पड़े हैं ? क्या कोई दूसरा नही मिलता ?"

मुझे इस प्रसग को पढकर वडा आश्चर्य हुआ कि मनुष्य सचमुच मे कितना अज्ञानी है जो सव चीजों की तैयारी और चिन्ता मे तो लगा है किन्तु मोह के कारण पर-भव की तैयारी विल्कुल नही कर रहा है। शादी-व्याह की तैयारी कितने महीनो पहले शुरू कर दी जाती है। किसी दीर्घ यात्रा मे जाने के पहले कुछ दिनो तक तैयारी चलती रहती है। शादी और यात्रा तो किसी कारण से रुक भी सकती है किन्तु मृत्यु तो निश्चित है फिर भी मनुष्य पर-लोक की तैयारी नही करता। वह तो माया के जजाल से विश्राम ही नही पाना चाहता।

संत और संसारी

उर्दू का एक वडा प्रचलित शेर है—

गुजर की जव न हो सूरत, गुजर जाना ही वेहतर है।
हुई जव जिन्दगी दुश्वार, मर जाना ही वेहतर है॥

इस शेर से एक बडा महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आता है कि जैसे वेहतर जीना कठिन है, वैसे ही वेहतर मरना भी कम दुश्वार नही है। सत और ससारी की जीवन-प्रक्रिया का अन्तर स्पष्ट करने के लिये मैं एक उदाहरण देना चाहता हूँ—

मक्खन के गोले मे यदि वाल फँसा हो तो उसे बाहर खीचने मे जरा भी तकलीफ नही होती। उसे वडी सरलता से वाहर खीचा जा सकता है। लेकिन यही वाल यदि मिट्टी के गोले मे फँस गया हो तो उसे खीच निकालना वहुत कठिन होता है। जरा-सी ताकत लगाने पर यह टूट सकता है।

मानव का जीवन भी लगभग ऐसा ही है। संत की आत्मा वड़ी आसानी से माया-मोह के दुर्दम पाश को तोड़कर जीवन-मुक्त हो जाती है। कर्त्तव्य पूर्ण होते ही वह इस लोक की सीमाओ का अतिक्रमण कर जाती है।

देशामृत का सिंचन भी कार्य नही करता। उनको कितना भी उपदेश दिया जाये पर वे लकीर के फकीर वने रहते हैं, वे इस माया के जजाल से मुक्त होना ही नही चाहते।

अपना और पराया

महाभारत के शाति पर्व मे कहा गया है कि दो अक्षरो का "मम" अर्थात् ममत्व मारने वाला है और तीन अक्षरो का 'निर्मम' यानि निर्ममत्व तारने वाला है। यह बात बडी विचारपूर्ण है। मैं देखता हूँ कि वड़े से वड़ा डॉक्टर अपने पुत्र का व्यवस्थित ऑपरेशन नही कर पाता क्योकि उसे अपने पुत्र के अगो की शल्य-चिकित्सा करने मे वेदना होती है, उसे लगता है कि वह अपने पुत्र का शरीर अपने हाथो से काट रहा है। इसीलिये यह ऑपरेशन वह दूसरे डॉक्टरो से करवाता है। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य को अपनी वस्तु से स्वाभाविक ममत्व होता है और यह ममत्व उसके कार्य मे वहुत वाधक है।

शुभाशुभ फल

कालरूपी उद्यान मे जीवनरूपी अनेक वृक्ष सुभोभित हैं। ये समयानुसार पल्लवित, पुष्पित एव फलदायी होते हैं और कालान्तर मे विसर्जित हो जाते है। इन वृक्षो के सरक्षण का कार्य आत्मा रूपी माली करता है। इनके फलो का प्रथम अधिकारी भी वही है। किन्तु इन फलो की दो कोटियाँ है—सुखदायी और दु खदायी। जो दु खदायी है वे अधिक रगीन और आकर्षक होते हैं, उनकी ओर आत्मा का खिचाव कुछ अधिक होता है। सुखदायी फलो की विशिष्टता उनकी सरलता और अकृत्रिमता मे है। इसीलिये उनकी ओर ध्यान कम जाता है। आत्मा रूपी माली मोहवश आकर्षक फलों का ही भक्षण कर वैठता है। परिणामस्वरूप उसे अशुभ फलों का दुखदायी परिणाम भोगना पडता है। इसके विपरीत विवेकी आत्मा सुफलो की ओर आकर्पित होता है, उसके मन मे क्षणभर के लिये भी भ्रान्ति नही होती। सच पूछा जाये तो इस काल-वाटिका मे मानव-जीवन ही एक कल्पवृक्ष है। वाकी सभी विनाशी और कटु फल देने वाले हैं। साधक को चाहिए कि वह इस कल्पवृक्ष को मुरक्षित रखकर उसके सुफलो से मानव-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करे।

कम त्यागो : ज्यादा पाओ

किसान अपने खेत मे बोने के समय मुट्ठी भर अनाज के दाने विखेर देता है। मौसम आने पर खाद और जल की सहायता से वे ही दाने सारे खेत मे फसल दे देते है और किसान का घर धन-धान्य से भर जाता है। यदि उसने प्रारम्भ मे ही खेत मे आसक्तिवश दाने न छोड़े होते, तो मौसम आने पर वह खाली हाथ रहता। इसी तरह से धन-सम्पत्ति, यश-कीर्ति, सब नाशवान है। इनके प्रति मोहजनित व्यवहार उचित नही। जो इनका त्याग करता है, वही अन्त मे ज्यादा पाता है। इनका ममत्व त्यागकर ध्यान-योग की साधना करनी चाहिए जो भव-भव तक साथ चलती है।

असली आभूषण की चाह

सम्पन्न वर्ग की नारियाँ नकली आभूषण पहनने मे लज्जा का अनुभव करती हैं। इसीलिये लाखो रुपये खर्च कर असली हीरे, पन्ने तथा स्वर्णाभूषणो का सग्रह करती है। लेकिन ये सारे आभूषण वस्तुत: नकली है, क्षणभगुर हैं। इनका विनाश तो अवश्यम्भावी है। यदि जीवन की महानता समझ ली जाये तो इन तथाकथित आभूपणो के प्रति मोह स्वत समाप्त हो जाये। जीवन भी शाश्वत नही है तो जीवन को सौन्दर्य देने वाले बाह्य अलकारो को कैसे शाश्वत माना जा सकता है ? मनुष्य यदि अपनी सद्गति को पहचान ले तो अलकारो का मोह दूर हो जाये। जो विवेक और ज्ञान से सम्पन्न है उन्हे आभूषणो की कोई चाह नही होती।

मोह-दशा

क्रोध एव मोह का सनातन सम्वन्ध है। सीता के कारण राम-रावण के वीच भयानक युद्ध की विभीपिका का निर्माण हुआ। हाथी और हार के प्रति ममत्व भाव से चेडा राजा और कोणिक के वीच घोर युद्ध हुआ। पुत्री के मोह के कारण सोमिल ने अपने दामाद मुनि गजसुकुमाल के सिर पर धधकते हुए अगारे रखे थे। इन समस्त उदाहरणो मे क्रोध और मोह के घनिष्ठ सम्वन्ध की छाया मँडरा रही है। मोह की दशा ससार मे अत्यन्त विचित्र है। इससे विरला ही वच सकता है।

मोह का क्लोरोफार्म

शल्य-चिकित्सा करने के पूर्व डॉक्टर रोगी को क्लोरोफॉर्म सुंघा देते

लेकिन सांसारिक आत्मा मिट्टी के गोले में फँसे हुए वाल की तरह है जिसे खीचने में वडी कठिनाई होती है। वह तो माया और मोह के आवर्त्त में इस तरह पड़ी रहती है कि मुक्ति की कामना ही उसके लिये दुश्वार हो जाती है। अत इस प्रसग से हमें प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए।

नारायण के दर्शन

वद्रीनारायण की यात्रा करते समय जय और विजय नाम के दो पर्वत मार्ग मे पड़ते हैं। इन पहाड़ो को पार करना वहुत कठिन है किन्तु जो व्यक्ति इनको पार कर जाते हैं उन्हे नारायण के दर्शन प्राप्त हो जाते हैं। अत सच्चे यात्री को इनके पार करने की अतीव लालसा होती है।

इसी प्रकार कर्म और माया इन दो पर्वतों को पार कर लेने से जीवन-यात्रा सुगम हो जाती है और प्रभु के अर्थात् आत्मा रूपी नारायण के दर्शन भी सुगम हो जाते हैं।

पूजा की भूख

'सूत्रकृतांग' मे कहा गया है—

धिइमं विमुक्के ण य पूयणट्ठी,
न सिलोयकामी य परिव्वएज्जा।

अर्थात्—"धैर्यशाली पुरुष विकारो से विमुक्त होता हुआ पूजा एव यश-कीर्ति का इच्छुक न बनकर, तप-सयम मे विचरे।" मैं देखता हूँ कि काम और द्रव्य का परित्याग करने वाले साधु भी कीर्ति के व्यामोह से नही वच पाते।

गृहस्थ के लिये काम-सुख या धन-दौलत का छोडना जितना क़ठिन है, उसकी अपेक्षा साधु के लिये मान-प्रतिष्ठा का मोह त्यागना कठिन है। घर-गृहस्थी को त्याग कर साधु वन जाने पर भी मान-प्रतिष्ठा की क्षुधा मन मे प्रज्वलित रहती है। इसीलिये साधु-समाज भी इस मोह को नही त्याग पाता। धीरे-धीरे अनुकरण करने वालो की तथा शिप्य-शिष्याओ की भीड वढती जाती है और सासारिक मोह की निन्दा करने वाले संत भी ससार मे लिप्त होते जाते है। यह कैसी विडम्वना है? आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी को 'घर जोडने की माया' कहा है जिससे वड़े-वड़े साधु-सत भी नही वच पाते। जिस क्रान्तदर्शी कवीर ने घर की माया की कटु आलोचना की, उसी के पथ पर चलने वालो ने कवीर के ही नाम पर मठो की

स्थापना की। कबीर के साथ इससे बडा अन्याय और क्या हो सकता है ? कबीर ने तो बड़े स्पष्ट शब्दो मे चुनौती दी थी:—

"कबिरा खडा बाजार मे, लिये लकुटिया हाथ।
जो घर फूंकै आपना, चलै हमारे साथ॥"

उपवास

उपवास का अर्थ है प्रभु के उप (समीप) मे वास (रहने) की प्रक्रिया। इसी से उपासना शब्द बना है जिसका अर्थ होता है प्रभु के समीप आसन लगाना। जिस सत्कार्य से जीव प्रभु के समीप पहुँच सकता है, उसी का नाम उपवास है। जो मानव सात्त्विकता के साथ मन को आत्म-भाव मे लीन करता है, उसी का उपवास सच्चा है।

लेकिन जिह्वा के स्वाद के लिये भाँति-भाँति के मधुर मिष्ठान्न खा कर जो उपवास का नाम लेते हैं, वे एक भ्रामक प्रक्रिया के शिकार है। यह उपवास नही बल्कि जीभ के स्वाद को बढावा देना है।

केवल शरीर से ही उपवास नही होता, बल्कि मन के सयम से उपवास का घनिष्ठ सबध है। इसी को सच्चा उपवास कहते है। मन के उपवास का अर्थ है—मन को सात्त्विकता के साथ आत्मा के समीप मे रखना और मोह-त्याग कर सयम का आचरण करना।

आत्म-स्वरूप को पहचानो

यदि राह चलते जेब से सौ रुपये गायब हो जाये तो बहुत दु ख होता है। किन्तु यदि यही रुपये किसी दु खी व्यक्ति को अन्तर की पीडा मिटाने के लिए दे देते तो मन को अत्यधिक उल्लास और आह्लाद की प्राप्ति सभव थी। लेकिन पहले तो मोहवश यह कार्य किया नही, अब पछताने के सिवाय मार्ग ही क्या है ?

अत. अपने को प्रकृति की ओर से जो वरदान प्राप्त हुए हैं उनके खो जाने से पूर्व ही उनका सदुपयोग कर लेना बुद्धिमानी है अन्यथा पश्चा-ताप के अतिरिक्त और कुछ नही मिलेगा।

जीवन की गतिविधि भी ऐसी ही है। ससार के राग-रंग मे एक-एक दिन व्यतीत होता जा रहा है। जिस शरीर को सजाने मे इतना समय और पैसा बरबाद हो रहा है, वह भी एक दिन चिता की भस्म मे बदल जायेगा। अत: समय रहते शरीर को सत्कर्म मे लगाना और शरीर का मोह

कम करना जरूरी है। दुर्लभ मानव-जीवन को परोपकार के मार्ग पर प्रवृत्त कर देने मे ही कल्याण है। ज्ञान की लम्वी-लम्वी वातो मे उलझने से कुछ नही मिलता, जब तक कि उस ज्ञान को आचरण में न उतारा जाय। ज्ञान को पचाने का अर्थ है आत्मस्वरूप को पहचानना। उसकी पहचान के बिना सारी सासारिक पहचान अधूरी है।

प्रभु का उपकार

भक्त एकनाथ की पत्नी वडी भली, विनम्र और सहृदय थी। उसके स्वभाव से सभी बड़े प्रसन्न रहते थे। भक्त एकनाथ भी ईश्वरीय कृपा समझ कर कहा करते—"मेरे नाथ! आपकी कितनी महान कृपा है कि मुझे घर बैठे ही सत्सग मिल जाता है। इससे मेरे मन पर दुर्विचार की छाया नही पडने पाती और आपके प्रति मन मे श्रद्धा भी वनी रहती है।"

लेकिन तुकाराम की पत्नी का स्वभाव बडा प्रतिकूल था। वह कटु-भाषिणी थी। किसी भी काम के पूर्व ही वह कठोर व्यग्य-वाणो से भक्त तुकाराम का हृदय वेध देती थी। किन्तु तुकाराम इसे भी ईश्वरीय वरदान समझकर कहते थे—"हे प्रभु! घर के प्रति मैं आसक्त न वनूं सभवत. इसीलिए आपने मुझे ऐसी पत्नी दी। प्रभु! आपका उपकार कभी नही भूलूंगा। क्योकि इससे माया मे लिप्त होने का अवसर ही नही मिलता और न ऐसा सयोग ही उपस्थित होता है कि मैं आपको भूलकर घर की माया मे अपने को खो दूं।"

भक्त नरसिंह की पत्नी आधी उम्र मे ही मर गई थी। भक्त के मन मे इसके प्रति कोई पश्चाताप न था। प्रसन्न होकर अपने उद्गार अभिव्यक्त करते हुए उन्होने यही कहा—

भलु थयु ते भागी जजाल,
सुख थी भजसू श्री गोपाल।

हे भगवान! आपने मुझ पर खूब कृपा की जिससे मेरा सारा भव-मोह मिट गया। माया के जाल से मुक्ति मिल गई। अव मैं आपका सुख-पूर्वक भजन कर सकूंगा।

ये तीनो उदाहरण इस वात के प्रमाण है कि प्रभु का उपकार किसी भी स्थिति मे नही भूलना चाहिए। जैसी भी स्थिति मे प्रभु (प्रकृति) रखे भक्त को उसी स्थिति मे रहना चाहिए। इसीलिए तो कहा गया है—

"जाहि विधि राखे राम, ताहि विधि रहिए।" ☆

१३

संसार के दो बन्धन : राग-द्वेष

- दोनो ही विष
- राग और द्वेष
- जातिवाद का जहर
- समता
- चलनी
- ईर्ष्या
- ईर्ष्या का वरदान
- दुर्गुण का छिद्र
- असद्‌विचारो का प्रवेश
- बुरे विचारो से कैसे बचें ?
- दुश्मन कहाँ है ?
- भय किसको ?
- भूल
- शिकायत है
- ईर्ष्या की आग
- स्वच्छता किसकी ?

- ☐ चरित्र का इत्र
- ☐ विराग मे ही परमात्मा
- ☐ गणपति वनो
- ☐ कारण को समझिये
- ☐ अपने को वडा मानना
- ☐ पाप के भ्रमर
- ☐ जीवन की उपयोगिता
- ☐ अमर क्या है ?
- ☐ पहले और वाद मे
- ☐ अहता का त्याग
- ☐ उल्लुओ का चिन्तन
- ☐ अहकार का विष
- ☐ सागर की विराटता
- ☐ अह की ज्वाला
- ☐ अहंकार की चट्टान
- ☐ सच्चा जानकार कौन ?
- ☐ अहकार की भाषा
- ☐ वीतराग की शरण
- ☐ भय का भूत
- ☐ अभिमान का दुर्ग
- ☐ जीवन कैसा हो ?
- ☐ उपदेश कहाँ असर करता ?
- ☐ वन्दर और पक्षी
- ☐ कितना अन्याय ?
- ☐ अभिमान का छिद्र
- ☐ नम्रता की जरूरत है
- ☐ दोपदर्शी
- ☐ झूठा वखान

संसार के दो बन्धन : राग-द्वेष



++

दोनों ही विष

राग और द्वेप की विषैली लताये मनुष्य के जीवन-रस को निरन्तर चूसती जा रही हैं। साधारण साधक तो इनका मूलोच्छेदन कर ही नही पाता। जैनदर्शन इनकी गणना 'अज्झत्थदोस' (आन्तरिक दोप) के अन्तर्गत करता है।

राग और द्वेप की सहारक-शक्ति समान ही है। सिर्फ दोनो के स्वाद मे थोडा अन्तर है। राग मधुर है तो द्वेष कटु। जव राग मे मन लिप्त हो जाता है तो मनुष्य अपने को स्वार्थ की भावना मे सीमित कर लेता है और इसी मे उसे विशेप सन्तोष मिलने लगता है जवकि द्वेप राग से भी अधिक भयकर है। उससे व्यक्ति को बाहर और भीतर दोनो ओर से निरन्तर जलना पडता है। अत आत्मा के लिए राग और द्वेष दोनो ही विष है, और दोनो ही आत्मिक गुणो को नष्ट करने वाले है। जहर चाहे कडुवा हो या मीठा उसका प्रभाव तो मारक ही होता है।

राग और द्वेष

सुप्रसिद्ध जैन-सत एवं विचारक उपाध्याय अमरमुनिजी ने राग और द्वेष की विभीपिका पर प्रकाश डालते हुए एक स्थल पर लिखा है—"कभी-कभी मैं सोचता हूँ, राग और द्वेप एक प्रकार का वेग है, नशा है। जब यह मन मस्तिष्क पर छा जाता है, तो फिर मनुष्य पागल-सा हो जाता है। वह कुछ सोच नही सकता, विचार नही सकता। वस, वह नशे के मादक प्रवाह मे मुर्दे की भाँति वहता जाता है। यह प्रवाह अधोमुखी होता है,

मनुष्य को नीचे से नीचे की ओर धकेलता ले जाता है, और यह अन्त मे किस अन्धगर्त में ले जाकर गिरायेगा, इसकी कोई कल्पना भी नही हो सकती।"

मैं समझता हूँ कि सूत्र रूप मे विचारक का यह कथन वडा महत्त्व-पूर्ण है। आज सासारिक अधोगति का सवसे वड़ा कारण मन का राग-द्वेप से आवद्ध होना है। संसार के भयानक कुकृत्य इसी के परिणाम है। अतः साधक को इस विडम्बना से सदैव वचकर चलना चाहिए।

जातिवाद का जहर

ऐसा विश्वास चला आ रहा है कि कुत्तो मे जाति-द्वेप वहुत मात्रा मे उपलव्ध होता है। एक कुत्ता किसी भी अन्य अनजाने कुत्ते को विल्कुल वर्दाश्त नही करता। उसी के लिए सस्कृत मे कहा गया है—

"श्वन् ! त्वं तथैव सर्वत्र, जातिद्वेषात् प्रभत्स्यंसे"

अर्थात—अरे श्वान ? जाति द्वेपरूपी विप के कारण ही तेरी भर्त्स्ना होती है।

इसी प्रकार आज का मानव जातिवाद के कारण ऊँचा नही उठ पा रहा है। उसे सोचना चाहिए कि जव सम्पूर्ण मानव-जाति एक है तव जाति-वाद को प्रश्रय देना कहाँ तक उचित है ? स्वय के द्वारा स्वय की जाति से घृणा रखना क्या न्यायोचित हो सकता है ?

समता

"अध्यात्म कल्पद्रुम" मे लिखा है—

अवेहि विद्वन् ! ममतैव मूलं।
शुचां सुखानां समतैव चेति॥

अर्थात्—शोक का मूल ममता है और सुखो का मूल समता है। इस तत्त्व को समझो।

लेकिन इस तत्त्व को समझना टेढी खीर है। सबसे मनोरजक स्थिति तो यह है कि इन्सान समता-समता रटकर भी ममता के रज्जु-पाश मे आवद्ध होता जाता है। सारा घर सीमेंट का वना हो, उसकी दीवाले वड़ी मजवूत हो, किन्तु उस पर यदि छत न हो तो गृहस्थ धूप और वर्षा से अपनी रक्षा

नही कर सकता । वैसे ही मनुष्य कितना भी वलशाली क्यो न हो, यदि उसमें समता की दृढ भावनाये नही है तो वह दुविधा और क्लेश से वच नही सकता । अत. मनुष्य को राग-द्वेष से प्रेरित ममता के सकीर्ण पथ से हटकर समता के राजमार्ग पर सचरण करना आवश्यक है ।

चलनी

लोग कहते हैं कि 'चलनी मे दूध दुहना और भाग्य को कोसना मूर्खता है ।' वस्तुत: चलनी मे इतने छिद्र होते है कि उसमे दूध ठहर ही नही सकता फिर किस्मत को बुरा कैसे कहा जाये ? मूर्खता तो चलनी मे दूध दुहने वाले की है । यदि वर्तन मे एक भी छिद्र रहा तो दूध का टिकना कठिन है, उसी प्रकार दुर्गुणी मनुष्य के मन में भी सद्विचार रूपी दूध का टिकना असभव है ।

दुर्गुणो की शुरुआत भी राग और द्वेष से ही होती है । किसी के प्रति अनावश्यक ममत्व और किसी के प्रति अनावश्यक कटुता—ये राग-द्वेष के दो छोर हैं । ज्ञानी व्यक्ति इन दोनो ही किनारो से बचकर चलता है । यदि मन मे ये विकार आ गये तो मन शाति का वहाँ निवास कैसे हो सकता है ?

ईर्ष्या

दक्षिण भारत के महान-सत श्री तिरुवल्लुवर ने कहा है कि 'ईर्ष्यालु को दुश्मन चाहे छोड दे, ईर्ष्या ही उसका सर्वनाश कर देती है ।' इसका सवसे सटीक उदाहरण माचिस मे देखा जा सकता है । माचिस को दूसरो को जलाने के पूर्व स्वय को जलना पडता है । ईर्ष्या की बुराई भी दूसरो का अहित करने के पूर्व स्वय उसी का अहित कर देती है । सबसे पहले वह अपनी ज्वाला मे उस व्यक्ति को ही राख कर देगी जिसने अपने मन मे उसे धारण किया है । इसीलिए तो कहा जाता है—'ईर्ष्या हि विवेक परि-पन्थिनी' अर्थात् ईर्ष्या विवेक की शत्रु है ।

ईर्ष्या का वरदान

एक वडा रोचक प्रसग स्मरण आ रहा है कि एक बार भगवान ने भक्त की सेवा-परायणता से संतुष्ट होकर उससे वरदान माँगने को कहा । भक्त के मन मे सेवा के वीज तो अकुरित थे किन्तु मन मे ईर्ष्या का विप

वैभव की रक्षा करते है, किन्तु जो आन्तरिक विभूतियाँ अर्थात् सद्गुण है उनको तो किसी प्रकार का भय है ही नही। अत· वाह्य विभूतियो (धन-दौलत) के मायावी कुचक्र से वचकर यदि मनुष्य स्वय को आन्तरिक विभूतियो से सम्पन्न करे तो उसको भय की चिन्ता क्यो होगी ? साधु-सत तो इसीलिये निर्भय होकर निर्जन वनो तथा पहाडो पर भ्रमण किया करते हैं क्योकि उनकी झोली मे वाह्य विभूति तो होती नही और जो आतरिक विभूति है उसे चोरो की क्या परवाह ?

भूल

विश्व-प्रसिद्ध योद्धा नेपोलियन ने एक स्थान पर कहा है कि "वहुत सी घटनायें देखने मे तो वहुत छोटी ज्ञात होती हैं किन्तु उनका परिणाम बडा भयकर होता है।" छोटी-छोटी भूले सम्पूर्ण जीवन की गतिविधियो को प्रभावित कर डालती है। साधारण खाँसी पर यदि ध्यान न दिया जाये तो वह क्षय की जननी वन सकती है। मामूली हँसी झगड़े की जड़ वन जाती है। एक छोटे से फोड़े मे वेदना का अपार सागर लहराता है। पैर मे चुभे हुए छोटे से काँटे से सम्पूर्ण शरीर व्यथा का अनुभव करने लगता है।

इसीलिये कोई भी भूल छोटी या बडी नही होती। वह तो समय आने पर अपना प्रभाव अवश्य दिखाती है। साधक के जीवन मे थोडी-सी लापरवाही उसे पथ-भ्रष्ट करने के लिए पर्याप्त है। हम समझते हैं कि हमारे मन के राग और द्वेष अथवा ईर्ष्या से कुछ अतर नही पडने वाला है किन्तु होता इसके विपरीत है। मन की दुर्वलताएँ सामाजिक जीवन को हानिप्रद वना देती हैं और सामाजिक जीवन का कलुष ही राष्ट्रीय जीवन पर अमरवेल की तरह छा जाता है।

शिकायत है

आजकल शिकायतो की वाढ आई हुई है। पिता को अपने पुत्र से, भाई को अपनी वहन से, मालिक को अपने मजदूर से, सेठ को अपने मुनीम से, गुरु को अपने शिष्य से और जनता को सरकार से शिकायत ही शिकायत है। सरकारी कार्यालयो मे सूचना लगी हुई है कि यदि आपको शिकायत है तो अमुक अफसर के पास शिकायत-पुस्तिका रखी हुई है, आप उसमें अपनी शिकायत लिख सकते है। मुझे यह सव देखकर भागवतकार का

यह कथन स्मरण आ रहा है—"जिह्वा क्वचित् सदशति स्वदद्भिस्तद्-वेदनायाः कतमाय कुप्येत" अर्थात् दाँतो से ही कभी अपनी जिह्वा के कट जाने पर जो पीडा होती है, उसके लिए मनुष्य किस पर क्रोध करे ?

हम दूसरो के वारे तो अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ पालते हैं, मोहवश अथवा द्वेषवश निरर्थक झगड़े मोल लेते हैं और समझते हैं कि जैसे हमारा हृदय विल्कुल पवित्र है। लेकिन यही सारी मुसीवत की जड है। अगर हम दूसरो के प्रति शिकायतो का प्रयोग रोककर अपने हृदय मे झाँककर देखे तो शायद स्थिति सुधर सकती है।

ईर्ष्या की आग

कटु-वचन वोलने के पीछे भी ईर्ष्या और द्वेष अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि मनुष्य ईर्ष्यावश दूसरे को कटु-वचनो से घायल करना चाहता है तो सबसे पहले वह अपना ही अहित करता है। इस प्रसग मे एक जन-श्रुति हमारा मार्ग-दर्शन कर सकती है।

एक वार किसी वडे सेठ ने अपने घर पर दो पडितो को भोजनार्थ आमत्रित किया। दोनो पडित ईर्ष्यावश एक-दूसरे से जलते रहते थे। सेठ ने पहले एक पडित को हाथ धुलाने के लिए अलग ले जाकर पूछा—"पडित जी! मुझे तो आपके साथ वाले पडित भी वड़े भले और विद्वान लगते है।" यह कथन उस पडित को अच्छा न लगा। उसने उत्तर दिया-"अरे सेठ! वह पडित तो निरा वेवकूफ है! उसमे और वैल मे कोई फर्क नही है।"

सेठ ने इसी प्रकार दूसरे पण्डित से पूछा तो उस पण्डित ने भी ईर्ष्या वश कहा—"सेठजी! वह तो सरासर गधा है।"

सेठ ने दोनो की दुर्वलता समझ ली। अत. भोजन परोसते समय दोनो के आगे खाने के लिए घास और भूसा रख दिया। यह देखकर दोनो पडित आग-वबूला हो गये। दोनो एक स्वर से बोले—"सेठ! यह क्या ?" सेठ ने कहा—"आप लोगो ने ही एक-दूसरे को गधा और बैल कहा है। अत. आप लोगो के उपयुक्त यही भोजन है।" अव दोनो लज्जित थे।

स्वच्छता किसकी ?

शरीर को सुन्दर और स्वस्थ रखने के लिये मनुष्य कई प्रकार के

भी किसी कोने मे आसन जमाये था। भगवान ने यह वात जान ली, अतः वरदान देने के पूर्व ही उन्होने भक्त से कहा कि तुम्हारी सेवा-भावना तो अति दिव्य है किन्तु वरदान माँगने के पूर्व इस वात का ध्यान रखना कि तुम्हे जो भी वरदान प्राप्त होगा तुम्हारे पडोसी को उससे दूना मिलेगा।

भक्त के मन मे ईर्ष्या का सर्प जागृत हो उठा। उसने सोचा कि यह क्या न्याय है कि विना सेवा किये ही मेरा पडोसी मुझसे दूना सौभाग्य प्राप्त कर लेगा? अतः ईर्ष्यावश उसने भगवान से यह वरदान माँग लिया कि मेरी एक आँख फोड दीजिये।

मुझे इस प्रसग पर वडी हँसी आती है। पडोसी को सुख न मिले अत· दु ख का वरदान माँग लेना कहाँ तक उचित है? आज यही स्थिति अनेक भक्तो की है। वे ईर्ष्या की लपट मे इस तरह जल रहे है कि किसी भी कीमत पर दूसरो का सुख नही देख सकते भले ही वे अपनी आँख से विहीन हो जाये।

दुर्गुण का छिद्र

छोटा-सा अकुश मतवाले हाथी को वश मे कर लेता है, छोटा-सा दीपक अमावस्या की कालिमा को चुनौती देता है, छोटा-सा वज्र पर्वत मालाओ को खंडित करने की क्षमता से सम्पन्न होता है और छोटा-सा हीरा लाखो की कीमत मे विकता है। यद्यपि इन वस्तुओ का आकार-प्रकार वहुत छोटा है, किन्तु अपने गुणो के कारण ये महत्त्वपूर्ण हैं। उसी प्रकार मनुष्य अपने गुणो से ही पूजनीय और दुर्गुणो से निंदनीय होता है चाहे वे कितने ही सूक्ष्म क्यो न हो? किसी मे कोई एक विशेपता होती है तो उसी से वह जग-प्रिय हो जाता है। लेकिन दुर्गुणो मे अधिक विनाशकारी शक्ति होती है। यदि मनुष्य के शरीर मे एक भी दुर्गुण है तो वह उस नाव की भाँति है जिसकी पेंदी मे एक ही छिद्र है। ऐसी नाव कितनी ही वडी और मजवूत क्यो न हो किन्तु उसका डूवना कालान्तर मे निश्चित है। उसी प्रकार दुर्गुण का एक ही छिद्र मनुष्य को विनाश-पथ पर ले जाने मे सर्वथा समर्थ है।

असद्विचारों का प्रवेश

असद्विचारो का प्रवेश-द्वार मन है। यदि विवेक-रूपी द्वारपाल सतर्क है तो वह मन के भीतर असद्विचारो का प्रवेश वर्जित कर देगा। जैसे राजा-महाराजाओ के वँगले मे हर एक का प्रवेश नही हो सकता क्योकि

वाहर पहरेदार वरावर पहरा देता रहता है और अधिकारी व्यक्ति को ही भीतर जाने की अनुमति देता है। वैसे ही मनरूपी बगले के द्वार को भी सर्वथा उन्मुक्त न छोडो अन्यथा राग-द्वेष, ईर्ष्या-अहकार के अवगुण प्रवेश कर जायेगे।

बुरे विचारों से कैसे बचें ?

एक प्याला है जो दूघ से पूर्ण भरा हुआ है। उसमे अधिक कुछ समाने की गु जाइश नही होती। इसी प्रकार मनुष्य को यदि बुरे विचारो से बचना है तो अपने मस्तिष्क को अच्छे (पावन) विचारो से भरकर रखना चाहिए, ताकि उसमे बुरे विचारो को प्रवेश-प्राप्ति का अवसर ही न मिले।

दुश्मन कहाँ है ?

मन के शीतल जल-कुण्ड मे यदि आप क्रोध का पत्थर फेकेंगे तो निश्चय ही भीतर से गन्दगी ऊपर आ जायेगी। इस गन्दगी को राग-द्वेष और अहकार से वडा सहारा मिलता है। क्रोध की स्थिति मे मन का विवेक भी असहाय हो जाता है। एक वार एक मनुष्य ने अपने दुश्मन को मारने के लिये उसके घर मे प्रवेश किया। तभी उसने देखा कि उसके सामने वैसा ही एक व्यक्ति हाथ मे पिस्तौल लिये खडा है। क्रोध मे आकर उसने गोली चला दी। अचानक काँच के टूटने की आवाज से वह हतप्रभ हो गया। उसने देखा कि दीवाल पद टँगा हुआ विशाल दर्पण चूर-चूर हो गया है। घर के मालिक ने चोर समझकर उसे पकड लिया। भय और क्रोध के कारण वह अपने स्वय के प्रतिविम्व को दुश्मन समझ बैठा और उसी पर गोली चला दी।

अत राग-द्वेष से उद्दीप्त क्रोध की अवस्था मे कुछ भी निर्णय लेने या काम करने के पूर्व शान्तचित्त से भली-भाँति विचार करना आवश्यक है।

भय किसको ?

सस्कृत मे एक सूक्ति है—'पर्वताना भय वज्रात्, पादपाना भय वातात्'—अर्थात् पर्वतो को वज्र का भय है और वृक्षो को वायु का भय है। लेकिन ससार मे कुछ ऐसे भी लोग हैं जो अभय हैं। क्यो ? कारण यही है कि उनके पास सारी आन्तरिक विभूतियाँ हैं जो न कोई चुरा सकता है और न जिनको कोई नष्ट कर सकता है। राग-द्वेषजनित भय से हम वाह्य

सौन्दर्य प्रसाधनो का प्रयोग करते है लेकिन आत्मा की स्वच्छता के लिए कोई प्रयत्नशील नही है। उसके लिए तो कोई साबुन या तेल का आविष्कार अब तक हुआ नही। आखिर ऐसा क्यो ? क्या शारीरिक स्वच्छता ही सब कुछ है ? अस्वच्छ शरीर जितना हानिप्रद नही है, उससे अधिक तो अस्वच्छ मन हानिप्रद और कष्टदायक है।

मन की स्वच्छता का आशय उस पर पडने वाली ईर्ष्या, द्वेष, कलह की धूल को साफ रखने से है। जैसे दर्पण को यदि बहुत दिनो तक साफ न किया जाये तो वह धुँधला हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा अथवा मन को यदि वैराग्य और विवेक से न साफ किया गया तो उसकी आकृति भी धुँधली और अस्पष्ट हो जाती है। इसीलिए स्व० राष्ट्रकवि दिनकर ने कहा है—

झर गई पूँछ रोमात झरे, पशुता का झरना बाकी है।
बाहर-बाहर तुम संवर चुके, मन अभी संवरना बाकी है॥

चरित्र का इत्र

राग-द्वेष से मुक्त आत्मा का चरित्र एवं शील शुद्ध गुलाब के इत्र के समान होता है। जैसे गुलाब स्वय तो सुगधित होता ही है, साथ ही उसके निकट जाने वाले व्यक्ति को भी वह सुवासित कर देता है उसी प्रकार सच्चरित्र मानव राष्ट्र के जीवन मे भी अभ्युत्थान लाने में सहायक होता है। कहा भी गया है—

सीलगन्ध समो गंधो, कुतो नाम भविस्सति।
यो समं अनुवाते च, परिपाते च वायति॥

अर्थात्—शील की गध के समान दूसरी गध कहाँ ? जो पवन की अनुकूल और प्रतिकूल दिशाओं मे एक समान बहती है।

विराग में ही परमात्मा

यदि हमारा मन रागादि दोषो से कलुषित है तो जिनेन्द्र भगवान भी क्या कर सकते हैं—'किं जिनेन्द्रेण रागाद्यैर्यदि स्व कलुष मन ?' अत: मन मे राग जैसी अपवित्र वस्तु के लिये बिछौना न बिछाये। मन मे एक बार यदि इस दुष्प्रवृत्ति ने प्रवेश पा लिया तो अनेक कष्टो का कारण स्वत· उत्पन्न हो जायेगा। जब तक शरीर मे राग है तब तक वैराग्य की

कलिका प्रस्फुटित नही होती। विराग मे ही परमात्मा का निवास है। गन्दे और कलुपित मन मे परमात्मा के रहने की सभावना नही है। इसीलिये यह कहा जाता है कि राग-द्वेष के छल-छंद से वचना अनिवार्य है। यदि मन मे ही गदगी है तो शारीरिक शृंगार निरर्थक होता है। जैसे—

अगर मन है मैला, न तन को सवार।
पिय है जो अधा, तो कैसा शृगार?

गणपति बनो

भारतीय देवताओ की शारीरिक आकृति मे भी वडी व्यजना छिपी हुई है। गणपति को देखिये तो मन मे कितने विचार आदोलित होते है। गणपति का विशाल पेट इस वात की प्रेरणा देता है कि मनुष्य जो भी सुने उसे पचाने का प्रयत्न करे। आहार कितना भी पौष्टिक क्यो न हो, यदि उसे पचा नही सकते तो व्यर्थ है। वैसे ही सदुपदेश का श्रवण ही पर्याप्त नही है बल्कि उसको मन मे पचाने की जरूरत है।

गणपति की सूँड इस बात का प्रतीक है कि वात जो भी सुनी जाये उसे मुँह से वाहर न निकाला जाये अन्यथा वह अपना महत्त्व खो देती है। जैसे इत्र की शीशी को वार-वार खोलने से उसकी सुगध उडने का खतरा रहता है।

कुलपति, धनपति, राष्ट्रपति, गृहपति, सभापति आदि वनने की तो सर्वत्र प्रतिस्पर्द्धा चल रही है लेकिन गणपति वनने की इच्छा किसी के मन मे नही है। यदि मनुष्य गणपति बनना चाहे तो वह अपना और राष्ट्र का ज्यादा भला कर सकता है।

कारण को समझिये

हम वगैर कारण को समझे शत्रुता मोल ले लेते हैं। यह हमारी दुर्वलता है। पहले किसी भी कार्य के पीछे निहित मूल कारण को समझने की आवश्यकता होती है। यदि किसी ने कह दिया कौवा तुम्हारी नाक ले गया तो कौवे के पीछे लाठी लेकर दौडने की अपेक्षा पहले यह देखना चाहिये कि नाक अपनी जगह पर है या नही? इसी प्रकार का एक दूसरा प्रसग मुझे स्मरण आ रहा है कि एक व्यक्ति ने किसी से चन्दन माँगा। उसने वबूल दे दिया। इस पर माँगने वाला व्यक्ति क्रोधित हो गया और

उसे उल्टी-सीधी सुनाने लगा। रास्ते से जाते हुए एक समझदार व्यक्ति ने उसे समझाया कि भाई तुम इस पर अकारण क्रोध न करो क्योंकि इसके पास यदि ववूल है तो चदन कहाँ से देगा ? इसलिये यह माँगने वाले की बुद्धिमानी है कि किसी चीज को सोच-समझकर माँगे। लुहार से यदि सोना माँगा जाये तो वह सोने के वजाय लोहा ही देगा। यह वात उस व्यक्ति को समझ मे आ गई और उसने शात मन से घर की राह पकडी।

अपने को बड़ा मानना

कुछ लोग ईर्ष्या अथवा अहंकारवश अपने को सवसे वड़ा मानते हैं। यह उनकी सरासर भूल है, फिर भी इन भावनाओ से वे अपने को वचा नही पाते। इस सबध मे एक सुन्दर रूपक है—

एक मिट्टी के गमले मे पूर्ण यौवन से प्रस्फुटित गुलाव अपनी मस्ती मे हवा की तरगो के साथ झूम रहा था। इतने में उधर से एक पशु निकला और उसने ईर्ष्यावश गुलाव से कहा—"अरे गुलाव ! तू व्यर्थ ही इतना इतरा रहा है, सच पूछ तो तू कितना दु खी व परतंत्र है कि तू इस गमले की सीमा से हटकर कही वाहर नही जा सकता और न अपनी इच्छानुसार तू घूम-फिर ही सकता है। तुझसे तो मैं लाख-गुना अच्छा हूँ जो जव चाहे तव कही जा सकता हूँ, सुन्दर-सुन्दर वनो और रमणीय उद्यानो मे भ्रमण कर सकता हूँ।" गुलाव को पशु की आन्तरिक भावना समझने मे देर न लगी। उसने वडी मस्ती से मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"मेरे भाई ! तुम जिसे स्वतत्रता मान वैठे हो, मेरी दृष्टि मे तो वह सवसे वडी परतंत्रता है। जिस तरह से तुम अपने स्वामी के इशारे पर नाचते हो, उसे देखकर तुम्हें भला कौन स्वतत्र कहेगा ? रह गई वात अपने पैरो पर चलने की, तो वन्धु ! मुझे तो अपने पैरो से चलने की कोई आवश्यकता ही नही प्रतीत होती। मेरा वाहन तो मदमाती हवा है जो अपने साथ मेरी सुगध को चतुर्दिक् प्रसरित कर देती है। मुझे कही आने-जाने की आवश्यकता ही क्या है ?"

इस कथन की गरिमा को समझकर वेचारा पशु वहुत लज्जित हो गया। उसने अपनी आँखे चुराते हुए धीरे से राह पकड ली। दूसरो से स्वय को वडा सिद्ध करने का प्रयास अन्तत पश्चात्ताप ही दे सकता है। अत· इस दुर्गुण से अपनी रक्षा जरूरी है।

पाप के भ्रमर

यदि पाप को किसी से भय है तो पुण्य से। पुण्यात्मा के निकट पाप कभी नही फटकते। भ्रमर तो बडा रस-लोलुप होता है, वह पराग से परिपूर्ण विकसित सुमनो पर बैठकर मकरंद का पान करता है। लेकिन चम्पा के फूल पर वह भूल कर भी नही बैठता। कारण यह है कि चम्पा की गध इतनी तीव्र, सुन्दरता इतनी मादक और तेज इतना गम्भीर होता है कि भ्रमर उसके निकट जाने मे अपनी असमर्थता का अनुभव करता है। इतनी सुगन्ध उसे असह्य हो जाती है। उसकी श्वेत-शुभ्र पखुडियो पर अपना श्याम-शरीर उतारने का साहस ही वह नही कर पाता।

इसी प्रकार, इस जीवन-उद्यान मे पापो के अनेक भ्रमर उड रहे हैं, लेकिन जिसका चरित्र चम्पा की तरह शुभ्र और उज्ज्वल है, जिसके विचारो मे गम्भीरता एव उच्चता है, जीवन-चरित्र निष्कलक है और जिसके दामन मे कालिमा का दाग नही लगा है, उसके पास किसी भी स्थिति मे पाप के भ्रमर नही फटक सकते।

जीवन की उपयोगिता

'स्थानागसूत्र' मे लिखा है कि स्वर्ग के देवता भी इच्छा करते हैं कि "हमे मनुष्य जीवन मिले, आर्य देश मिले एव उत्तम कुल मिले।" इतना महत्त्वपूर्ण जीवन पाकर हम उसका दुरुपयोग करे तो यह हमारी महान भूल है। जीवन तो शान्ति का अक्षय भण्डार है, ज्ञान का जलता हुआ दीपक है, समर्पण की वहती हुई सरिता है, त्याग एव सयम का अद्भुत सगम है। इसके अतिरिक्त जीवन का कोई उपयोग नही है। मानव-जीवन के लिए ही ससार वना है न कि ससार के लिए मनुष्य वना है। आज मनुष्य ससार के पीछे पागल है और ससार उसकी उपेक्षा कर रहा है, फिर भी राग-द्वेष से आवद्ध मनुष्य अपने सासारिक सम्वन्धो के पीछे मतवाला वना है।

कहते हैं कि एक श्वेत कागज पर एक तरफ ससार का चित्र वना हुआ था और दूसरी ओर एक मानव-आकृति वनी हुई थी। एक होनहार पुत्र ने पिता से पूछा कि मनुष्य के पीछे ससार है या ससार के पीछे मनुष्य है। पिता ने उस कागज को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डाले और फिर अपने पुत्र से उसे जोड़ने के लिए कहा। पुत्र ने पहले ससार का चित्र जोडने का

भरसक प्रयास किया किन्तु वह असफल रहा। इस पर पिता ने उससे मनुष्य के चित्र को जोडने के लिए कहा। इस बार लडके ने ससार के चित्र की परवाह न करके मनुष्य के चित्र को जोडने का प्रयास किया। ज्योही उसने मनुष्य का चित्र जोडा, ससार का चित्र स्वत· जुड गया। इससे पता चलता है कि ससार मनुष्य के पीछे है।

जव ससार से ज्यादा मानव-जीवन की महत्ता है तो उसके सदुपयोग का उत्तरदायित्व भी हमारे कन्धों पर है। अतः छोटे-छोटे स्वार्थों को भूलकर हमे महान् उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए जीवन की साधना करनी चाहिये।

अमर क्या है ?

'पंचतन्त्र' मे जीवन की अस्थिरता एव क्षणभगुरता पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि वादलो की छाया, दुष्टो की प्रीति, पका हुआ अन्न, रूप, यौवन और धन ये छ· चीजे किंचित्काल के लिए ही उपयोग मे आने योग्य है—अस्थिर हैं। ससार मे रूप, कला, सौन्दर्य, कीर्ति, सम्पत्ति—सभी क्षणजीवी है। अत उनके प्रति राग अथवा आसक्ति निरर्थक है। चिरस्थायी तो सिर्फ एक ही वस्तु है—और वह है चित्त-निरोध का महत्त्वपूर्ण क्षण ! जिसने चित्त-निरोध कर मन को दृढ एव शक्तिशाली बना लिया है उसको मृत्यु के दण्ड से क्या भय ? इन्द्रियो को दमन करने वाला तेजस्वी प्राणी समय की सीमाओ को चुनौती देकर अमर बन जाता है। अत· चित्त-निरोध की रसायन का पान कर मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा को दीर्घ वना सकता है।

पहले और वाद में

पहले मन के किसी कौने मे पाप का वीज अकुरित होता है और क्रमशः वढते-वढते विष-वृक्ष का आकार धारण कर लेता है। शरीर के प्रति थोड़ी लापरवाही वडी वीमारी की भूमिका निर्मित कर देती है। सर्दी और खाँसी जैसी छोटी वीमारियाँ दमा और राज-यक्ष्मा जैसी भयकर वीमारी का स्रोत वन जाती है।

अत· मन मे किसी भी क्षण जव पाप की भावनाये अकुरित होने लगे तो तत्काल उनका समाधान खोजें, अन्यथा जव उसका विकास आपके सामर्थ्य से अधिक हो जायेगा तो सिवाय पश्चाताप के और क्या वचेगा ?

अहंता का त्याग

तुलसीदास जी ने लिखा है कि जब वृक्षो की शाखाये फल-फूलो से भर जाती हैं तब वे अपने बोझ से स्वय विनम्र होकर झुक जाती है। इसी प्रकार जब साधु-प्रकृति के सत्पुरुषो के पास गुणो की उपलब्धि अथवा सिद्धि हो जाती है तो वे अहकार, राग-द्वेष और ईर्ष्या से सर्वथा निर्लिप्त हो जाते है।

लेकिन प्रकृति मे भी कम विचित्रता नही है। ऊपर वाली बात आम्र के वृक्षो के लिए जितनी सही है, उतनी ही खजूर के वृक्ष के लिए अव्यावहारिक प्रतीत होती है। कबीरदास ने इसीलिए अहंकार-ग्रस्त प्राणी की तुलना खजूर के पेड से की है। वे कहते हैं—

वडा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड खजूर।
पथी को छाया नही, फल लागे अति दूर॥

खजूर के पेड की लम्बाई किस काम की ? न तो उसमे इतनी शाखाये तथा पत्ते होते है कि पथिक को दो घडी की छाया मिले और न उसमे फल ही इतने निकट लगते हैं कि कोई भूखा व्यक्ति उन्हे खा सके। यही हालत अहता से पीडित प्राणी की होती है। उसका वडप्पन सामाजिक जीवन के लिए वरदान-स्वरूप न होकर शाप स्वरूप बन जाता है। खेत मे जब किसान वीज-वपन का कार्य करता है तब बीज अपने अहकार को त्याग करके ही अकुरित होता है। यदि वह अपनी अहता न छोडे तो वह जमीन मे पडा-पडा सड जायेगा और उसका जीवन ही समाप्त हो जायेगा।

उल्लुओं का चिन्तन

उल्लू को वडा अशुभ एव मूर्ख पक्षी माना जाता है। वह रात्रि के अन्धकार मे किसी निर्जन खण्डहर के भयानक वातावरण मे बैठकर अपने साथियो के साथ यही चिंतन करता रहता है कि ससार मे प्रकाश का अस्तित्व ही कहाँ है ? वह तो मूर्खो की कल्पना-मात्र है। यदि प्रकाश होता तो हमे दिखाई न पडता ?

आज यही स्थिति उन लोगो की है जो विवेक-बुद्धि का तिरस्कार कर मूर्खतापूर्ण चिन्तन की धुरी पर बैठकर सद्प्रवृत्ति रूपी प्रकाश के अस्तित्व पर ही शका प्रकट करते हैं। उन्हे चतुर्दिक असद्प्रवृत्तियो के

अन्धकार का वृत्त हमेशा घेरे रहता है, अतः वहाँ प्रकाश की रश्मियाँ नही पहुँच पाती। इसमे गलती तो उन मनुष्यो की है जो अन्धकार का अभ्यास कर रहे हैं। वस्तुतः प्रकाश का अस्तित्व तो सदैव रहा है और आगे भी रहेगा। लेकिन माया, मोह, वासना तथा राग से विजड़ित आत्माये इस प्रकाश का अनुभव नही कर पाती। वे तो कालिमा और कलुष की पुजारी हैं, प्रकाश और महानता की नही।

अहंकार का विष

'विणओ जिणसासणे मूल'—अर्थात् विनय जिनशासन का मूल है। विनय और अभिमान का साथ नही निभता। जो विनयी है, उसी मे धर्म-आचरण की पात्रता होती है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है—"अगर तुम्हारा अहकार चला गया है तो किसी भी धर्म-पुस्तक की एक भी पक्ति पढे बिना और किसी मन्दिर मे पैर रखे बिना, जहाँ बैठे हो, मोक्ष प्राप्त हो जायेगा।"

लेकिन आज-कल की दुनिया बिल्कुल प्रतिकूल आचरण कर रही है। किसी को अपने धन का अभिमान है तो किसी को अपनी विद्या, जवानी या रूप का। यही अभिमान का विष है, जिसे पीने के लिए दुनिया दीवानी है। मनुष्य ईर्ष्या, द्वेष तथा अहकार के जहरीले वातावरण मे साँस लेने को विवश हो गया है।

सागर की विराटता

एक बडी पुरानी कहावत है कि 'मियाँ मुट्ठी भर, दाढी हाथ भर।' अर्थात् अपने शरीर से कई गुणा अधिक अहकार मनुष्य के मन मे रहता है। अहकारी व्यक्ति का स्वभाव बडा क्षुद्र होता है। वह अपने आगे किसी की ख्याति, प्रशसा या महानता नही सुनना चाहता। जैसे झरने के आगे कोई सागर की विराटता की चर्चा करे तो बेचारा झरना यही समझेगा कि मेरी क्षुद्रता पर व्यंग्य कसा जा रहा है और मुझे नीचा दिखाया जा रहा है। भला झरने को सागर की विराटता का अनुमान कैसे हो सकता है? वह तो यही समझता है कि ससार मे उससे बडा कोई स्रोत ही नही है।

इसी प्रकार किसी महापुरुष के गुणगान से किसी क्षुद्र आत्मा को हर्ष का अनुभव नही होगा। वह या तो उसे हँसी मे उडा देगा अथवा जल-भुनकर राख हो जायेगा। इसीलिए सस्कृत मे एक सूक्ति है "महान विप

होने पर भी सर्पराज वासुकि गर्व नही करता, किन्तु विन्दुमात्र विष वाला बिच्छू अपना डक ऊपर की तरफ रखता है।"

अहं की ज्वाला

स्वामी रामतीर्थ ने लिखा है कि "अह कच्चाई है, इसीलिए उसमे कच्चे आलू की तरह कडापन है।" लेकिन इस कच्चेपन से बडे-बड़े साधु-पुरुषो को मुक्ति नही मिल पाती। चन्दन का स्वभाव तो अत्यन्त शीतल होता है लेकिन उसे भी यदि जलाया जाये तो उसकी ज्वाला भी ज्वलन-शील ही होगी।

इसी प्रकार सम्पत्ति, शक्ति, रूप, यौवन, विद्वत्ता तथा चारित्र स्वय मे बडी सिद्धियाँ हैं लेकिन इन सिद्धियो का भी अहकार तो अशुभ ही होता है। इन शक्तियो से यदि विनम्र होकर हम समाज-सेवा की ओर प्रवृत्त हो तो अत्यन्त सतोप मिलेगा। लेकिन इनका अभिमान तो पतन की दिशा की ओर अभिमुख कर देता है। अत महान पुरुष इन उपलब्धियो को पाकर भी अह की ज्वाला से प्रज्वलित नही होते। अधूरे और अपूर्ण व्यक्ति के लिए ही शायद यह कहावत बनी हो कि—'अध जल गगरी छलकत जाय।'

अहंकार की चट्टान

जो ज्ञान के प्रशस्त राज-मार्ग का धीर पथिक है उसे अहंकार की चट्टानो का क्या भय ? वह तो कालान्तर मे उन चट्टानो तथा रोडो को पीस ही डालेगा लेकिन जो अज्ञान के वशीभूत हैं, उन्हे तो निरन्तर अहकार के पत्थरो से सिर टकराना पड़ेगा। इसीलिए जो ज्ञानी व्यक्ति है, अथवा जिनके पास ज्ञान की दिव्य-दृष्टि है, उन्हे अहकार की पशुता से अपने को मुक्त रखने की परम आवश्यकता होती है। आज सारे वैमनस्य एव कटुता के दुर्मद वातावरण का रहस्य इसी ईर्ष्या एव अहकार के विष मे छिपा हुआ है। विनम्रता को तिलाजलि देकर मनुष्य शव के समान अकड गया है। उर्दू के एक शेर मे कहा गया है—

झुकता वही है जिसमे कुछ जान है।
अकडपन तो खास मुर्दे की पहचान है॥

सच्चा जानकार कौन ?

कभी-कभी सोचता हूँ कि अहंकार के जहर ने मानव-जाति का

कितना वडा अहित किया है। यदि मनुष्य इस बुराई से अपने को बचा पाता तो सभव था कि वह आज की दुनिया मे सुख और शान्ति की अगली मंजिल पर होता। 'मै कुछ भी नही जानता' ऐसा अनुभव करने वाला व्यक्ति ही ज्ञान की गरिमा का स्पर्श कर सकता है। लेकिन जो यह सोचता है कि 'मैं सव कुछ जानता हूँ', वह शायद अन्धकार के भयकर गर्त मे पतित हो चुका है। अगर ज्ञान की साधना मे प्रवृत्त होना है तो सवसे पहले अहंकार के मैल को हृदय की भीतरी तहो से निकाल कर वाहर करना चाहिए, अन्यथा ज्ञान की अमृत-बूंद से सदा वचित रहना होगा। इस सन्दर्भ मे एक वडा प्रभावशाली दोहा याद आ रहा है—

अभिमानी के हृदय मे, ज्ञान न करता धाम।
फटी जेव मे क्या कभी, रह सकते हैं दाम ?

अहंकार की भाषा

गाडी के नीचे चलने वाला श्वान वरावर यही सोचता है कि मैं ही इस गाडी का वोझ सिर पर उठाये चल रहा हूँ, अन्यथा यह गाडी अपनी जगह पर स्थिर हो जाती। लेकिन यह उसकी कितनी वडी भूल है। वैसे ही अहकारी व्यक्ति यह सोचता है कि उसी के परिश्रम एव कमाई से सारा कुटुम्व जीवन-यापन कर रहा है, अन्यथा सभी लोग महान् कष्ट झेलते।

इस प्रकार के भ्रमो से न केवल साधारण गृहस्थ अपितु वड़े-वड़े ज्ञानी भी भ्रमित हो जाते है। एक वार का प्रसग है कि जगद्गुरु स्वामी शकराचार्य अपने शिष्यो के साथ वाराणसी की एक गली से जा रहे थे। इतने मे उन्हे एक शूद्र अपने तीन-चार कुत्तो के साथ उसी गली से आता दीख पडा। शकराचार्य ने उस शूद्र को चेतावनी देते हुए कहा—"अरे शूद्र! जरा दूर हटकर चल, नही तो अपने स्पर्श से मुझे दूषित एव मलिन वना देगा।" उस शूद्र ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"हे स्वामी! आप तो प्राणिमात्र मे उस परमात्मा की छाया देखते हैं। क्या आपका अद्वैतवाद केवल शव्दो तक ही सीमित है, जो आप मुझसे घृणा कर रहे हैं?"

जगत्गुरु को अपनी भूल मालूम हुई। वे पश्चाताप से खिन्न हो गये और कहने लगे—"आज तूने हमारी आँखे खोल दी। तूने मुझे सच्चे अद्वैत का पाठ पढाया है, अतः तू ही मेरा गुरु है।"

वीतराग की शरण

ग्रीष्म की जलती दुपहरी मे रेगिस्तान की प्रज्वलित वालुका-राशि पर पैर रखता हुआ पथिक यदि वृक्ष की सुखद छाया पा जाये तो उसे असीम आनन्द मिलता है। मध्याह्न की प्रखर रश्मियो से आक्रान्त सूखे कण्ठ को यदि शीतल पेय-जल मिल जाये तो उसकी प्रसन्नता का क्या ठिकाना ? अधिकाधिक परिश्रम से चूर-चूर होकर घर लौटा हुआ कर्मचारी यदि पारिवारिक ममता का आश्रय प्राप्त करले तो उस जैसा सौभाग्यशाली और कौन होगा ?

वैसे ही वीतराग की शरण मे जाने पर आत्मा को जो शाति और प्रमोद मिलता है, वह अतुलनीय है। उससे जन्म-जन्म के कलुषो की ज्वाला शान्त हो जाती है और मानवात्मा को अतिशय सुखद वातावरण की छाया मिलती है। अत· सासारिक राग-द्वेष से मुक्त होकर वीतराग की पावन शरण-स्थली की ओर प्रयाण करे।

भय का भूत

कहा जाता है—'भीतो भूतेहिं घिप्पई'—अर्थात् भयाकुल व्यक्ति ही भूतो का शिकार होता है। भय मानव-जीवन की सर्वाधिक दुर्बलता है। यदि भय की प्रवृत्ति मन मे बैठ गई तो कदम-कदम पर विघ्न-वाधाये रोड़े अटकायेगी। वाहर के भय से अन्दर का भय तो और भी भयानक होता है। अन्दर का भय जव दूर हो जाता है तव वाहर के भय को समाप्त होते देर नही लगती। नागराज को उँगली के इशारे पर नचाने वाला भी अन्दर के भय से आक्रान्त होता है। निर्भय होना आत्मगुणो के उदय होने की पहली शर्त है। अत: निर्भय होना आवश्यक है।

ऐसा सुना गया है कि वगदाद शहर मे एक वार महामारी का प्रकोप फैला। इस महामारी के प्रकोप मे पचास हजार व्यक्तियो का निधन हो गया। वाद मे इस तथ्य का पता चला कि वास्तविक रूप से महामारी से मरने वालो की सख्या मुश्किल से पाँच हजार थी, शेप तो उसके भय से ही मर गये।

यह घटना इस तथ्य की ओर सकेत करती है कि महामारी से भी भयकर वीमारी तो भय की है। अत साधक के मन को तो इस प्रकार के भय से सदैव मुक्त रहना चाहिए अन्यथा वह साधना की कठिन मंजिल को पार नही कर सकता।

अभिमान का दुर्ग

किले के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ व्यक्ति जन-पथ पर चलने वाले लोगो से अपने को महान् मानता है। वह कभी व्यग्यपूर्ण शब्दो से नीचे चलने वाले यात्री को चिढाता है और कभी अभिमानवश उन पर थूक भी देता है। वह समझता है कि इसी मे उसका वडप्पन है।

अभिमानी व्यक्ति की भी हालत इससे वेहतर नही होती। वह भी अपने आस-पास तथा पडोस मे रहने वाले व्यक्तियो को सदैव अपने से हीन समझता है और उन पर व्यग्य-वाण कसता है। इससे उसे एक प्रकार का झूठा सन्तोष मिलता है। लेकिन जैसे किले के शिखर से गिरने वाले अभिमानी की दशा पर किसी को तरस नही आता है, उसी प्रकार ससार में झूठे अभिमानी के पतन पर कोई भी आँसू नही वहाता। वह भी सवकी सहानुभूति खो देता है। इसलिए कवीर ने ऐसे झूठे अभिमानियो को चेतावनी देते हुए कहा है—

कविरा गर्व न कीजिए, नेकु न हँसिये कोय।
अजहूँ नाव समुद्र मे, ना जाने का होय॥

जीवन कैसा हो ?

यदि जल एक स्थान पर केन्द्रित होकर पडा रह जाये तो कुछ ही दिनो मे उसमे दुर्गन्ध पैदा हो जाती है और वह वदवू देने लगता है। लेकिन यदि उसमे धारा के साथ प्रवाहित होने की क्षमता आ जाये तो वह धीरे-धीरे वहता हुआ एक वडी नदी का अग वन जाता है। पहला गतिहीन है और दूसरा गतिशील। बँधा हुआ जल किसी के काम मे नही आता वल्कि उसका पानी सड़कर दुर्गन्ध फैलाता है, किन्तु नदी का जल सभी जीव-जन्तु पीकर अपनी तृपा शान्त करते है।

यही सिद्धान्त मानव-जीवन पर भी लागू होता है। यदि मनुष्य अपने ही घर-परिवार की चारदीवारी मे बँधकर स्वार्थ के पोपण का ही प्रयत्न करता है तो उसका जीवन गढे मे एकत्र जल की तरह है जो कुछ ही दिनो मे दुर्गन्ध देने लगता है। लेकिन जो भव्यात्मा राग-द्वेष से विरक्त होकर, स्वार्थ की सीमाओ का अतिक्रमण कर, परोपकार एव परमार्थ के पाठ को पढ लेता है उसका जीवन धन्य और अनुकरणीय वन जाता है। वह नदी मे

प्रवाहित जल की भाँति दूसरो को सन्तुष्ट करने में ही अपना परम सौभाग्य समझता है, स्वार्थ की कारा से वह मुक्त होता है।

उपदेश कहाँ असर करता ?

कठोर धातु मे जिस प्रकार मोती या माणिक नही लगाया जा सकता, अथवा जैसे कठोर चपडी पर छाप लगाना असम्भव है, उसी प्रकार जिनका हृदय शिलावत् है अर्थात् जिनमे विनम्रता का अश नही है, उन पर उपदेश का प्रभाव नही पडता है। अगर हम किसी स्वीकृत धारणा या विचार से चिपके रहे, उसमे सशोधन करने की ग्राहिका-शक्ति ही हम मे न हो तो हम क्या सीखेगे ? सीखने के पूर्व तो हमे कोमल तथा विनम्र वनना ही पड़ेगा। यदि मनुष्य यह मान बैठे कि अव उसे सीखने की आवश्यकता ही नही है तो उसे तो ब्रह्मा भी नही सिखा सकता है। इसलिए राग-द्वेष से हृदय की कठोरता से मुक्ति पाकर ही हम उपदेश रूपी मणि धारण कर सकते है, अन्यथा सारा परिश्रम व्यर्थ ही सिद्ध होगा।

बन्दर और पक्षी

जव भयकर झझावात उठ रहा हो, पेड़ो के जड से ही उखड जाने का खतरा वना हुआ हो, भयकर वर्षा की बूंदे पृथ्वी को प्रताडना दे रही हों, उस समय वर्षो से वृक्ष की शाखाओ पर नीड वनाकर रहने वाले पक्षी भी सभी आसक्तियो से मुक्त होकर अपनी जीवन-रक्षा के लिए उडकर अन्यत्र चले जाते है। वे अपने दीर्घ श्रम से निर्मित नीड के प्रति मोह-भावना से ग्रस्त नही होते क्योकि वे जानते है कि इस-नीड के प्रति मोह अथवा राग की भावना से उनके अस्तित्व को ही खतरा है। लेकिन थोड़े समय पूर्व ही पेड की शाखाओ पर आकर बैठने वाले बन्दर उस पेड से उतरकर अन्यत्र अपनी जीवन-रक्षा के लिए नही जाते। वे उन्ही शाखाओ पर चिपके रहते है। परिणामस्वरूप वायु के थपेड़ो से जर्जर वृक्ष जव गिर पडता है तो वे उसके नीचे दवकर प्राणो से हाथ धो बैठते हैं।

यह वात हम आज के मोहान्ध ससार मे भी देखते हैं। जो ज्ञानी हैं, अथवा जिन्हे सम्यक्-दृष्टि प्राप्त है वे तो इस ससार की नश्वरता को स्वीकार कर इस विप-वृक्ष को त्याग कर आत्म-कल्याण के हेतु साधना के पथ पर अग्रसर हो जाते हैं। लेकिन जो मिथ्या-दृष्टि रूपी वन्दर की भाँति राग और

माया-मोह से चिपके हुए हैं वे मृत्यु के भयानक क्षणो मे भी इस विप-वृक्ष से सम्वद्ध रहते है और इसी की अनन्त पीडा मे अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते है। ,

कितना अन्याय ?

द्वितीय विश्वयुद्ध का उन्माद जव अपनी चरम-सीमा पर था उसी समय अमेरिका के तत्कालीन प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट ने जापान के अति समृद्ध नगर हिरोशिमा और नागासाकी पर अणुवम का प्रहार करवाकर ससार को उसकी विनाश-लीला से स्तम्भित कर दिया था। मानव-जाति का इतना वडा सहार इसके पूर्व कल्पनातीत था। सम्पूर्ण नगर विनाश के गर्भ मे सो चुका था और सारे नागरिक मृत्यु की चपेट मे आ गये थे। उस भयकर दृश्य अथवा समाचार का स्मरण आज भी मनुष्य के हृदय को थर्रा देता है।

लेकिन मेरे मन मे एक प्रश्न वार-वार अकुरित होता है कि क्या अमेरिका के प्रेसीडेन्ट मे इतनी शक्ति थी कि वे एक मृत मक्खी को जीवन-दान दे सके ? अगर उनमे मृतक को जीवन देने की क्षमता नही थी तो उन्हे क्या अधिकार था कि वे इतनी बडी विनाश-लीला की सृष्टि करते ? यह तो अन्याय की जीती-जागती तस्वीर है। अगर मनुष्य एक छोटे से छोटे मृत-प्राणी को जीवित करने मे असमर्थ है तो उसे क्या अधिकार है कि वह इतने वड़े जन-समाज को मौत के मुँह मे धकेल दे ? यह प्रश्न आज भी ससार के रक्त-पिपासु राजनीतिज्ञो तथा युद्धोन्माद मे डूबे हुए राजनेताओं के समक्ष उपस्थित है।

अभिमान का छिद्र

'विदुर नीति' मे कहा गया है कि "वृद्धावस्था रूप और यौवन को, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणो को, ईर्ष्या धर्मचर्या को, क्रोध लक्ष्मी को, अनार्य-सेवा शील को एव काम लज्जा को नष्ट कर देता है, किन्तु अभिमान तो सर्वगुणो को नष्ट करने वाला है।"

विदुर का यह कथन पर्याप्त विचारणीय है। अभिमान उस छिद्र की भाँति है जो जीवन की टकी मे सचित सारे पुण्य-जल को वहा देता है। यदि अभिमान का छिद्र क्रियाशील रहा तो सत्कर्मो का सचय नही हो सकता। जिस प्रकार वड़े से वड़े घड़े मे छोटा से छोटा छिद्र सारे जल को वहाकर

नष्ट कर देता है उसी प्रकार ऊपर से हम भले ही कितने पुण्यकार्य करें किंतु मन की भीतरी पर्त मे यदि कही अभिमान का छिद्र हो गया तो वह उस सचित धन को नष्ट करके ही छोड़ेगा। कुये से चलनी मे पानी भर कर घर तक ले जाना भले ही सम्भव हो किन्तु अभिमान से भरे हुए हृदय को प्रभु के द्वार तक पहुँचना असम्भव है। यदि हम चाहते हैं कि जीवन के सत्कार्य सुरक्षित रहे और मानव-आत्मा का उत्तरोत्तर सर्वाङ्गीण विकास हो तो अभिमान के छिद्र को पहले वन्द करे और शुभ कार्यो की ओर प्रवृत्त होवे।

नम्रता की जरूरत है

कहा जाता है कि सम्राट् अशोक को जब शस्त्रो से कलिंग पर विजय प्राप्त करने मे असुविधा प्रतीत हुई तो उन्होने क्षमा-दान के द्वारा कलिंग की स्वाभिमानी जनता का हृदय जीत लिया था। तलवार और शस्त्रो के सहारे हृदय जीतने का प्रयास वहुत पुराना है किन्तु इस प्रयास मे अब तक किसी को स्थायी सफलता नही मिल सकी है। वडे-बड़े राजा-महाराजा इस संसार मे अपने शारीरिक पराक्रम का प्रदर्शन कर ससार से विदा हो चुके हैं। लेकिन सम्राट् अशोक, अकबर जैसे आत्मवली अधिपतियो का नाम जनता की जिह्वा पर आज भी दौड़ रहा है।

अत: किसी का हृदय जीतने के लिए शस्त्र की आवश्यकता नही होती, नम्रता की जरूरत होती है। नम्रता और सरलता के समक्ष तो पाषाण-हृदय भी पिघल जाता है। 'धर्मरत्न प्रकरण' मे इसीलिए कहा गया है—

विणएण नरो, गधेण चदण सोमयाइ रयणियरो।
महुररसेण अमयं, जणपियत्तं लहइ भुवणे॥

अर्थात्—जैसे सुगन्ध के कारण चन्दन, सौम्यता के कारण चन्द्रमा, और मधुरता के कारण अमृत जगत्प्रिय है, ऐसे ही विनय के कारण मनुष्य लोगो मे प्रिय वन जाता है।

दोषदर्शी

कुछ लोग दूसरो के गुणो को तो नही देख पाते, किन्तु अवगुणो का अवलोकन वडी सूक्ष्म-दृष्टि से करते हैं। इन दोपदर्शी लोगो की दशा ऊँट जैसी होती है। जैसे ऊँट को कितनी ही रमणीय वनस्थली मे छोड दिया जाये, वह फल और फूलो के प्रति उदासीन रहकर सिर्फ झाडी और उनके

कॉटो को ही आहार के योग्य मानता है। उसके लिए फलों का माधुर्य और फूलों की सुकुमारता का कोई अर्थ नही है।

इसी प्रकार ईर्ष्यालु व्यक्ति का मानस भी दोष-दर्शन मे आनन्द पाता है। वह उत्तम गुणों को त्याग कर मात्र दुर्गुणो को ही देखता है। एक वार एक चित्रकार ने वडा सुन्दर चित्र वनाकर घर के वाहर दीवाल पर यह लिखकर टाँग दिया कि दर्शकों को इसमे जो भी त्रुटि दिखाई पड़े, कृपया उसकी ओर सकेत करे। कुछ ही दिनो मे त्रुटि वताने वाले दर्शको ने उस चित्र मे अनेको त्रुटियो को दर्शाकर उसकी स्वाभाविक आकृति को ही विकृत कर दिया। चित्रकार ने जव यह देखा तो उसने उसी चित्र के नीचे एक दूसरी सूचना टाँग दी कि कृपया इस चित्र की भूले सुधार दीजिए। दो-चार दिनो तक चित्रकार व्यग्रता से प्रतीक्षा करता रहा कि कोई न कोई इसकी भूलें अवश्य सुधारेगा किन्तु उसकी प्रतीक्षा निराशा मे परिणत हो गई। इससे यह सिद्ध होता है कि दूसरो के दोप निकालना आसान है किन्तु दूसरो के दोषो को सुधारना अत्यन्त कठिन है।

झूठा बखान

कीच-कर्दम ने असख्य कमलो को जन्म देकर भी कभी गर्दन ऊँची नही उठाई। समुद्र की सीपियो ने असख्य मोतियो को निर्मित करके भी गर्व या अहकार मे इठलाना नही जाना। किन्तु मनुष्य के स्वभाव की इस विचित्रता को क्या कहा जाय कि वह थोडा-सा भी महत्त्वपूर्ण कार्य करके अपनी करनी की यश-गाथा का झूठा वखान करता रहता है। यह तो अपने हाथ से अपनी ही पीठ ठोकने जैसा है। समाज मे इतनी शक्ति है कि वह शुभ कार्यो की मुक्तकण्ठ से प्रशसा कर सकता है किन्तु व्यक्ति को तो आत्म-श्लाघा की दुष्प्रवृत्ति से अपनी रक्षा करनी ही चाहिए।

☆

१४

प्रेम की प्रभा

- प्रेम की सजावट
- वचन-वाण
- सुई और कैंची
- प्रेम का माधुर्य
- वेर और अगूर
- वसी और मानव
- प्रेम का वैभव
- अन्तर का मधु
- प्रेम-मन्दिर
- विप-सागर मे अमृत की बूंद
- प्रेम की कडी क्षमा
- प्रेम और सन्देह
- मानव की महानता
- जगलीपन कैसे दूर हो ?
- टेलीफोन
- विनय

- ☐ कटुक-वचन का दुष्परिणाम
- ☐ मधुर-वाणी
- ☐ प्रेम और सगठन
- ☐ समता और ममता
- ☐ आग किससे बुझाये ?
- ☐ जीवन की महानता
- ☐ जीवन कैसा हो ?
- ☐ कोमल वनो
- ☐ प्रेम का धागा
- ☐ प्रेम की चिकनाई
- ☐ प्रभु से प्रेम
- ☐ भगवान से प्रीति जोडे ?
- ☐ नन्द और यशोदा
- ☐ माया का पर्दा
- ☐ आदर्श भ्रातृ-प्रेम
- ☐ शस्त्र की जरूरत नही
- ☐ नमे ते गमे
- ☐ दो पख

प्रेम की प्रभा

●

++

प्रेम की सजावट

हृदय की सजावट के लिए बाह्य अलकरणों की आवश्यकता नही। हृदय मे सुगन्ध लाना चाहते है तो बाहरी फूलों से उसे मत सजाइये। उसके लिए भीतर के फूलो की आवश्यकता है। भीतर के फूल मुरझाते नही, लेकिन बाहर के फूल तो थोड़े ही समय मे कुम्हला जाते हैं। भीतर के फूल से हमारा तात्पर्य आन्तरिक गुणो से है—यदि हममे सेवा, परोपकार, प्रेम और त्याग की भावनाये तरंगित होती है तो बाहर के इत्र और सुगध की क्या आवश्यकता है?

वचन-बाण

उर्दू मे एक शेर है—

"कुदरत को नामजूर है, सख्ती जबान मे।
पैदा हुई है न इसलिए हड्डी जबान मे॥"

इसीलिए कहते हैं कि मुँह से निकली वाणी और धनुष से छूटे तीर वापस नही लौट सकते। वचनो के तीर तो अति भयकर होते है, उनका प्रहार बडा मारक होता है। ज्ञानी-शास्ताओ ने कई स्थलो पर मनुष्य को चेतावनी दी है कि मनुष्य को बोलने से पूर्व वचन को हृदय-रूपी तराजू पर तौलकर बोलना चाहिए, अन्यथा कटु-वाणी अग्निबाण की तरह दूसरो के हृदय को झुलसा देगी।

सुई और कैंची

प्रेम और द्वेष दोनो मे ढाई अक्षर है, किन्तु दोनो के प्रभाव मे

आकाश-पाताल का अन्तर है। प्रेम एक प्रकार की सुई है जो हृदय-रूपी फटे वस्त्रों को भी सीने की क्षमता रखती है। यदि दो मित्रो के हृदय मे किसी प्रकार की कटुता आ गई हो तो प्रेम की सुई उसे सी सकती है। लेकिन द्वेष का व्यवहार तो कैंची की तरह होता है। वह तो सुन्दर वस्त्रो को भी काट कर दो टुकडो मे विभक्त कर देती है। अत॰ अगर दो हृदयो को जोडना है तो सुई का प्रयोग कीजिए, कैंची का नही।

प्रेम का माधुर्य

गन्ने को कितना ही लोहे के कोल्हू मे पेरा जाये उससे मधुर रस की ही प्राप्ति होगी। चन्दन को कठोर से कठोर शिला पर घिसा जाये किन्तु उससे शीतल सौरभ ही महकेगा। फलों से परिपूर्ण वृक्ष पर पत्थर फेंकने से भी वे फल ही प्रदान करते हैं, पत्थर नही। उसी प्रकार सज्जन व्यक्ति का स्वभाव भी ऐसा ही होता है। उसे दुर्जन कितना ही कष्ट दे लेकिन वह उसका वदला कटुता मे न चुका कर प्रेम-भाव से उसे जीतना चाहेगा।

वेर और अंगूर

एक सुरम्य उद्यान मे वेर के पेड़ के पास ही अगूर की लता फैली हुई थी। वायु के वेग से जव दोनो हिलते तो वार्त्तालाप चल पड़ता। एक दिन वेर ने अंगूर से पूछा—"भाई अगूर! हमारे-तुम्हारे आकार-प्रकार मे कोई विशेप अन्तर नही है, तुम भी गोल हो और मैं भी गोल हूँ। फिर क्या कारण है कि लोग तुम्हे तो वड़े चाव से खाते हैं और मुझे खाते ही थूक देते है?" अंगूर ने वडी सहजता से प्रत्युत्तर मे कहा—"भाई! इसमे आश्चर्य क्या? तुम्हारे शरीर मे कठोरता है, अत तुम्हे कठोरता का दण्ड तो भोगना ही पड़ेगा।" अगूर का उत्तर सुनकर वेर मौन हो गया।

वंसी और मानव

वसी वडे कठोर बाँस से निर्मित होती है, किन्तु उसके स्वर वड़े माधुर्य से पूर्ण होते है। यदि कोई वसी स्वर्ण-तारो से वनी हो, और उसके शरीर पर मणि-माणिक्य भी जड़े हो किन्तु उसमे मधुर स्वर लहरी झकृत न हो तो उस वसी का क्या मूल्य है? मूल्य तो उसका स्वरो के आरोह-अवरोह मे ही निहित होता है। इसी प्रकार जिस व्यक्ति का जीवन प्रेम और माधुर्य

से सर्वथा रिक्त है, वह भले ही कितना ही अलकृत एव सुशोभित क्यो न हो, पर उसकी वाणी को सुनने के लिए कौन तैयार होगा ?

प्रेम का वैभव

महात्मा गाधी ने एक जगह अपने जीवन के अनुभव बतलाते हुए कहा है कि प्रेम ही ससार मे सबसे सूक्ष्म शक्ति है। अगर दुनिया वैर से भरी होती तो इसका कभी का अन्त हो गया होता। आज विश्व मे समृद्धि का अभाव नही है, बल्कि प्रेम का अभाव है। प्रेम के कारखाने नही होते वरना लोग प्रेम का भी उत्पादन आरम्भ कर देते। उसकी तो एक ही फैक्ट्री है—और वह है हृदय। यदि हृदय में प्रेम नही है तो सारी समृद्धियाँ व्यर्थ है। आपके पास सब कुछ है आप किसी को नौकरी या दौलत दे सकते है लेकिन यदि प्रेम नही दे सकते तो आप अकिंचन है। घर भले ही धन और दौलत की दृष्टि से शून्य हो किन्तु यदि प्रेम की दृष्टि से शून्य है तो वह सर्वथा अशोभनीय है।

अन्तर का मधु

खिले सुमन के मुख-मण्डल पर मधु-मक्षिका आकर जब बैठती है तो अपने डक के सहारे उसके रस का पान करती है और फूल उसे अपने अन्तर का मधु समर्पित कर देता है। कठोरता के बदले वह मधुरता का दान करता है। यह उसकी महानता है। इसी प्रकार दूसरो के द्वारा दिये गये कष्टो को सहकर भी जो सेवा, प्रेम और परोपकार का मधु वर्षण करता है, वह धन्य है, महान् है।

प्रेम-मन्दिर

कबीर ने प्रेम के सम्बन्ध मे एक बहुत सुन्दर बात कही है—

प्रेम न बाडी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देय लै जाय॥

प्रेम मे आत्म-समर्पण की भावना ही सर्वोपरि है। यदि आत्म-समर्पण से डर है, तो व्यर्थ के प्रेम का आडम्बर उचित नही। प्रेम के मन्दिर मे तो समर्पण की ज्योति ही जगमगाती है। उसी से प्रेम-मन्दिर की शोभा अनन्त गुना बढती है। अगर समर्पण की ज्योति न जले तो प्रेम-मन्दिर भी सूना

है । अतः पहले समर्पण की ज्योति जलाइये तव प्रेम की परिपक्वावस्था का आनन्द प्राप्त कीजिए ।

विष-सागर में अमृत की बूँद

जल से भरे एक बडे पात्र मे यदि इत्र की एक बूँद डाल दी जाये तो सारा जल सुगन्धित हो जाता है, उसी प्रकार विप के सागर मे अमृत की एक बूंद भी समस्त विप के दुर्गु णो को समाप्त कर देती है । मनुष्य भयानक कटुता और वैमनस्य के क्षणो मे भी यदि धैर्य से प्रेम का सहारा ले तो शत्रु ता की गाँठ खुलने मे क्या देर हो सकती है ?

प्रेम की कड़ी क्षमा

प्रेम-शृङ्खला की कडियाँ क्षमा से जुडी रहती है । क्षमा ही उस कडी को मजबूत और स्थायी वनाती है । यदि क्षमा दुर्बल हुई तो प्रेम की शृङ्खला स्वत भग्न हो जायेगी । जो त्रुटि होने पर क्षमा की याचना करता है, वह विनम्र है और जो उक्त अवसर पर क्षमा प्रदान करता है, वह महान है । क्षमा का निवास उदार-हृदय है । उदारता से क्षमा और क्षमा से प्रेमानुराग की अभिवृद्धि होती है ।

प्रेम और : सन्देह

प्रेम और सन्देह दोनो के क्षेत्र अलग-अलग हैं । दोनो एक-दूसरे की भाषा नही समझते । जो लोग प्रेम के दूध मे सन्देह का एक बूंद भी मट्ठा छोड देते है, वे उसको विकृत कर देते हैं । यदि प्रगाढ प्रेम है तो वहाँ सन्देह की स्थिति असम्भव है और यदि सन्देह है तो प्रेम का वीज-वपन ही नही हो सकता । इसीलिए प्रेम का जन्म होना एक वात है, किन्तु उसका निर्वाह कठिन है । आदि से अन्त तक प्रेम का सुर सगीत बजता रहे इसके लिए तो वड़े वैर्य की आवश्यकता है । सासारिक जीवन मे सशय की सम्भावना कम नही होती किन्तु ज्ञानी व्यक्ति तो उस संशय को अपने पास भी नही फटकने देते । जैसे अमृत के साथ विप का सम्पर्क सम्भव नही और ज्योत्स्ना के समय सूर्य का प्रकाश अलक्षित रहता है, उसी प्रकार प्रेम और सन्देह की दुरभिसवि भी सभव नही ।

मानव की महानता

मानव की महानता किस वात मे है ? धन मे ? सत्ता मे ? या परा-

क्रम मे ? तो कहना होगा मानव की महानता इनमे नही है। मानव की महानता उसके सुन्दर विचारो मे निहित है। प्रेम, दया और क्षमा के विचार सवसे अधिक मधुर व पावन हैं। इसीलिए सदा हृदय-वाटिका मे प्रेम, दया और क्षमा के पुष्प खिलाने चाहिए। उसमे जितनी सुन्दर पावनता की जल-वायु होगी उतना ही प्रेम-पुष्पो की सृष्टि का सर्जन उत्तम रीति से हो सकेगा। ईर्ष्या की गरम हवा से उसे वचाते रहना चाहिए, अन्यथा प्रेम के पुष्प मुर्झा जायेगे। उदारता तथा क्षमा के खाद-पानी से उनका सदा अभि-सिंचन होते रहना चाहिए।

जंगलीपन कैसे दूर हो ?

गधे को यदि सिंह के चमड़े का खोल पहना दिया जाय तो क्या वह असली सिंह वन जायेगा ? नही। क्योकि उसमे अपने जातीय गुण तो रहेगे ही। इसी प्रकार मनुष्य अपने आकार-प्रकार को प्राप्त करके भी मानवीय गुणो को धारण न करे तो क्या वह मनुष्य कहला सकता है ? मनुष्य के शरीर मे भी राक्षसी-भाव रह सकते है। यदि ऐसा न होता तो ससार में पाप और दुर्गुणो का मूलोच्छेदन न हो गया होता ? अत. मन के जगलीपन को तो सद्‌गुणो के द्वारा ही दूर किया जा सकता है।

टेलीफोन

सुदूर प्रदेश मे रहने वाले व्यक्ति से यदि सपर्क स्थापित करना है तो आपको टेलीफोन की शरण लेनी होगी। उसके नम्बर घुमाने पर आप सीधे रूप से उससे वातचीत भी कर सकेगे। मानव-समाज को यह विज्ञान की एक वहुत वडी देन है। किन्तु अभी तक विज्ञान ने ऐसा कोई टेलीफोन नही वनाया जिससे व्यक्ति के हार्दिक भावो को सरलता से जाना जा सके। हो सकता है टेलीफोन पर अत्यन्त विनम्रता से बात करने वाला व्यक्ति वहुत क्रूर स्वभाव वाला हो। किन्तु उसके हृदय के भावो का टेलीफोन पर कैसे पता लग सकता है ?

मैं समझता हूँ यदि मन के टेलीफोन पर प्रेम के नम्बर घुमाये जाये तो व्यक्ति के मनोभावो का पता आसानी से लग सकता है, वशर्ते कि प्रेम की कमी न हो। यदि प्रेम की कमी है तो हम दूसरे व्यक्ति के मनोभावो को समझने मे असफल ही रहेगे।

विनय

एक नीतिकार का कथन है—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्म तत. सुखम् ॥

प्रस्तुत श्लोक में कितनी महत्त्वपूर्ण वात कही गई है । विद्या से विनय, विनय से पात्रता, पात्रता से धन, धन से धर्म और धर्म से सुख की प्राप्ति होती है । यह जीवन की सुन्दर यात्रा है । जो मनुष्य इस गन्तव्य तक पहुँच जाये उसके लिए सारी सिद्धियाँ सुलभ हैं । विद्या के वाद विनय का ही स्थान है । हीरा तो स्वर्ण की मुद्रिका में ही शोभायमान होता है, पीतल की अँगूठी में नही । इसी प्रकार ज्ञान अथवा विद्या, विनीत व्यक्ति मे ही सुन्दर लगती है, अहकारी मे नही । रावण वेदों तथा धर्मो का महान विद्वान था किन्तु उसके मन की अहंकारिता ही उसकी सवसे वड़ी दुर्वलता थी और उसी से उसका पतन हुआ । जैसे वर्तन में एक भी छिद्र होने से सारा जल वाहर निकल जाता है, उसी प्रकार जीवन मे अविनय होने पर व्यक्ति के सभी गुण नष्ट हो जाते हैं ।

कटुक-वचन का दुष्परिणाम

इस पृथ्वी पर मुख्य तीन ही रत्न हैं—

"पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जलमन्नं सुभाषितम् ।"

अर्थात्--पृथ्वी पर तीन रत्न हैं—अन्न, जल और मीठी वोली । ससार मे अन्न और जल की उतनी कमी नही है जितनी कि मीठी वोली की ।

श्री उत्तराध्ययनसूत्र मे निर्देश दिया गया है—

असावज्ज मियं काले भासं भासिज्ज पण्णवं ।

अर्थात्—वुद्धिमान् समयानुसार, निर्वद्य एवं परिमित भाषा वोले । लेकिन ऐसे वुद्धिमान ससार मे वहुत कम हैं, जो अपनी भाषा पर संयम रख सके । इतिहास के पृष्ठो से यह पता चलता है कि वाणी ने मानव की सेवा की अपेक्षा अहित ही अधिक किया है । कटु-वचन सुनाकर सीता ने लक्ष्मण को राम की खोज मे भेजा । परिणाम सीता-हरण और राम-रावण युद्ध के रूप में सामने आया । द्रौपदी ने कटु-वचन सुनाकर कुरुक्षेत्र के भीषण युद्ध

की भूमिका निर्माण की। आज राष्ट्रो के आपसी वैमनस्य में भी कटूक्तियो का काफी हाथ है। अत मधुरवाणी ही इन सबका समाधान है।

मधुर-वाणी

अथर्ववेद में कहा है—"मधुमती वाचमुदेयम्"—अर्थात् मीठी बोली वोलना चाहिए। सत्य तो यह है कि वसन्त ऋतु की मधुर सुरभित बयार, शीतल जल और चन्दन का लेप तथा वृक्ष की शीतल छाया भी मनुष्य के मन को वह आनन्द नही दे सकती जो आनन्द मधुर-वाणी दे सकती है। इसीलिए मधुर-वाणी को तुलसीदास ने वशीकरण-मन्त्र की उपाधि दी है—

तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मन्त्र है, तज दे वचन कठोर॥

प्रेम और संगठन

एक स्थान पर भोज के पश्चात् कुछ जूठन फेंक दी गई थी। उसके पास ही खड़े एक वृक्ष की डाल पर बैठा कौआ अपने जाति-बन्धुओ को काँव-काँव की कर्कश-ध्वनि से टेर रहा था। कुछ ही देर मे अनेक कौवे उस स्थान पर एकत्र होकर जूठन को खाने लगे। कभी-कभी सघर्ष भी करते किन्तु क्षण-मात्र मे एक होकर फिर प्रेमपूर्वक खाने लगते।

इस दृश्य को देखकर मेरे मन मे यह विचार आया कि क्या साधारण मनुष्यो का दर्जा कौवे से भी नीचा है ? क्योकि यहाँ तो एक-दूसरे को खाते देखकर मन मे प्रेम के स्थान पर ईर्ष्या की अग्नि भडक उठती है। प्रेम से खाने की कौन कहे, यहाँ तो आपस मे सघर्ष की स्थिति अनिवार्य हो जाती है। वर्तमान युग के सन्दर्भ मे कौवे का यह प्रेम और सगठन मनुष्य को सोचने के लिए वाध्य करता है।

समता और ममता

समत्व और ममत्व मे पर्याप्त अन्तर है। ममत्व तो मारने वाला है और समत्व (समता) तारने वाला। हम समता के द्वारा विश्व-बन्धुत्व की कल्पना करते हैं किन्तु ममत्व तो मन मे आसक्ति पैदा करने वाला है। ममत्व का विकृत रूप ही सासारिक वन्धन है और समत्व का शुद्ध रूप मुक्ति है। ममत्व वढाने से आसक्ति वढती है और आसक्ति मे वन्धन है

जवकि विरक्ति मे स्वतन्त्रता है, विराग है। वैराग्य ही जीवन के विकास का मूल मत्र है। अत हमे समत्व सीखना है, ममत्व नही।

आग किससे बुझायें ?

घर अथवा वाहर मे लगी आग को वुझाने के लिये मानव जल का इस्तेमाल करता है। यही बुद्धिमत्ता है और यही सासारिक व्यवहार है। किन्तु यदि वह जल के स्थान पर पेट्रोल का उपयोग करे तो उसका परिणाम अत्यन्त भयकर सिद्ध होगा।

आज ससार की यही दशा है। वह आग को बुझाने के लिये पेट्रोल का उपयोग कर रहा है। लेकिन राष्ट्र-राष्ट्र के बीच राजनैतिक शत्रुता की जो ज्वाला जल रही है उसे अहिंसा और प्रेम के जल से ही शात किया जा सकता है न कि द्वेष के पेट्रोल से। पेट्रोल से आग बुझती नही, वल्कि वह अधिक भभकती है। वुद्धिमानी तो इसी मे निहित है कि पेट्रोल के स्थान पर जल का उपयोग किया जाय।

जीवन की महानता

चाणक्य नीति मे कहा गया है कि ऊँचे आसन पर बैठ जाने से ही मनुष्य महान नही वन जाता वल्कि अपने गुणों से महान बनता है। क्या महल के शिखर पर बैठने से काग गरुड़ वन जाता है ? नही। उसी प्रकार असीम वैभव के सागर मे जीवन को निमग्न कर देना ही मनुष्य की महत्ता का परिचायक नही है वल्कि जगत मे रहकर जो अपने हार्दिक गुणो, सद्भाव, प्रेम एव त्याग से मनुष्य-मात्र की सेवा मे तल्लीन हैं, वे ही सबसे ऊँचे और महान हैं।

जीवन कैसा हो ?

एक संकीर्ण गड्ढे मे पडा हुआ जल कुछ ही समय के वाद सडने लगता है और दुर्गन्ध भी देने लगता है जवकि पर्वत-शिखर से उद्भूत निर्झर का जल कल-कल ध्वनि की सगीत लहरी विखेरता हुआ चलता है और सदैव स्वच्छ रहता है। एक वन्द है, और दूसरा स्वतन्त्र है। गड्ढे का जल वदवू के कारण अनुपयोगी है, उसके निकट पहुँच कर सभी लोग अपनी नाक वन्द कर लेते हैं। लेकिन नदी तथा निर्झर के जल से सभी प्राणियों की तृषा शान्त हो जाती है।

यही बात मानव-जीवन के सन्दर्भ मे भी लागू होती है जो मनुष्य अपने जीवन को स्वार्थ के गढे मे बाँध देता है उसका जीवन भी सडने लगता है और दुर्गन्ध पैदा होने लगती है। लेकिन जो व्यक्ति स्वार्थ की सीमा को लाँघकर विस्तृत जीवन-क्षेत्र मे प्रेम की धारा प्रवाहित करता है, वह निर्मल नदी के जल की तरह स्वच्छ और उपयोगी होता है।

कोमल बनो

चीन के विश्व-प्रसिद्ध दार्शनिक कन्फ्यूसियस मृत्यु-शय्या पर लेटे हुए जीवन की अतिम घडियाँ गिन रहे थे। तभी उन्होने अपने शिष्यो को निकट बुलाया और कहा—"मेरे बेटो ! जरा मेरे मुँह मे झाँक कर देखो, जीभ है या नही ?" शिष्यो ने गुरु के मुँह मे झाँक कर देखा और बोले—"जीभ तो अपनी जगह पर है, गुरुदेव !" कन्फ्यूसियस ने उनसे दूसरा प्रश्न किया—"अच्छा ! तो अब पुन झाँक कर देखो कि दाँत हैं या नही ?" शिष्यो ने फिर झाँक कर देखा तो सारे दाँत अपनी जगह से उखड चुके थे। कन्फ्यूसियस ने शिष्यो के सामने विचारार्थ प्रश्न रख दिया—"दाँत कहाँ चले गये ? जीभ का जन्म तो पहले हुआ था, दाँतो का बाद मे। फिर पहले जीभ को जाना था, दाँत क्यो चले गये ?" गुरु के इस प्रश्न पर शिष्य एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। तब गुरु ने स्वय ही शका-समाधान करते हुए कहा—"इस बात का रहस्य मैं ही स्पष्ट कर देता हूँ। वस्तुत जीभ कोमल है इसलिये वह अब तक मौजूद है और दाँत कठोर तथा क्रूर थे, अत. पहले ही नष्ट हो गये। यही जीवन का रहस्य है। कोमल वस्तुएँ स्थिर रहती हैं जबकि कठोर एव क्रूर तत्त्व स्वत. समाप्त हो जाते है।"

प्रेम का धागा

हिन्दी के नीति विशारद कवि रहीम ने कहा है—

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चिटकाय।
टूटे से फिर ना जुडै, जुडै गाँठ परि जाय॥

वास्तविकता तो यह है कि प्रेम का धागा, तो रेशम का सूक्ष्म धागा है जो बडा कोमल होता है। उसे उलझने से बचाना चाहिये, नही तो आपसी स्वार्थ मे वह बुरी तरह उलझ जाता है। खीचने पर टूटने का भय

है और टूट जाने पर उसका जुडना अत्यन्त कठिन है। यदि वड़ी कुशलता से उसे जोड भी दिया जाय तो भी उसमे ग्रन्थि पड जाती है। अतः प्रेम के सूक्ष्म ततु को स्वार्थं के कीटाणु से बचाना चाहिये।

प्रेम की चिकनाई

यदि किसी मशीन को वहुत दिनो तक प्रयोग मे न लाये तो उसमे जग लगने का भय रहता है और यदि उसका अधिक उपयोग करे तो उसके कल-पुर्जे घिसने लगते है। अगर मशीन के कल-पुर्जो मे थोड़ा सा तेल डाल दे तो न तो जग लगने का भय होगा और न पुर्जों के घिसने का ही। यही बात मनुष्य के जीवन मे चरितार्थ होती है। विना श्रम-परिहार के मनुष्य अपने परिवार के लिए अथक-परिश्रम करता है, क्योंकि उसे परिवार से प्रेम की चिकनाई प्राप्त होती रहती है और इसी से वह थकान का अनुभव भी नही करता।

प्रभु से प्रेम

घर पर आये हुए कोई अतिथि या सम्बन्धी ताप-ग्रस्त हो जाते हैं तो आप भाग-दौड आरभ कर देते हैं, और अच्छे से अच्छे उपचार की व्यवस्था करते हैं। यही हालत भगवान और भक्त के बीच की है। यदि प्रभु के साथ हमारा प्रेम-सबध जुडा हुआ है तो भगवान भी हमारे कुशल-क्षेम को जानने के लिये व्यग्र रहते है। भगवान के लिये भक्त की मर्यादा तो अतिथि से भी वढकर है।

भगवान से प्रीति जोड़ें

अनेक कष्ट उठा करके पिता अपने पुत्र के लिए सपत्ति के भडार भरता है। रात-दिन इसी चिन्ता मे वह लीन रहता है कि उसका पुत्र असीम सम्पत्ति का स्वामी वने। किन्तु जब जीवन-यात्रा पूर्ण हो जाती है और चिर-निद्रा का काल आता है तो पिता वडी असहाय स्थिति मे वेदना मे तडपता रहता है। उस समय तो पुत्र, वधू, भाई, वहन कोई उसकी सहायता के लिए आगे नही वढता। सभी मौखिक सहानुभूति प्रगट करते है लेकिन वास्तविक वेदना का भागीदार कोई नही वनता। पुत्र भी इस चिन्ता मे लगा रहता है कि पिता की आँख मुँदने के पूर्व ही वसीयत उसके नाम हो जाये ताकि वाद मे कोई वैधानिक सकट न आये।

इसीलिए ज्ञानी महात्माओ ने इन सासारिक सबधो के भ्रम-जाल से मनुष्य को हमेशा सतर्क किया है। यदि मनुष्य इनसे बचकर ईश्वर मे प्रीति-सबघ जोड़े तो अंत-काल की मर्म-वेदना से वह वच सकता है। इस संवघ मे यह वात वड़ी महत्त्व की है—

इकट्ठे कर धन-दौलत, कई मुल्को के मालिक थे।
सिकन्दर जव गया दुनिया से, दोनो हाथ खाली थे॥

नंद और यशोदा

कर्मयोगी श्रीकृष्ण के सन्दर्भ मे नद और यशोदा का उल्लेख वार-वार आता है। मेरी दृष्टि से इन शब्दो का एक भिन्न अर्थ है। मधुर वाणी, विनय, सरलता, स्नेह और सद्भाव से जो सभी को आनद दे, उसी का नाम 'नंद' है। जो परिश्रम स्वय करे और यश तथा कीर्ति दूसरो को दे उसी का नाम 'यशोदा' है।

माया का पर्दा

जव कोई अभ्यागत किसी से मिलने के घर पर आता है तो वह वड़े स्नेह के साथ अपने घर के सभी दरवाजे खोलकर उसका सुस्वागत करता है और घर की परिक्रमा कराता है। लेकिन उसे अपनी तिजोरी खोलकर रत्न, आभूषण या अपनी सम्पत्ति नही दिखलाता, वह तो केवल अपने पुत्र और पत्नी के लिए ही सुरक्षित रखता है।

इसी प्रकार जीव भी जव तक प्रभु के साथ पूर्णतया प्रेमासक्त होकर तदाकार नही हो जाता तव तक उसके सामने से माया का पर्दा नही उठता और वह प्रभु का साक्षात्कार नही कर पाता। जिससे पूर्ण प्रेम हो उसे ही तिजोरी की चावी दी जाती है। वैसे ही जव जीव पूर्ण रूप से प्रभु के समक्ष आत्म-समर्पण कर देता है तभी उसे आत्मा का साक्षात्कार होता है।

आदर्श भ्रातृ-प्रेम

भाइयो के आदर्श-प्रेम की कथा रामायण मे प्राप्त होती है। कैकेयी जव राम को वन मे जाने के लिए कहती है तव विना किसी सकोच या हिचकिचाहट के राम वन-गमन की तैयारी करने लगते है और कैकेयी का उपकार मानते हैं। राम तो सव प्रकार से भरत को सुखी देखना चाहते थे।

भरत जब ननिहाल से वापस लौटते है और उन्हें राम के वनवास का पता चलता है तो वे अत्यन्त दु.खी हो उठते है और माँ को ही बुरा-भला कह बैठते है। इसके साथ ही वे एक सन्यासी की तरह सुख और भोगो से निर्लिप्त रहकर राज्य की व्यवस्था देखते हैं।

यह भाइयो का आदर्श प्रेम है ! किन्तु आजकल के भाई तो रामायण का दैनिक पाठ करके तथा राम-कथा का प्रवचन सुनकर भी कोर्ट और कचहरी का मुँह देखते हैं ताकि उनकी सम्पत्ति पर उनका अधिकार अखड बना रहे। यह कलियुग की माया है !

शस्त्र की जरूरत नहीं

'धर्मरत्न प्रकरण' मे कहा गया है कि जैसे सुगन्ध के कारण चदन, सौम्यता के कारण चन्द्रमा और मृदुता के कारण अमृत जगतप्रिय है, उसी प्रकार विनयी व्यक्ति मनुष्यो मे प्रिय बन जाता है। किसी का हृदय जीतने के लिए हमे तलवार की आवश्यकता नही है, नम्रता, सरलता और प्रेम-भाव की आवश्यकता है। यदि विनम्रता और सरलता हम में है तो पाषाण-हृदय भी पानी-पानी हो जाता है।

नमे ते गमे !

गुजराती भाषा मे एक कहावत है—'नमे ते गमे।' कुएँ से पानी निकालने के लिए मनुष्य को तो झुकना पडता ही है, घड़े को भी पानी से भरने के लिए कूप-जल मे झुककर डुबकी लगानी पडती है। अगर घड़ा या व्यक्ति झुकने को तैयार न हो तो कुये से बाहर जल नही निकल सकता। इसी प्रकार ज्ञान-रूपी घट को भरने के लिए मनुष्य-मात्र को विनम्रता और सद्‌भाव की आवश्यकता पड़ती है।

दो-पंख

जैसे किसी पक्षी को अनत आकाश मे उडान भरने के लिए दो पखो की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार प्रेम और परोपकार ये दो ऐसे पंख हैं जिनके सहारे मानव उडान भरकर समस्त विश्व पर अपना अधिकार कर सकता है। इनमे से एक भी पख न हो तो फिर उडना कठिन है।

☆

मुनि श्री जी के साहित्य पर :

विशिष्ट विद्वानों के मत-सम्मत

□आधुनिक विज्ञान और अहिंसा

लेखक : गणेशमुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न

भूमिका विद्वद्वर्य मुनि कातिसागर जी

प्रकाशक आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली-६

मूल्य—३·५०, प्रकाशन काल १९६२

☆विज्ञान और अहिंसा दोनो ही वड़े जटिल विपय है, फिर भी इन्हे जिस सरल और आकर्पक रूप मे उपस्थित करने का विद्वान लेखक ने प्रयास किया है, वह श्लाघनीय है· · कम से कम शब्दो मे अधिक से अधिक जानकारी देने का उपक्रम, पुस्तक की अपनी विशेपता है, तभी तो लेखक ने 'प्राकृतिक और आध्यात्मिक' से प्रारम्भ कर 'विश्वशान्ति और अहिंसा', 'सयुक्त राष्ट्रसघ' तथा 'अहिंसा की सार्वभौम शक्ति' आदि अनेक विपयों की चर्चा की है प्रस्तुत पुस्तक अहिंसा मम्वन्धी विचारो की निर्माण दिशा मे अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। भापा प्रवाहशील है, सवल है। छपाई, सफाई, गेटअप आकर्पक है।

—उपाध्याय अमरमुनि

☆'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा' मे श्री गणेशमुनि शास्त्री ने वर्तमान जीवन की विभीपिकाओ पर दृष्टि केन्द्रित करते हुए अपने अनुभवो द्वारा विज्ञान और आध्यात्मिक सस्कृति का समन्वयात्मक अध्ययन सरलतापूर्वक प्रस्तुत कर रुचिशील पाठको का ज्ञान सवर्धन किया है, विज्ञान जैसे वहिर्जगत् से सवद्ध विषय से लेकर धर्म, अहिंसा और दर्शन जैसे आध्यात्मिक जीवन-प्रेरक तत्त्वो से सम्वन्ध स्थापित कर धर्म और समाज की जो सेवा की है, वह स्तुत्य है।

—मुनि कातिसागर

☆'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा' एक आदर्श कृति है। युवक क्रान्तदर्शी सन्त श्री गणेशमुनि शास्त्री का प्रस्तुत उपक्रम आधुनिक युग की साहित्य-सर्जना मे वेजोड है।

—'श्रमण' वाराणसी

☆विज्ञान और वैज्ञानिक प्रणालियाँ मानवता द्वारा अहिंसा का मार्ग सरलता से

अपनाने मे किस प्रकार सहायक हो सकती हैं, इस विषय मे श्री गणेश मुनिजी के जो विचार हैं, वे जनता के सही मार्गदर्शन मे उपयोगी सिद्ध होगे।

—डा० दौलतसिंह कोठारी

☆'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा' के लेखक मुनिराज को न केवल विज्ञान मे ही रुचि है, अपितु धर्मशास्त्रो के साथ-साथ वैज्ञानिक साहित्य का भी सुन्दर अध्ययन है। प्रस्तुत कृति भावी अहिंसा विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो के पाठ्यक्रम मे उपयोगी सिद्ध होगी।

—डा० डी० वी० परिहार

☆यदि प्रस्तुत पुस्तक को प्रयत्न करके किसी पाठ्यक्रम मे निश्चित करा दिया जाय, तो जनता का अधिक लाभ होगा, पुस्तक सर्वरूपेण पठनीय है।

—जिनवाणी
जयपुर (राजस्थान)

☐अहिंसा की बोलती मीनारें

लेखक : **गणेशमुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न**

भूमिका : **यशपाल जैन, दिल्ली**

प्रकाशक : **सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा-२**

मूल्य **४·००, प्रकाशन काल १९६८**

☆आज सब ओर प्रेम और बन्धुता के स्थान पर आशका, भय और अविश्वास का बोलबाला है। ये सब शान्ति के लिए खतरे हैं, जिनसे त्राण पाने का यदि कोई अमोघ अस्त्र है, तो वह अहिंसा ही है। जहाँ अहिंसा है, वहाँ जीवन है और जहाँ अहिंसा का अभाव है, वहाँ जीवन का अभाव है। इस पुस्तक मे अहिंसा की इसी विराट और व्यापक शक्ति का ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दृष्टि से सूक्ष्म विवेचन किया गया है। पुस्तक सात खण्डो मे विभक्त है और प्रत्येक खण्ड को 'बोलती मीनार' की सज्ञा दी गई है। प्रथम खण्ड मे अहिंसा के आदर्श को समझाते हुए, विराट दृष्टि और विभिन्न मतो मे उसका निरूपण किया गया है· दूसरे अध्याय मे सामाजिक हिंसा के विभिन्न रूप शोषण, दहेज आदि की चर्चा करते हुए बताया गया है कि मानव जाति एक है तीसरे खण्ड मे अपरिग्रहवाद की विस्तार से चर्चा की गई है···चौथे और पाँचवें अध्याय मे अहिंसा के बुनियादी सिद्धान्त अनेकान्तवाद और शाकाहार की चर्चा की गई है। छठे खण्ड मे रेडियो-सक्रियता, आणविक शक्ति, अणु-परीक्षण आदि का उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि विज्ञान पर अहिंसा की विजय किस प्रकार होती जा रही है और उसका समन्वय कैसे हो सकता है। अन्तिम सातवें खण्ड मे अहिंसा और विश्वशान्ति जैसे ज्वलंत प्रश्न पर विभिन्न शीर्षको के अन्तर्गत विस्तार से चर्चा करते हुए इस दिशा मे भारत के योगदान की चर्चा की गई है।

पुस्तक मे अहिंसा के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष पर काफी सुपाठ्य सामग्री दी गई है। भाषा सरल, सुबोध और शैली इतनी रोचक है कि सीमित ज्ञान रखने वाले व्यक्ति भी इसे आसानी से समझ सकते हैं। गेटअप और छपाई की दृष्टि से भी पुस्तक अच्छी और विषय-वस्तु के कारण तो संग्रहणीय है ही।

—दैनिक हिन्दुस्तान
४ जनवरी १९७०, दिल्ली

☆प्रस्तुत पुस्तक मे विद्वान लेखक ने अहिंसा की व्यावहारिक पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखते हुए, उसके विभिन्न अगो का विशद विवेचन किया है। इसे पढकर अहिंसा की तेजस्वी शक्ति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

पुस्तक सात खण्डो मे विभक्त है। पहले खण्ड मे उन्होंने अहिंसा के आदर्श को समझाया है। दूसरे मे मानव-जाति एक है, इसको स्पष्ट किया है। तीसरे मे अहिंसा की साधना का ढग वताया गया है इसी खण्ड मे अपरिग्रहवाद की विस्तार से चर्चा है। वाद के चार अध्यायो मे सरल सुस्पष्ट भाषा मे अहिंसा के बुनियादी सिद्धान्तो का विवेचन प्रस्तुत है। अहिंसा और विज्ञान के समन्वय पर भी बल दिया गया है। अन्त मे अहिंसा एव विश्वशान्ति के ज्वलन्त प्रश्न पर विचार किया गया है।

पुस्तक कई दृष्टियो से पठनीय, चिन्तनीय एव सग्रहणीय है। आशा है कि साहित्यिक जगत मे पूर्ण सम्मानित होगी।

—नवभारत टाइम्स, १४ दिसम्बर १९६९, बम्बई

☆अहिंसा की व्यावहारिक पृष्ठभूमि को स्पर्श करते हुए उसके विभिन्न अगो का विशद विवेचन श्री गणेश मुनिजी शास्त्री ने प्रस्तुत पुस्तक मे किया है। अहिंसा के सम्बन्ध मे लेखक निष्ठावान है और साथ ही व्यावहारिक वुद्धि से युक्त भी। अध्ययन एवं अनुभव के आधार पर की गई उसकी विवेचना अहिंसा मे निष्ठा रखने वाले प्रत्येक पाठक के लिए उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा दृढतम विश्वास है।

—उपाध्याय अमरमुनि

☆अपने बहुत से लेखो तथा भाषणो मे मैंने इस वात पर जोर दिया है कि हमे सरल, सुबोध भाषा मे कुछ ऐसी पुस्तकें तैयार करनी चाहिए, जो सामान्य वुद्धि और ज्ञान रखने वाले व्यक्तियो की भी समझ मे आ जायँ और वे इन्हे पढकर जान सकें कि अहिंसा की शक्ति कितनी तेजस्वी है और उन पर आचरण करके किस प्रकार राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय जीवन जगत मे स्थायी शान्ति और सुख स्थापित किया जा सकता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक को देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। इसके लेखक जैन मुनि हैं और इन्होंने अहिंसा तथा सम्बन्धित सभी विषयो का सूक्ष्म अध्ययन एव चिन्तन किया है।

—यशपाल जैन, देहली

☆'अहिंसा की बोलती मीनारें' के द्वारा कृष्ण के प्रेम को, महावीर की अहिंसा को, गाधीजी की सत्याग्रहवादी भाषा को लेखक ने नवयुग की चेतना के समक्ष वडी सज-धज के माथ रखा है।

—विजय मुनि शास्त्री

☆आज के भयाक्रान्त विश्व को निर्भयता की ओर ले जाने मे यह पुस्तक पूर्ण सहायक वनेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

—प्रवर्तक मुनि मिश्रीमल

☆ऐसा श्रम-साध्य तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ यदि किसी उच्चस्तरीय परीक्षा के पाठ्यक्रम मे स्वीकृत हो जाय, तो समाज का अधिक हित हो सकता है।

—प्रवर्तक विनयऋषि

☆'अहिंसा की बोलती मीनारें' मे लेखक ने अहिंसा का शास्त्रीय चिंतन प्रस्तुत करते हुए उसके व्यावहारिक, आध्यात्मिक और विविध मतो की दृष्टि से मामाजिक मूल्यो पर भी सुन्दर प्रकाश डाला है। भाव-भाषा दोनो ही दृष्टियो से पुस्तक सुन्दर से सुन्दरतर है।

—आचार्य मुनि हस्तिमल

☆वर्तमान विचार-द्वन्द्व की काली निशा मे मुनि श्री का प्रस्तुत ग्रन्थ 'अहिंसा की वोलती मीनारें' प्रकाश स्तम वनकर विश्व को सही मजिल की दिशा सुझायेगा, ऐसा विश्वास है।

—मालवकेशरी मुनि सौभाग्यमल

☆पुस्तक क्या है? वर्तमान देश, समाज व राष्ट्र की विभिन्न समस्याओ का उचित समाधान! राकेटवादी युग का प्रकाश स्तम्भ! प्रत्येक मीनार का विषय वडा ही रोचक, दिलचस्प एव ज्ञानवर्धक है।

—पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल

☐विचार-रेखा

सम्पादक . गणेशमुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न

प्रेरक श्री जिनेन्द्र मुनिजी

प्रकाशक अमर जैन साहित्य सदन, जोधपुर

मूल्य १ ५०, प्रकाशन काल १९६६

☆प्रस्तुत पुस्तक छ अध्यायो मे विभक्त वह उद्यान है, जिसमे अहिंसा, अस्तेय, सतोष, सयम, प्रेम, हर्ष, सुख, दु ख, क्षमा आदि विविध विचारो के सुमन खिले हैं। आशा है, जीवन मे इनकी सुरभि मिलती रहेगी। पुस्तक सग्रह और मनन के लायक है। मुनि श्री की इस सुन्दर कृति का सर्वत्र स्वागत हो, यही हमारी मगल कामना है।

— हाथ मे उठा जो देखा विचित्र 'विचार रेखा',
सबसे निराला लेखा, कविता न गीत है।
अनमोल हीरे पर, ढग से दिये है धर,
जौहरी का जैसा घर, पावन-पुनीत है॥
ज्ञानी ध्यानी महागुणी, पडित 'गणेश मुनि',
हर बात ऐसी चुनी, जीवन की जीत है।
ज्ञानियो के, गुणियो के, ऋषियो के, मुनियो के,
विविध विचारो का ही यह नवनीत है॥

—चन्दन मुनि [पंजाबी]

☐इन्द्रभूति गौतम : एक अनुशीलन

लेखक गणेशमुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न
सपादक श्रीचन्द सुराना 'सरस'
भूमिका डा० जगदीशचन्द्र जैन
प्रकाशक सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा-२
मूल्य ४·००, प्रकाशन काल १९७०

☆प्रस्तुत प्रबन्ध मे गणधर इन्द्रभूति गौतम के विराट व्यक्तित्व की यथार्थ तसवीर खीची गई है। आज तक की साहित्यिक अपूर्णता को यह कृति पूर्ण कर रही है।

इस प्रबन्ध के लेखक हैं—श्रद्धेय पण्डित प्रवर श्री पुष्कर मुनि महाराज के शिष्यरत्न श्री गणेश मुनि जी शास्त्री। श्री गणेश मुनि जी जैन समाज के एक अनेक पहलू वाले जगमगाते जवाहिर हैं। वे कवि भी हैं और कलाकार भी हैं। गायक भी हैं और साधक भी हैं। और वे क्या नही हैं, यह एक प्रश्न है?

आप इस प्रबन्ध के लिए अपनी साधु समाज मे "डाक्टरेट" के प्रथम विजेता बनें, यही मनीषा।

—साध्वी उज्ज्वलकुमारी

☆श्री गणेश मुनि जी शास्त्री की 'इन्द्रभूति गौतम एक अनुशीलन' पुस्तक पढी। ग्रन्थ बहुत अध्ययनपूर्ण एव सुन्दर शैली मे लिखा गया है ··· 'यदि वे सुधर्मास्वामी पर भी इसी तरह का एक शोध-प्रबन्ध तैयार करें तो समाज की बडी सेवा होगी।

—साहित्यवारिधि अगरचन्द नाहटा

☆विद्वान लेखक को इस 'थीसिस' पर 'डाक्टरेट' मिलनी चाहिए और उन्हे विशेष पद से विभूषित किया जाना चाहिए।

इस अनुपम कृति के उपलक्ष मे मैं ज्ञानयोगी श्री गणेश मुनि जी का तथा सम्पादक बन्धु का और उनके भाग्यशाली पाठको का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

—नारायणप्रसाद जैन, बम्बई

☆प्रस्तुत पुस्तक मे विद्वान लेखक एव सम्पादक ने 'इन्द्रभूति' के उस महामहिम शब्दातीत रूप को शब्दगम्य बनाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। पुस्तक का सरसरी तौर पर अवलोकन कर जाने पर मुझे लगा है—गौतम के व्यक्तित्व की गहराई को श्रद्धा एव चिन्तन के साथ उभारने का यह प्रयत्न वास्तव मे ही प्रशसनीय है तथा एक बहुत बड़े अभाव की सपूर्ति भी।

ऐसे अनुशीलनात्मक विशिष्ट ग्रन्थो से पाठको की ज्ञानवृद्धि के साथ तत्त्व-जिज्ञासा की परितृप्ति होगी—ऐसा विश्वास है।

—उपाध्याय अमरमुनि

☆'इन्द्रभूति गौतम एक अनुशीलन' को पढने से ज्ञात हुआ कि यह एक थीसिस (महानिबन्ध) है। इस प्रकार की पुस्तक लिखने वालो को विश्वविद्यालय की ओर से पी-एच० डी० की उपाधि से विभूषित किया जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक श्री गणेश मुनिजी शास्त्री भी पी-एच० डी० की उपाधि के योग्य है।

—प्रवर्तक विनयऋषि

□भगवान महावीर के हजार उपदेश

सपादक . गणेशमुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न

सयोजक जिनेन्द्र मुनि 'काव्यतीर्थ'

भूमिका उपाध्याय अमरमुनि

प्रकाशक अमर जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर

मूल्य ९·००, प्रकाशन काल १९७३

☆आज विश्व विनाश के कगार पर खडा है। चारो ओर अशान्ति की आग सुलग रही है। मानवता सकटापन्न है। वैज्ञानिक खलनायको के हाथ मे मानवता और शान्ति की मासूम बुलबुलें छटपटा रही हैं। समर देवता की भयानक जिह्वा विश्व को निगलने के लिए लपलपा रही है। ऐसे विकट समय मे भगवान महावीर के उपदेशो की अत्यधिक आवश्यकता है। उन उपदेशो को हृदयगम कर मानव जन-जीवन मे शान्ति, समता व सरसता की सरस सरिता प्रवाहित कर सकता है। मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि मेरे प्रिय शिष्य श्री गणेश मुनि ने आगम-साहित्य का मथन कर "भगवान महावीर के हजार उपदेश" रूप ग्रन्थ तैयार किया है। यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। इस ग्रन्थ को प्रबुद्ध पाठक अपनायेंगे। साथ ही मेरा हार्दिक शुभाशीर्वाद

है कि श्री गणेश मुनि साहित्यिक दृष्टि से निरन्तर प्रगति के सोपान पर वढता रहे…… ।

—पुष्कर मुनि

☆श्री गणेश मुनि द्वारा सम्पादित "भगवान महावीर के हजार उपदेश" पुस्तक देख कर मन गद्गद् हो गया। ठीक ऐसे अवसर पर यह पुस्तक प्रकाशित की गई है, जव इसकी आवश्यकता वहुत आतुरता से हम अनुभव कर रहे थे। २५वी निर्वाण शताब्दी समारोह पर वीतराग वाणी के प्रसार का माध्यम यह ग्रन्थ वनेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

सम्पादक महोदय दार्शनिक सत्य और काव्य-सौन्दर्य की समन्वित चेतना के सत हैं। यही कारण है कि जीवन और जगत् के निश्चित मूल्यो के सम्वन्ध मे विराट चेतना के धनी अरिहत देव की अनुभूतियो का विषयानुक्रम से वर्गीकृत कर पाठक को तत्त्ववोध समझाने मे पूरी तरह सफल हुए है। इस प्रकार के ग्रन्थो का प्रणयन निरन्तर वढ़े, यही कामना।

—मुनि सुशीलकुमार
(विश्व धर्म सम्मेलन के प्रवर्तक)

☆आज के आस्थाहीन, कुठाग्रस्त, दिग्भ्रमित जन-जीवन के लिए भगवान महावीर के ये उपदेश निश्चय ही जीवन निर्माणकारी प्रेरक तत्त्व के रूप मे उपयोगी सिद्ध होंगे और निराशा मे आशा, आस्था तथा हिम्मत का प्रकाश विकीर्ण करेंगे। भगवान महावीर की वाणी के इस मधु-सचय के लिए मुनिश्री जी हम सबके लिए वधाई के पात्र हैं ··।

—डा० नरेन्द्र भानावत

☆··· श्री गणेश मुनि जी एक सरल, शान्त, भावनाशील एव युवकोचित उत्साह से युक्त श्रमण हैं। कविता, लेखन एव प्रवचन तीनो ही धाराओ मे उनकी अच्छी गति है। उन्होंने पहले भी कुछ अच्छी रचनाएँ जनसाहित्य के रूप मे प्रस्तुत की हैं, जिनका यत्र-तत्र-सर्वत्र समादर हुआ है। प्रस्तुत सग्रह कृति के साथ उन्होने इस दिशा मे एक और भव्य चरण आगे वढाया है। मैं मुनि श्री के मगलमय भविष्य की कामना करता हूँ कि वे इस प्रकार की साहित्य-साधना के क्षेत्र मे अधिकाधिक यशस्वी होंगे एव प्रभु महावीर की शासन-गरिमा को अधिकाधिक दीप्तिमान करेंगे।

—उपाध्याय अमरमुनि

गुणी 'गणेश मुनीश' का, नूतन ग्रन्थ विशेष।
महावीर भगवान के, हैं हजार उपदेश॥
गागर मे सागर सदृश, आत्मिक इसमे ज्ञान।
पढे-पढाये प्रेम से, हो निश्चित कल्याण॥

लेखन-मुद्रण आदि हैं, आकर्षक अत्यन्त।
हर इक के अति काम का, गेही हो या सत ॥
ग्रन्थरत्न जग को दिया, किया महा उपकार।
'चन्दन मुनि' की ओर से, साधुवाद शत वार ॥

—चन्दन मुनि [पंजाबी]

☆·· ·· जैसे दही के मथन से नवनीत की प्राप्ति होती है। वैसे ही पण्डितरत्न श्री गणेश मुनिजी शास्त्री ने आगम का मथन कर "भगवान महावीर के हजार उपदेश" नामक ग्रन्थ नवनीत के रूप मे समाज को भेंट किया है। एतदर्थ धन्यवाद!

—प्रवर्तक विनयऋषि

☆ श्री गणेश मुनिजी शास्त्री सरस कवि, गभीर गवेषक और ओजस्वी वक्ता के रूप मे विश्रुत हैं। मैंने उनकी अनेक कृतियाँ देखी, हर कृति अपने स्वतन्त्र-वैशिष्ट्य को लिये हुई है।·· ·· ·· 'भगवान महावीर के हजार उपदेश' मे जिनवाणी का सकलन अत्यन्त स्वस्थ व सुरुचिपूर्ण दृष्टि से हुआ है ·।

—डॉ० राजकृष्ण दुगड़, पी-एच० डी०

☆'भगवान महावीर के हजार उपदेश' पुस्तक बहुत ही सुन्दर है। वचनो का चयन बड़े परिश्रम तथा सूझ-बूझ से हुआ है। उन्हे वर्गीकृत करके तो लेखक ने 'सोने मे सुहागे' की कहावत चरितार्थ की है। पुस्तक का एक-एक वचन पठनीय तथा मननीय है। ऐसे सुन्दर प्रकाशन के लिए लेखक मुनिश्री को मेरी हार्दिक बधाई। मुझे विश्वास है कि मुनिश्री की इस कृति को जो भी पढेगा, उसे लाभ होगा ···।

—यशपाल जैन
[सुप्रसिद्ध साहित्यकार]

☆विद्वद्‌रत्न शास्त्री श्री गणेश मुनिजी द्वारा सपादित 'भगवान महावीर के हजार उपदेश' ग्रन्थ को देख कर अत्यधिक प्रसन्नता हुई। ग्रन्थ बहुत सुन्दर रूप से निकला है। मुनिजी ने एक बडी कमी की पूर्ति की है। पच्चीस वी निर्वाण शताब्दी पर इसका विशेष तौर पर प्रचार वांछनीय है।

—अगरचन्द नाहटा

☆Based on the harmony of poetic beauty and philosophical truth, the edition of "Bhagwan Mahavir ke Hazar Upadesh" is a commendable work It goes without saying that Shri Ganesh Muni Shastri has a refined taste in wisdom and knowledge I hope the work will be helpful to make people understand the teachings of Bhagwan Mahavira in the context of life and world.

—**Muni Samant Bhadera**

☆ ··· प्रस्तुत पुस्तक स्वाध्याय के साथ ज्ञानवर्द्धन मे उपयोगी है। जैन-तत्त्व सरलता से समझाया गया है। भगवान महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी के अवसर पर जैन मुनियो द्वारा रचित जो साहित्य प्रकाशित हो रहा है उसमे इस पुस्तक का महत्त्वपूर्ण स्थान रहेगा ···।

—तुलसी प्रज्ञा, लाडनूं
अप्रैल-जून, १९७५

□वाणी-वीणा

कवयिता . गणेशमुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न
सम्पादक श्रीचन्द सुराना 'सरस'
भूमिका . डॉ० पारसनाथ द्विवेदी, आगरा
प्रकाशक . अमर जैन साहित्य सदन, जोधपुर
मूल्य २ ५०, प्रकाशन काल १९६८

☆'वाणी-वीणा' जीवन की सात्विक प्रवृत्तियो की अभिव्यक्ति का काव्यात्मक स्वरूप है। आज के युग-वैषम्य और कुण्ठाओ मे पल रहे समाज के लिए इस प्रकार का सगीतात्मक प्रेषण प्रेरणाप्रद हो सकता है। समभाव, मैत्रीदिवस, प्रेममत्र, धार्मिकता, अहिंसा आदि जैनधर्म से समस्त उदात्त प्रवृत्तियो पर सुन्दर काव्यात्मक पक्तियाँ प्रस्तुत की गई हैं—जो लेखक के चिन्तन, मनन व अनुभूति की सात्विकता का पोषण करती है, कवि की इस मानवतावादी दृष्टि मे ही वीणा का वैशिष्ट्य निहित है।

—नवभारत टाइम्स, मार्च १९७०, वम्वई

☆'वाणी-वीणा' को पढकर हृदय आनन्द की तरगो मे डूवने लगता है और लगता है कि हम गगा की पावन धारा मे एक वजरे के ऊपर बैठे हो, आज के युग मे ऐसी पुस्तको की पहले से अधिक आवश्यकता है।

—विश्वम्भर 'अरुण'

वाणी वीणा पढ मन मेरा, आनन्द से भर आया,
हर पद के गुञ्जन मे देखी, पन्त निराला की छाया।
स्वागत है कविराज तुम्हारा काव्य क्षेत्र मे तुम चमके,
नीलगगन मे दिनकर के सम, दिन-दिन जगती पर दमके।

—साध्वी उज्ज्वलकुमारी

☆'वाणी-वीणा' किसी सम्प्रदाय विशेष का स्वर नही, वल्कि सच्ची निष्ठा के साथ मानवीय कर्तव्य कर्मो का स्वर सधान है, जीवन जगत के श्रेयस की पकड है।

—डॉ० पारसनाथ द्विवेदी

☆'वाणी-वीणा' मुक्तक रत्नो से सुसज्जित सुन्दर हार-सी एक मौलिक कृति है, जो साहित्य मूर्ति के कण्ठाभरण-सी प्रतीत होती ।

—मुनि, 'कुमुद'

☆'वाणी-वीणा' मे कविवर श्री गणेश मुनि शास्त्री ने जीवनोपयोगी-मुक्तक-काव्यो की भव्य रचना की है···। सरस्वती के भण्डार मे यह पुस्तक अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है, कवि की कल्पना मधुर है, भाषा प्राजल है और शैली प्रभावमयी है, आशा है कि प्रत्येक अध्येता 'वाणी-वीणा' से प्रेरणा प्राप्त कर अपने जीवन को प्रशस्त बनाने का यत्न करेगा ।

—विजय मुनि, शास्त्री

□महक उठा कवि सम्मेलन

कवयिता गणेशमुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न

प्रकाशक अमर जैन साहित्य सदन, जोधपुर

मूल्य १ ५०, प्रकाशन काल १९६९

☆'महक उठा कवि सम्मेलन' एक सौ एक मुक्तको की भीनी सुरभि से महक रहा है। कवि ने अपने इन तमाम मुक्तको मे कमाल की सूझ भर दी है। व्यग्योक्ति के मर्म को छूने वाली व्यजना, लाक्षणिकता की विपुल-बहुल शृ खला, कल्पना की उर्वर भूमि पर युगबोध का सम्यक् समाहार, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो का चमत्कार एव भावो को जन-मन तक पहुँचाने वाली भाषा का सरल सरस प्रवाह पद-पद पर छलकता नजर आता है।

·मुक्तक-काव्य-परम्परा मे प्रस्तुत पुस्तक सदा सम्मान की दृष्टि से याद की जायेगी ।

—श्री अमर भारती

☆'महक उठा कवि सम्मेलन' आधुनिक युग के समर्थ चिंतक कविरत्न श्री गणेश मुनिजी शास्त्री की एक मौलिक कृति है। इसमे कुछ तुक्तक-मुक्तक ऐसे हैं, जिन्हे देखते ही जिह्वा झूम-झूम कर गुनगुनाने लगती है। काव्य-जगत मे मुनिश्री की प्रस्तुत कृति एक नयी अभिव्यञ्जना सिद्ध होगी ।

—साध्वी उज्ज्वलकुमारी

'महक उठा कवि सम्मेलन' जब,
पुस्तक जरा उठा देखी।
फुलझडियाँ देखी मुक्तक की तो,
सब की अजब अदा देखी।

गुणी 'गणेश' मुनीश्वर जी की,
लखी लेखनी चकित हुआ।
ऐसी सुलझी अन्य कही पर,
कम ही काव्य-कला देखी। —चन्दन मुनि [पजाबी]

☐सुबह के भूले

लेखक गणेशमुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न

सम्पादक . जीतमल सकलेचा, एम० ए०

प्रकाशक . अमर जैन साहित्य सस्थान, उदयपुर

मूल्य . ७ ००, प्रकाशन काल १९७१

☆पुस्तक की भाषा-शैली प्रवाहपूर्ण और प्रभावशाली है। "रसात्मकम् वाक्य काव्य" की अनुभूति रचना को पढते समय क्षण-क्षण होती रहती है। शब्दो का सुन्दर सयोजन, वाक्यो का सुगठित स्वरूप और अभिव्यक्ति की स्वच्छता रचनाकार की मौलिक शिल्प-चेतना का प्रत्यक्ष उदाहरण है। मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत उपक्रम जैन-सत-काव्य परम्परा का बेजोड रत्न साबित होगा और आधुनिक युग के यान्त्रिक मानव-समाज को आध्यात्मिक शान्ति का सुन्दर उपहार देगा। मुनि जी लालित्यपूर्ण साहित्य-सर्जना के लिए बधाई के पात्र हैं।

—डॉ० रामप्रसाद त्रिवेदी

☆श्री गणेश मुनि शास्त्री गूढ विचारक और गवेषक सन्त होने के साथ-साथ सरस कवि भी हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनकी भावुकता, कथा-नैपुण्य और भाषा की सहज प्रवाहशीलता का सूचक है। गद्य-गीत मे लिखी ये कहानियाँ 'सुबह के भूले' प्राणियो को शाम तक घर लौटने की प्रेरणा देती है।

—पार्श्वकुमार मेहता

☆'सुबह के भूले' पुस्तक से मुनिश्री जी की कवि-प्रतिभा का सुन्दर परिचय मिलता है। मुझे विश्वास है कि वे आगे जाकर महाकवि के रूप मे विश्रुत होंगे।

—डॉ० राजकृष्ण दुगड, पी-एच डी०

☆श्री गणेश मुनि जी जैन समाज के चिन्तनशील कवि और विद्वान गवेषक सन्त हैं। 'अहिंसा की बोलती मीनारें', 'इन्द्रभूति गौतम एक अनुशीलन' आदि कृतियो मे उनका गवेषक पण्डित रूप प्रकट हुआ है। प्रस्तुत कृति 'सुबह के भूले' मे उनका सरस कवि-रूप उभर कर सामने आया है। सकलन की सभी कविताएँ कथा की अलगनी पर टिकी हुई है। उनमे वर्णनो की चित्रोपम छटा और भावो की रगीली मर्म-स्पर्शिता है। कथा-प्रेमियो और कविता प्रेमियो के लिए यह कृति परितोपकारी है।

—डॉ० नरेन्द्र भानावत

□जीवन के अमृत कण

लेखक : गणेशमुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न

सम्पादक : श्रीचन्द सुराना, 'सरस'

प्रकाशक : अमर जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर

मूल्य : २·५०, प्रकाशन काल १९७१

☆"जीवन के अमृत कण" पुस्तक को पढकर मन आनन्दविभोर हो उठा। सचमुच एक-एक अमृत कण के रसास्वादन से जीवन मे अपूर्व जागृति, चेतना और प्रेरणा की वाढ आ रही है।

—महासती उज्ज्वलकुमारी

☆"जीवन के अमृत कण" मानव मे रही हुई, अन्तरग अशान्ति को दूर हटाकर शान्ति प्रदान करने वाली एक सुन्दर कृति है, इस अमृत कणो के खजाने मे से एक-एक अमृत कण निकाल कर मानव अध्यात्म शान्ति का अनुभव कर सकता है।

—प्रवर्तक विनयऋषि

गुणी 'गणेश' मुनीश्वर प्यारे, पण्डित राज कहाते है।
नया-नया साहित्य सर्वदा, लिखते ही बस जाते है।।
रोचक लिखे प्रसग जिन्होने, चमक उठे मानव जीवन।
'जीवन के अमृत कण' सचमुच, जीवन के हैं अमृत कण।।

—चन्दन मुनि [पजाबी]

□प्रेरणा के बिन्दु

लेखक : गणेशमुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न

सम्पादक : श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक : अमर जैन साहित्य सस्थान, उदयपुर.

मूल्य : ३·००, प्रकाशन काल १९७२

दे रही कालेज मे ज्यो, उच्च शिक्षण शिक्षिका।
'प्रेरणा के विन्दु' देखी एक अद्‌भुत पुस्तिका।।
दे रहा कर्त्तव्य की ही प्रेरणा हर विन्दु है।
क्या मधुर हर विन्दु मे इक लहलहाता सिन्धु है।।
विन्दुओ के सिन्धुओ से प्रेरणा कुछ लीजिये।
और उन्नत, और उन्नत मनुज जीवन कीजिये।।
भर दिया कूजे मे जिनने सत्य के सन्देश को।
क्यो कहे न धन्य शतश श्रमण गुणी 'गणेश' को।।

—चन्दन मुनि [पजावी]

☆आधुनिक युग के समर्थ चिन्तक श्री गणेश मुनिजी शास्त्री द्वारा प्रणीत "प्रेरणा के विन्दु" नामक पुस्तक पढी, पुस्तक क्या है—'विन्दु मे सिन्धु' और 'गागर मे सागर'। चिन्तन प्रधान इक्यासी रूपक तथा लघु कहानियो का यह अद्‌भुत सग्रह जीवन का नव निर्माण करने मे सक्षम वनेगा ····।

—साध्वी उज्ज्वलकुमारी

☆'प्रेरणा के विन्दु' मे सत्प्रेरणा का सिन्धु लहरा रहा है। जिसको प्राप्त कर मानव अपने कल्याण का पथ आलोकित कर सकता है। मुनिश्री जी मे विषय की सक्षिप्तता और भावो की गम्भीरता भरने की अद्‌भुत क्षमता है ।

—डॉ० राजकृष्ण दुगड़, पी-एच० डी०

□विश्व ज्योति महावीर

लेखक : गणेशमुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न

प्रकाशक : अमर जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर

पृष्ठ १८४, मूल्य ४ ०० रुपये

☆भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण-महोत्सव के अवसर पर वहुत-सा साहित्य प्रकाशित हुआ है। यह प्रवन्ध-काव्य उसी शृ खला की वडी ही सशक्त कडी है। इसके लेखक उत्कृष्ट कवि हैं। उनकी 'वाणी वीणा', 'महक उठा कवि सम्मेलन', 'सुवह के भूले' आदि रचनाएँ काव्य-साहित्य मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। लेखक उत्तम गायक भी है। उस नाते वह शव्दो के सगीत को भली प्रकार जानते है। इस कृति मे ये दोनो गुण भरपूर पाये जाते हैं। भाषा जहाँ काव्यमयी है, वहाँ शव्दो मे सगीत की लय है ।

प्रस्तुत पुस्तक मे महावीर का जीवन-दर्शन, साधना-दर्शन और तत्त्व-दर्शन प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक का मूलाधार ११वी शताव्दी के विख्यात आचार्य श्री नेमिचन्द्र सूरि और श्री गुणचन्द्र सूरि द्वारा रचित प्राकृत ग्रथ 'महावीर चरिय' रहा है। अन्य पुस्तको से भी लेखक ने सहायता ली है। अपने व्यापक अध्ययन, मनन और चिन्तन के आधार पर वह एक ऐसी कृति देने मे सफल हुए है, जिसे पढकर पाठक विभोर हो उठता है। महावीर के विषय मे लिखना आसान नही है। उनका जीवन जितना वाह्य है, उससे कही अधिक आन्तरिक है। उनके उपदेशो को शव्दो मे वाँधना भी अत्यन्त कठिन है। विद्वान लेखक ने इस कार्य को वड़े सुन्दर ढग से सम्पन्न किया है।

पुस्तक की सवसे वडी विशेषता यह है कि उसकी भाषा वहुत ही सरल एव सुवोध है। महावीर के गूढ से गूढ सिद्धान्तो को इस प्रकार समझा दिया गया है कि सामान्य पाठक उन्हे सहज ही समझ सकता है। —यशपाल जैन, दिल्ली

□भगवान महावीर : एक परिचय

लेखक श्री गणेश मुनि शास्त्री

प्रकाशक अमर जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर (राजस्थान)

मूल्य . एक रुपया

☆विद्वान लेखक ने इस ग्रन्थ मे भगवान महावीर के जीवन और उनके उपदेशो को अत्यत रोचक एव सरस शैली मे अभिव्यक्त किया है। जैन बाल साहित्य की दृष्टि से यह एक अभाव की सार्थक पूर्ति है। बालक-बालिकायें एव युवक-युवतियाँ इस पुस्तक को पढकर भगवान महावीर के प्रेरणास्पद व्यक्तित्व की अन्तरग झाँकी प्राप्त कर सकेंगे तथा उनके मगलमय एव मानवीय विचारो से सस्कारित हो सकेंगे।

—डॉ० महावीर सरन जैन

वीर प्रभु का एक परिचय देख,
हुआ मन मे हर्ष का सचार।
स्तुत्य इस लघु पुस्तिका मे, सत्य,
वीर जीवन का भरा है सार॥
कृति इसे बालोपयोगी मान,
बढ गया है और भी सम्मान।
विवर्धित होकर करे कल्याण,
बालको मे वीर प्रभु का ज्ञान॥

—मुनि महेन्द्रकुमार 'कमल'

☆यह पुस्तक सामान्य पाठको को भगवान महावीर और उनके सिद्धान्तो का परिचय कराने के उद्देश्य से लिखी गई है। बडी बोधगम्य भाषा मे भगवान महावीर के जन्म से लेकर निर्वाण प्राप्ति तक वर्णन किया है। अनन्तर उनके सिद्धान्तो पर प्रकाश डालते हुए अन्तिम पृष्ठो मे वर्गीकृत रूप मे उनका सन्देश उन्ही के शब्दो मे दिया है। दिगम्बर मान्यता के विपरीत इस पुस्तक मे कहा गया है कि "महावीर का विवाह हुआ, लेकिन महावीर इस मायावी जगत मे उलझे नही, क्योकि वे अपने जीवन को काम-क्रोध, विषय-वासना के कीचड से कमल की तरह निर्लेप रखना चाहते थे।"

महावीर के जीवन की घटनाओ के वर्णन से पुस्तक बडी सरल और रोचक बन गई है। इसके साथ ही महावीर के वचनो को देने से उसमे अमृत भर गया है।

—यशपाल जैन, दिल्ली

☆'भगवान महावीर . एक परिचय' पुस्तक आधुनिक युग के व्यस्त मानव को भगवान के जीवन और उनके सदेश की ज्योति घर-घर पहुँचाने मे सहायक होगा, क्योकि यह ग्रन्थ आकार से छोटा और ज्ञानवर्धन मे विशाल है।

—डॉ० सरदार सिह ढावरिया

विचार-पूर्वक आचार

ज्ञान-पूर्वक क्रिया

विवेकयुक्त धर्माचरण

समता-पूर्वक तपश्चरण

☆प्रस्तुत काव्य-कृति जहाँ भगवान महावीर के सम्पूर्ण जीवन को सरस शैली मे अभिव्यजित करती है वही जैन-तत्त्व-दर्शन को अत्यन्त सरल एव सुबोध रूप मे अभिव्यक्त करती है। पद्यात्मक होने के कारण जिज्ञासु पाठक सहज रूप मे जैन सिद्धान्तो एव आध्यात्मिक चिन्तन-मनन को कठस्थ कर सकता है। यह पुस्तक मुनिजी के कवि-व्यक्तित्व की सम्भावनाओ के द्वार खोलती है।

—डॉ० महावीर सरन जैन, डी० फिल्, डी० लिट्

☆परम प्रिय गणेश मुनि द्वारा निर्मित 'विश्व ज्योति महावीर' कृति देखने को मिली।

मुझे इस काव्यात्मक जीवन-गाथा को देखकर ऐसा लगा जैसे कोई भगीरथ हिमगिरि के उत्तुग शिखर से मन्दाकिनी का प्रवाह बहाये ले जा रहा हो।

आध्यात्मिक उत्कर्ष के चरम विकास पर आरूढ प्रभु महावीर के विराट जीवन गगा को काव्य की भावप्रवण भाषा मे बाँधकर ले चलना बहुत दुरूह कार्य है।

मैं गणेश मुनि जी महाराज का आभारी हूँ कि उन्होने साहित्य जगत् को 'विश्व ज्योति महावीर' कृति प्रदान कर पाठको को लाभान्वित किया है।

मैं उन्हे अपने प्रयास मे पूर्ण सफल, क्रान्तद्रष्टा एव भावी मार्ग प्रस्तोता के रूप मे स्वीकार करता हूँ।

मगल कामना के साथ।

—मुनि सुशीलकुमार

☆श्री गणेश मुनि शास्त्री जैन जगत के एक ज्वाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। आपकी साहित्य साधना ने जैन, जैनेतर सबके हृदय मे जैनदर्शन एव भगवान महावीर के प्रति अति आकर्षण उत्पन्न कर दिया है। अब तक आपकी लगभग दो दर्जन से अधिक पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं।

"विश्व ज्योति महावीर" आपकी एक अनूठी काव्यकृति है। भगवान महावीर के जीवन की घटनाओ को आपने अत्यन्त सरल एव सुबोध भाषा मे चित्रित कर हर व्यक्ति के लिए उनके जीवन दर्शन को समझना सुलभ कर दिया है।

—लक्ष्मीलाल बूलिया

☐श्री गणेश मुनि शास्त्री : साधक और सर्जक

लेखक **डॉ० रामप्रसाद त्रिवेदी**

प्रकाशक . **अमर जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर**

पृष्ठ १५०, मूल्य **पांच रुपये**

☆मुनिजी की प्रतिभा बहुमुखी है। वे प्रकाण्ड विद्वान् और ओजस्वी वक्ता हैं। उन्होने विपुल साहित्य की रचना की है। उनकी कई पुस्तके पढने का हमे अवसर मिला है। 'अहिसा की बोलती मीनारें' पुस्तक की भूमिका मुनि जी ने हमसे लिखवाई थी। उनकी रचनाओ को पढकर हम निश्चयपूर्वक कह सकते है कि मुनिश्री के विचार

अत्यन्त सात्त्विक हैं, उनमे मौलिकता है और लेखन-शैली मे अपने ढग का प्रवाह और प्रमुख भाव है। उनकी डेढ दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और लगभग उतनी ही अप्रकाशित है।

यह जीवनी निस्सन्देह उनके तेजस्वी व्यक्तित्व और लोकहितकारी कृतित्व पर अच्छा प्रकाश डालती है। लेखक ने उसे अपने रचना-कौशल से रोचक तथा विविधता-पूर्ण वनाने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि पाठक कही ऊवता नही और पूरी पुस्तक को वडी तल्लीनता से पढ जाता है।

धर्म-पुरुषो की जीवन-गाथा सदा प्रेरणादायक होती है। उसका पठन-पाठन व्यक्ति को निर्मल वनाता है। हम आशा करते हैं कि मुनिजी की यह जीवनी सभी क्षेत्रो मे पढी जायगी और पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

—यशपाल जैन

☆मैं गणेश मुनिजी की नव्य-भव्य साहित्यसृष्टि से वहुत प्रभावित हूँ। वे साधना के अमर आरोही और साहित्य सृजन के क्रान्तद्रष्टा ऋषि है। उनसे भावी पीढियो को वहुत आशा है। मैं उनके सफल जीवन पर कोटि-कोटि वधाई भेजने मे आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ।

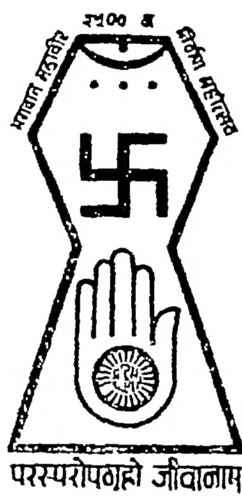
—मुनि सुशीलकुमार

☆डॉ० त्रिवेदी ने इस पुस्तक मे श्री गणेश मुनि शास्त्री के तपस्वी जीवन का चरित्राकन प्रस्तुत किया है तथा उनकी कृतियो की आलोचनात्मक विवेचना की है। इस पुस्तक को पढकर श्री गणेश मुनि जी के केन्द्रक विचारो एव मौलिक दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त हो जाता है। इसकी भाषा-शैली साहित्यिक, स्तरीय एव प्रसगानुकूल है। कही उपन्यास का सा आनन्द आता है तो कही निवन्वो की सी मार्मिकता एव गम्भीरता की प्रतीति होती है। पुस्तक की सज्जा भी आकर्षक है। गेटअप सुन्दर है।

—डॉ० महावीर सरन जैन, डी फिल्, डी लिट्

साधक-सर्जक हैं स्वयं, मुनिवर धन्य गणेश,
इस कृति के प्रति क्या लिखूं, पुनरपि है आदेश।
पुनरपि यह आदेश आपका शिरोधार्य है,
सरल-सरस भावो का मिश्रण अपरिहार्य है॥
गागर मे सागर का सार भरा है इसमे,
धन्य संत कवि भरी अलौकिक प्रतिभा जिसमे।
कहे 'कमल' इस कृति का हो जग मे अभिनन्दन,
साधक औ' सर्जक के चरणो मे हो वन्दन॥

—मुनि महेन्द्रकुमार 'कमल'


भगवान महावीर
२५०० वां
निर्वाण महोत्सव
परस्परोपग्रहो जीवानाम